दिव्य आर्शीवाद के लिए तैयार

BLESSING READY *for* DIVINITY

कंमाडर अंकल

दिव्य आशीर्वाद के लिए तैयार

BLESSING READY *for* DIVINITY

कमांडर अंकल

Printed at
DOT SCAN PVT. LTD
M: 9958177007

विषय सूची

प्रस्तावना	v
परिचय	vii
गोपाल तेरा आरता	xi
अपनों की चाह और लगाव	1
मेरे बच्चों के सर पर गुरूजी ने अपना हाथ रखा	15
सर्व ज्ञानी भगवान	28
सत्संग का सार(भावना) – साधारण आयोजन और गहरा जुड़ाव	33
सबक सीखा – बहुत कठिनाइयों का सामना करने के बाद	38
सतगुरु प्यारा मेरे नाल है – विश्वास के साथ यात्रा	52
महाराज की सेवा – यादगार घटनाएँ	63
गुरूजी के चरण कमलों ने गुड़गाँव को आशीर्वाद दिया	68
"संबंध"	76
और आप गुरूजी के अपने बन जाएंगे "इक तक्या भरोसा तेरे चरणां दा, होर सब्बे ढाईयाँ ढेरियाँ"	84
गुरूजी – अद्भुत शिव	96
हमेशा के लिए आशीर्वाद – मैं अपनी संगत को नहीं छोड़ रहा	109
कैसे उनकी कृपा कर्मों का बोझ कम करती है	118
भ्रांतियों का अप्रत्यक्ष खेल	132
आधुनिक समय के लिए शिव पुराण	141
स्वीकृति	152

प्रस्तावना

गुरुजी महाराज की असीम अनुकंपा से "Blessing Ready for Divinity" का हिन्दी संस्करण "दिव्य आशीर्वाद के लिए तैयार" संगत की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्याधिक आनंद का अनुभव हो रहा है।

इस अवसर पर मैं "Shukrana Guru Ji Maharaj Da Multilingual Group" का आभार प्रकट करना चाहता हूँ जिन्होंने सुरेश वासन अंकल के नेतृत्व में "Blessing Ready for Divinity" पुस्तक को विभिन्न भाषाओं में अनुवादित करने की प्रशंसनीय सेवा की है।

मैं विशेष रूप से अपनी छोटी बहन सीमा नरूला आंटी का भी आभारी हूँ, जिनके अथक प्रयासों से ही "Blessing Ready for Divinity" के हिन्दी संस्करण का यह प्रारूप संभव हो पाया।

इस प्रयास में रह गई त्रुटियों के लिए मैं गुरुजी महाराज के साथ साथ, उनकी संगत से भी मुझे क्षमा कर देने की प्रार्थना करता हूँ।

जय गुरुजी

कमांडर अंकल

01 अक्टूबर 2023

परिचय

जीवन में एक इंजीनियर और फौजी होने के नाते मेरी लिखने की क्षमता केवल औपचारिक संवाद, सरकारी पत्र तैयार करने और फाइलों पर टिप्पणी करने तक ही सीमित थी। कंप्यूटर के ज़माने में ई-मेल लिखना भी इसमें शामिल हो गया, लेकिन शब्दों का दायरा वैसा ही सीमित और औपचारिक रहा।

सन् 2003 से खुद को शब्दों में अभिव्यक्त करने का एक और जरिया बना, गुरूजी महाराज की गुड़गाँव संगत को सत्संग सुनाना। ये मेरे लिए एक आशीर्वाद तब भी था और आज भी है।

गुरु महाराज के चरणों में अपने ईश्वरीय अनुभव बोल कर साझा करने के साथ ही मन में एक तीव्र इच्छा हुई कि इन अनुभवों को कलम की मदद से काग़ज पर उतारा जाए और हाँ, मैंने कई बार कोशिश भी की। लेकिन सच तो यह है कि मेरी साहित्य-क्षमता के सीमित होने के कारण भावनाओं से शब्दों तक का सफ़र कभी दो पन्नों से आगे बढ़ा ही नहीं।

वक्त गुज़रता गया और फिर हमारी जिंदगी में 'कोरोना' आया। हम सब जानते हैं कि न चाहते हुए भी संगत से मिलना-जुलना, सत्संग सुनना और सुनाना सब थम गया, बल्कि मैं भी अधिकांश लोगों की तरह सुबह की सैर के अलावा सारा वक्त घर पर ही गुजारने लगा। बाहर निकलना मुमकिन नहीं था। ऐसे में हमारी मदद आधुनिक टेक्नोलॉजी ने की। हमारी जिंदगी में "ज़ूम" नाम की ऐप ने प्रवेश किया। संगत एक बार फिर एक-दूसरे से जुड़ गई और वो भी घर बैठे हुए। कोरोना के उस बुरे दौर में ज़ूम सत्संग हम सब की दिनचर्या का सबसे अहम हिस्सा बन गए।

ये सच है कि इन में संगत के साथ बैठकर सत्संग सुनने-सुनाने जैसी बात नहीं थी फिर भी डूबते को तिनके का सहारा बनकर आए इन ज़ूम सत्संग ने दुनिया-भर की संगत को बिना किसी भाषा और नागरिकता के भेदभाव के सत्संग से जोड़ दिया। संगत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को चरितार्थ करती हुई दुनिया-भर के कोने-कोने से जुड़ने लगी और ये सिलसिला आज भी जारी है।

फिर एक अप्रत्याशित घटना हुई। कनाडा में रहने वाली सन आँटी ने गुरूजी महाराज से प्रार्थना की कि वो कमांडर अंकल को अपने सत्संग

अंग्रेजी में सुनाने का आदेश करें। गुरूजी ने तुरंत ही जबाव देते हुए कहा, 'कमांडर से बात करो'। जिसके जबाव में सन ऑंटी ने अपने विशेष अंदाज में गुरूजी से कहा कि महाराज अगर ये आपकी इच्छा है तो आप ही कमांडर अंकल को आदेश करें। और फिर महाराज तो महाराज हैं, उन्होंने अपने ही तरीके से उसी शाम को मेरी बात सन ऑंटी से करा दी। तब तक न तो मैं सन ऑंटी को जानता था और ना ही उनकी अंग्रेजी में सत्संग सुनने की इच्छा और गुरूजी से प्रार्थना के बारे में ही मुझे कुछ पता था। उनसे बातचीत के दौरान मैं उन्हें महाराज के चरणों में अपनी पूरी यात्रा को अंग्रेजी में सुनाने के लिए एकदम तैयार हो गया। कनाडा की संगत के थोड़े से उनके मित्र भी हमारे साथ इसमें जुड़ गए।

मेरे अन्दर के कहानीकार को महाराज ने आशीर्वाद देकर जगा दिया। महाराज की कृपा से जो भी मुझे गुरूजी ने दिखाया, समझाया और अनुभव कराया था मैंने वो सब उन को करीब 16 सत्रों में सुना दिया। महाराज की आज्ञा का पालन तो हुआ ही, इन 16 सत्रों के बाद हमारे पास 11 घंटों की विडियो रिकॉर्डिंग भी प्राप्त हो गयी जिसमें मेरी गुरूजी महाराज के चरणों में बिताये गए समय की पूरी कहानी थी। इस रिकॉर्डिंग में वो सब था जिसे अगर कागज कलम का सहारा मिलता तो वो उस किताब का रूप भी ले सकता था जिसका सपना मैं वर्षों से देख रहा था। बस किसी तरह ये रिकॉर्डिंग लिखित शब्दों में परिवर्तित हो जाये। पर ये बहुत ही कठिन काम था।

मैंने अपने दिल की बात उस छोटे से पांच संगत के गुट में साझा करी जिन्होंने ये सत्संग ज़ूम पर सुने थे। सब के सब ख़ुशी-ख़ुशी तुरंत ही इस सेवा से जुड़ने के लिए तैयार हो गए। हाँ, इस सपने को हकीकत तक ले जाने के सफ़र में कुछ और संगत भी जुड़ी और हमारी एक टीम बनकर तैयार हो गई।

इस टीम में सन, नौशीन, राशी और शुभ्रा कनाडा से, धीरजा भट्ट अमेरिका से, साक्षी आस्ट्रेलिया से और आर्ची सहगल, ख़ुशी गुलहर, रिचा खुल्लर, और ख़ुशी सौलंकी भारत से शामिल हुए। ग्यारह घंटों की पूरी रिकॉर्डिंग को इस टीम ने बहुत कड़ी मेहनत से कंप्यूटर पर टाइप कर दिया, इन सब के योगदान से यह सब बहुत ही जल्द भी हो गया।

अब मेरे हाथ में 1,50,000 शब्दों में लिखी मेरे जीवन के सबसे अनमोल पलों की कहानी थी। लेकिन क्या ये एक किताब का रूप ले पाएगी, मैं आश्वस्त नहीं था। तब गुरूजी ने मुझे जीतेन्द्र पंत (जीतू) अंकल को संपर्क

करने की प्रेरणा दी। मैंने उनसे मुलाकात की और सारा का सारा 1,50,000 शब्दों का लेखा-जोखा उनके हवाले कर उन से अपनी सच्ची प्रतिक्रिया देने को कहा। जीतू अंकल ने न केवल अनुमोदन दिया बल्कि उन 1,50,000 शब्दों को कॉट-छॉट कर किताब का रूप देने के सफ़र में आगे बढ़ने में मदद देने का वायदा भी किया। मेरा पूरा विश्वास था कि जीतू अंकल इस काम को बेहतरीन तरीके से पूरा करेंगे। और उन्होंने आशा से अधिक शानदार काम किया भी। थोड़े ही समय बाद उन्होंने पचास हजार शब्दों की एक सम्पूर्ण किताब मेरे हाथ में थमा दी। उनकी मेहनत, योग्यता और अध्यात्मिक सूझ-बूझ ने मुझे काफी अचंभित किया।

उन्होंने न सिर्फ कहीं-कहीं मौजूद खालीपन को भरा बल्कि इस सफर के पड़ावों को एक कड़ी की तरह जोड़कर इस किताब को अंतिम छोर तक पहुँचाने में बहुत मूल्यवान योगदान और मार्गदर्शन भी दिया। उनके इसी बहुमूल्य योगदान से इस किताब को रूप और रूह दोनों मिल सके।

अब वापिस आते हैं मुझ पर..... मैंने पुस्तक के इस अंतिम रूप को न जाने कितनी बार पढ़ा और हर बार कुछ अदल-बदल करता रहा। मैं अब भी इसे छपने के लिए भेजने को तैयार नहीं था। एक विचार आया कि गुरूजी महाराज अगर कोई व्यावसायिक लेखक या लेखिका से इसे एक बार पढ़वा लें तो मैं संतुष्ट हो जाऊंगा। इधर मैंने सोचा और उधर महाराज के एक इशारे से चेतना कीर आंटी, जो एक संगत और पेशेवर लेखिका हैं, अचानक से सामने आ गईं। उन्होंने किताब के आखिरी ड्राफ्ट को पढ़ने की मेरी विनती को स्वीकार किया और कुछ बहुत ही छोटे-छोटे परन्तु महत्वपूर्ण फेर-बदल के सुझाव दिए जो केवल उन्हीं से आ सकते थे।

काम अभी भी खत्म नहीं हुआ था। महाराज की दी हुई आशीर्वाद स्वरूप सौगातों की, जिन सब का जिक्र मैं अपने सत्संग में कर चुका था, तस्वीरें लेना और किताब में उनको शामिल करना अभी बाकी था। चरणजीत दीमान अंकल ने, जो संगत है, और जन-संचार के क्षेत्र से जुड़े है, न सिर्फ ये जिम्मेदारी ली बल्कि बखूबी निभाई भी।

जब गुरूजी-महाराज हमें कोई सेवा देते हैं तो वह स्वयं ही हमको उसको पूरा करने की क्षमता और साधन भी देते हैं। वो जानते हैं कि मैं कोई लेखक नहीं हूँ फिर भी किताब लिखने का मेरा सपना उन्होंने पूरा करवाया, अपने ही तरीके से, उस टीम को जरिया बनाकर जो उन्होंने खुद ही इकट्ठी की थी।

ये किताब, गुरूजी के चरणों में मेरी अध्यात्मिक यात्रा की पूरी सच्चाई है। इसमें वो सब है जो मुझे गुरूजी ने दिखाया, समझाया और एहसास कराया। मैं नहीं जानता वो मुझे अपने भक्त के रूप में कहाँ खड़ा करते हैं लेकिन मैं खुश हूँ, संतुष्ट हूँ और बेहद शुक्रगुजार हूँ अपने इस छोटे से किरदार के लिए जो महाराज ने अपनी संगत के रूप में मुझे दिया। गुरूजी महाराज का बहुत-बहुत शुक्राना।

मुझे अपनी टीम का धन्यवाद करने के लिए शब्द कम पड़ रहे हैं, जिन्होंने बिना किसी स्वार्थ के अपना खूब सारा वक्त दिया और जी-तोड़ मेहनत की।

अब मैं ये किताब गुरूजी महाराज के चरण-कमलों में समर्पित करता हूँ, और हम सब के लिए आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

कमांडर अंकल

गोपाल तेरा आरता

गुरु वो प्रेरणा हैं जो आपके अन्दर के अध्यात्म को बाहर निकलने के लिए प्रेरित करती है। गुरु ही हैं जो एक आध्यात्मिक भूख को जगा सकते हैं। केवल गुरु ही हैं जो अध्यात्म की तरफ जाने वाली राह को दिखाते और रोशन करते हैं। स्वामी विवेकानंद कहते हैं– "गुरु है पहला दीपक और जो दीपक इस पहले दीपक से प्रज्वलित हो वो होता है– शिष्य"। गुरु अध्यात्म को कहीं बाहर से नहीं लाते वो केवल हमारे अंदर सो रही रूह की प्यास को जगाते हैं। गुरु का काम सिर्फ ईश्वरीय रहस्यों, विधि-विधान या निरपेक्षता की सीख देना नहीं है बल्कि गुरु तो शिष्य के अन्दर जो अंधकार का पर्दा हैं उसे उठाते हैं, हटाते हैं और 'एक ज्योत' के दर्शन की ओर ले जाते हैं।

गुरु एक कुदाल की भांति होले होले इस अज्ञान पर अपने ज्ञान से चोट करते-करते उसे हमेशा के लिए खत्म कर देते हैं। वास्तव में शिष्य की तक़दीर हैं गुरु। गुरु चलचित्र (फिल्म) के उस निर्देशक की भांति हैं जो अपनी ही फिल्म में हिस्सा लेते हैं, खुद के लिए एक किरदार चुनते हैं और शिष्य की जिंदगी के चलचित्र में दाखिल होते हैं। इस के लिए तिथि, वक्त, वार और घटनाओं का क्रम भी वह खुद ही चुनते हैं फिर अचानक लीला करते हुए सब कुछ छोड़कर अपने निराकार रूप में विलीन हो जाते हैं।

हमारे गुरूजी महाराज ने कुछ-कुछ ऐसा ही किरदार निभाया। उनके रूप में स्वयं ईश्वर ने धरती पर आने और अपने भक्तों की रक्षा करने का फैसला लिया।

वो भक्त, जिसने अपना सर्वस्व गुरूजी को समर्पित किया हो, गुरूजी उसे अपने आशीर्वाद से उसके बुरे कर्मों के प्रभाव से बचाते हैं, साथ ही साथ हर प्रकार से सकारात्मक तरीके से उस की रूह का भरण-पोषण भी करते हैं।

इंसानी बुद्धि, मन और जिस्म की सीमित क्षमताओं के नीचे फंसी रूह के लिए गुरूजी की ये कृपा और आशीर्वाद, मिट्टी, धूप और बारिश की तरह है। जिसके प्रभाव से भक्त एक फूल की भांति खिलने लगता है। गुरूजी की छत्र-छाया में बिना ज्ञात हुए ही जिन्दगी अंदर-ही-अंदर बदलने लगती है।

दुनिया की चमक-दमक, ऐश-ओ-आराम सब क्षण-भर के सुख हैं, इस बात का एहसास होने लगता है। सादगी जीवन में उतर आती है और अपने

साथ हाथ थामे लाती है इंसानियत जिसे हम 'नीवॉपन' भी कह सकते हैं। अचानक ही संगत जो गुरु-परिवार है आपकी जिंदगी में आपके नए परिवार के रूप में शामिल हो जाती है और दुनिया की चकाचौंध में जो इंसानियत मायने खो बैठी थी वो भक्त के हृदय में प्यार के रूप में जाग जाती है।

संगत कोई खून के रिश्ते या दोस्त यार नहीं है........... वो तो एक गुरु के प्यार के धागे से बंधे भक्तों का परिवार है। गुरूजी ने बड़े सब्र से हर भेद-भाव मिटाकर ऊँच-नीच, छोटे-बड़े को एक कर संगत को जोड़ा है। उनका हम सब को सिखाने का एकमात्र तरीका है- 'शबद्-वाणी' जो सच्ची वाणी है खुद उनकी यानी ईश्वर की लिखी। यह शबद् वाणी, एक ही जोत से पैदा हुए हम सब को एक ईश्वर, एक धर्म एक संदेश की प्रेरणा देते हुए बराबरी पर खड़ा करती है। शबद् ही बताते हैं कि हमारी केवल एक ईश्वर से ही सांझ जरूरी है और यही उद्देश्य है हमारी आत्मा के इस सफ़र का।

शबद् वाणी हमें अपने अध्यात्म का बोध कराते हुए जिंदगी में एक 'सुनहरे नियम' को अपनाने के लिए प्रेरित करती है। इंसानियत और भाई-चारे का 'सुनहरा नियम' जो बिना किसी भेदभाव के सारी संगत को जोड़ता है। इस एक नियम के दायरे में बिना किसी स्वार्थ के एक-दूसरे की मदद करना और किसी को भी कोई दुख तकलीफ न देना ही संगत का उद्देश्य है।

जीवन की बगिया में गुरु का महत्व एक अच्छे माली के समान है जो एक बगीचे को खूबसूरत बनाता है, सही बीज, खाद को इकट्ठा करता है, बीज के हिसाब से उसको मिलने वाली धूप-छाँव का ख्याल रखता है। मिट्टी कैसी भी हो वो घंटों कड़ी मेहनत से सख्त-से-सख्त मिट्टी को भी धीरे-धीरे खोद कर बीज के लिए तैयार करता है। ठीक इसी तरह जिंदगी की कशमकश से जूझते हुए कुछ-कुछ अपने अहम से सख्त हुए हमारे दिल और दिमाग को गुरूजी अपने प्यार के फावड़े से बड़े ही धीरे-धीरे खोदते हैं और प्यार से बारिश में भीगी मिट्टी जैसा नर्म बना देते हैं। वो यह सब हमारे जीवन को ज्यों का त्यों रख कर ही करते हैं, बाहर से हमारे व्यक्तित्व को बिना झिंझोड़े।

मन और बुद्धि को नर्म मिट्टी-सा बना कर गुरु हमारे लिए उपयुक्त बीज का चुनाव करते हैं जो हमारे मन की क्यारी में खिल सके। इस बीज को वह अनुशासन की मिट्टी से ढकते हैं। उनके बनाए अनुशासन में रहना ही हमारी साधना है। अब यह गुरु पर है कि वो चाहें तो इस अनुशासन को एक

औपचारिक तरीके से हमारे जीवन में लाएँ या बिना किसी रूढ़िवादी परम्परा के सीधे-सीधे बताकर। 'साधना' को सफल करने में केवल 'गुरु-कृपा' ही काम आती है, यह एक अटूट सत्य है।

अध्यात्म का बीज बोकर, प्यार से सींच कर कुछ देर के लिए गुरु हमें छोड़कर दूर से ही देखते हैं। दुनिया के हमारे जीवन के बाहरी हालात, हमारे दुख-सुख, उपलब्धियाँ, निराशाएँ, जिंदा दिली और बीमारियां इस बीज से पनपते पौधे पर अपना असर दिखाते हैं और जब यह एक सच्ची रौशनी के लिए तरसने लगता है, तो यहाँ गुरु पुनः प्रवेश करते हैं।

इन बाहरी अनुभवों के पश्चात हमारी सोच और आदतों को देखकर गुरु तय करते हैं किसे थोड़ी और छंटाई की जरूरत है। शायद किसी को कीट नाशक की जरूरत हो या फिर सिर्फ थोड़ी सी प्यार रूपी खाद की। वो जिसकी जैसी जरूरत हो वैसा करते हैं और फिर से एक बार पनपने के लिए छोड़ थोड़ा दूर हट जाते हैं।

गुरु दूर हो कर भी भक्त को सहारा देते हैं, देख-भाल करते हैं और उसके पूर्ण रूप से तैयार होने का इंतजार करते हैं। अपनी शरण में आए शिष्य के लिए गुरु तब तक यह सब करते हैं जब तक वह उनकी इच्छा अनुसार तैयार न हो जाए। वह अपने पास आए हर भक्त को पूर्ण-रूप से जानते और समझते हैं। कौन-सा शिष्य किस आशीर्वाद और किस पथ के किस पड़ाव के लिए परिपक्व है। अपनी दूरदर्शिता के कारण वो हर शिष्य के भाव, श्रद्धा, समर्पण और विश्वास को जानते हैं और इन्हीं के आधार पर अपना आशीर्वाद रुपी बीज उसके हृदय में बोते हैं। गुरु भिन्न-भिन्न प्रकार से हर प्रकार के फूलों से भरे एक बगीचे की तरह अपने हर भक्त को अलग-अलग रूप से तैयार करते हैं। उनका हर भक्त अपना बेहतरीन रूप होता है। हम सब को एक जैसा बनाने का गुरूजी कोई प्रयत्न नहीं करते।

हमारे जीवन में गुरु का घर पर माँ की अहम भूमिका के जैसा महत्व है। माँ हमें खिलाती हैं, पालन-पोषण करती हैं, सिखाती हैं और दुनिया में सर उठाकर जीने के लिए तैयार भी करती हैं। प्यार करते हुए कभी-कभी कड़वी बात कह कर फटकार भी लगाती हैं, गलतियों पर सजा भी देती हैं और फिर माफ़ कर के गले से लगा कर प्यार भी करती हैं। गुरु ऐसी ही एक दिव्य माँ की गोद के समान हैं। जिनके महत्व का वर्णन शब्दों में बयान करने की सोच भी मूर्खता भरी कल्पना है।

मूर्खता इसलिए क्योंकि उनकी महर की प्रचुरता और श्रेष्ठता की व्याख्या करना शब्दों के बस में नहीं है। इसलिए जो भी लिखा जाएगा वो केवल गुरु के अस्तित्व की ओर एक इशारा मात्र होगा........... उनकी महत्वता का सम्पूर्ण ब्यौरा नहीं।

और इशारा कहना उचित भी है.... क्योंकि लेखन में सबसे बड़ा माध्यम है दिमाग। और दिमाग की चंचलता और अस्थिरता से हम सब बखूबी वाकिफ हैं। चंचल और अस्थिर होते हुए भी केवल गुरु कृपा के माध्यम से ही यह मन 'गुरु धुन' में मग्न हो सकता है।

गुरु से प्यार और लगाव हमारी बुद्धि को ठहराव देता है और यह ठहराव हमें गुरु की दिव्य और उच्च चेतना से जोड़ कर गुरु के विचारों और वचनों को अपने भीतर समावेश करना सिखाता है।

गुरु की देख-रेख और छत्र-छाया में भक्त को अपने विचारों और भावनाओं में एक प्राकृतिक विस्तार और वृद्धि महसूस होती है। वो स्वयं की चिंता छोड़कर दूसरों की तकलीफों के प्रति संवेदनशील हो जाता है।

प्रवचनों या केवल ज्ञान की बातों से नहीं अपितु गुरु के द्वारा अपनाए गए उत्साहित करने वाले तरीकों से वो खुद के भीतर झांकना और अपनी गलतियों को मानना पहचानना शुरू करता है।

जैसा वह सोचता है, यह सफर उतना रूमानी या सुहाना नहीं होता इसलिए कभी-कभी भक्त इस प्रकरण से गुजरने का इच्छुक नहीं होता। परन्तु गुरु का कार्य है कि वो उसकी इच्छा के विरुद्ध होते हुए भी उसे इस आध्यात्मिक-परिपक्वता के लिए तैयार करें। गुरु ये कैसे करते हैं यह तो केवल गुरु ही जानते हैं। वो भक्त की जिंदगी से जुड़ी घटनाओं के प्रतिरूप और स्वरूप को ही माध्यम बनाकर उसे तैयार करते हैं। आध्यात्मिक रूप से सबल बनाते हैं। ये गुरु का सबसे चमत्कारी पहलू है। उनके पास मौजूद अनेक दिव्य शक्तियाँ और एक अलौकिक ऊर्जा का संचार करती उनकी उच्च शारीरिक उपस्थिति ही उन्हें अद्‌भुत नहीं बनाते परन्तु उनका चमत्कार यह है कि वो किस तरह अपने भक्तों को एक गूढ़ पक्के तरीके से रूहानी सफ़र के लिए तैयार करते हैं।

इस यात्रा को गुरूजी के साथ प्रारम्भ करने के कुछ प्रारम्भिक कदम जरूरी हैं...... लेकिन ये जरूरी नहीं कि इनका क्रम एक समान हो या सभी पड़ावों की जरूरत हर भक्त को हो।

पहला पड़ाव या पहला चरण है........ भक्त को एक गुरु की चाह होना। चाहत के बाद गुरु के प्रति प्यार का पनपना। क्योंकि प्यार ही विश्वास की तरफ ले जाता है। जैसे-जैसे एक नया भक्त, किसी नौसिखिए के समान, अपनी भक्ति को जागृत करता है, वो खुद को गुरु के प्यार के लिए अपर्याप्त पाता है। यह स्वाभाविक भी है। अगर आप अपने से बेहतर किसी से प्यार करते हैं तो जल्द ही आपको अपने कुछ-कुछ कम होने का एहसास होता है। आप उनके प्यार के लायक खुद को बनाने की कोशिश करने लगते हैं। यही है इस यात्रा का प्रारम्भिक दूसरा चरण........ भक्त के अन्दर गुरु के प्यार के लायक बनने की चाह का जागृत होना।

यही चाह उसे अपनी कमियों, खामियों और गुरु से जुड़ाव में कुछ कम होने का एहसास कराती है और ऐसा केवल मिसाल के रूप में स्वयं गुरु का आचरण ही कराता है कोई किताबी ज्ञान या उपदेश नहीं।

तीसरा चरण है भक्त द्वारा अपनी अंतरात्मा की शुद्धि का प्रयत्न करने की कोशिश करना। यह आवश्यक भी है। प्रार्थना, अनुष्ठान, धार्मिक रीती-रिवाज, मंत्र-तंत्र जैसे तरीकों से अंतरात्मा को शुद्ध कर सकते हैं पर शुद्ध करने के लिए ये ही मार्ग हो, यह जरूरी नहीं। गुरु की केवल एक महर भरी नज़र ये काम चुटकियों में कर देती है..... आत्मा का पूर्ण शुद्धिकरण। ये शुद्धि कोई रस्मों-रिवाजों से बंधी हुई नहीं है...... बल्कि यह तो सभी विकारों को पनाह देने वाली मानसिक दलदल को हटाने से होती है। ये शुद्धि साधना और सेवा के माध्यम से हो सकती है। नित्य दिनचर्या में शरीर की मर्यादा से बंधे हम न जाने कितने ही अच्छे-बुरे कर्म इकट्ठा करते हैं उन सब का निवारण हम सेवा के माध्यम से कर सकते हैं।

भक्त को लगता है कि वो गुरु–आज्ञा के अनुसार निस्वार्थ सेवा कर रहा है लेकिन सच तो यह है कि गुरु हमारे कष्ट अपने ऊपर लेकर हमें सेवा के माध्यम से शुद्ध करते हैं। और सेवा वो इच्छा-पूर्ति वृक्ष है जो हमें शरण भी देता है।

चौथा महत्वपूर्ण चरण है अहंकार का नाश। भक्त के लिए अहम का त्याग बहुत जरूरी है। भक्त बाहरी परिस्थितियों को बहुत बदलने की कोशिश न करके खुद को मजबूत बनाने के लिए केवल गुरु पर ही निर्भर करता है। वह 'मैं' को त्याग कर खुद को एक माध्यम समझता है। अचानक ही उसका खुद को तलाशने और अपनी लोकप्रियता बढ़ाने का जो उद्देश्य होता है वह खो जाता है, क्योंकि इस सब का खोखलापन उसे समझ आने लगता है....... इन सब की क्षण भंगुरता और व्यर्थता का उसे एहसास हो जाता है।

अब वह अपने 'अहम' को कहीं और केन्द्रित करना चाहता है और चेष्टा करता है उस ओर बढ़ने की जो उसे ज्यादा संतोष प्रदान करे और पूर्णता का बोध कराए। लेकिन सही मायनों में परमार्थ या धर्म कभी भी अहम को स्वीकार नहीं करते। भक्त को यह ज्ञान हो जाता है कि धर्म तो उसके अहम को बढ़ावा नहीं देगा और गुरु तो बिलकुल भी नहीं। इसका परिणाम होती है भक्त की भावनात्मक परिपक्वता। वो गुरु के लिए अपने असीमित प्यार और उनको पाने की चाह की तड़प को आंतरिक भावना के रूप में ही रखता है। वो गुरु से प्रार्थना अब भी करता है लेकिन प्रार्थना में से स्वार्थ, स्वयं के लिए दया माँगने की भावना अब शेष नहीं रहती, भक्त अब अपने लिए माँगना और अपने फायदे के लिए परिस्थितियों के बदलाव की चाह को छोड़ देता है। अब जिंदगी के घटनाक्रम में उसे गुरु का हस्तक्षेप साफ-साफ दिखता है।

'अहम' के नष्ट होते ही गुरु से मिलता है एक अनूठा तोहफा ....समर्पण। यही हैं पांचवा पड़ाव जब भक्त गुरु को समर्पित हो जाता है। कहते हैं कि शिष्य को गुरु को पूर्ण समर्पण अवश्य करना चाहिए।

लेकिन कौन किसको समर्पण करेगा? चाह कर समर्पण कैसे हो सकता है? जिस क्षण आप सोचकर समझकर अपने मन और बुद्धि को समर्पित होने के लिए प्रेरित करते हैं उसी क्षण समर्पण, समर्पण नहीं रहता, वह केवल मनुष्य की सोच की प्रतिक्रिया बन जाता है।

इस महान और सराहनीय समर्पण में भी छिपा होता है 'अहम'......... क्योंकि असल समर्पण केवल और केवल 'गुरु-कृपा'[1] से ही हो सकता है।

---

[1] **प्रश्नः** अगर 'मैं' एक भ्रम है तो इस भ्रम का निवारण कौन करता हैं?

उत्तरः 'अहम्' ही अहम का त्याग करता हैं फिर भी 'मैं' शेष रहता है। यही आत्मिक-एहसास का विरोधाभास है। जिन्हें अहम् से अहम का त्याग समझ आ जाता है उनके लिए कोई भी अंतर नहीं रहता कोई भी विरोधाभास नहीं। आप 'भक्ति' का उदाहरण लीजिए..... 'मैं, ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ ईश्वर में ही विलीन होने के लिए। फिर विश्वास और ध्यान मार्ग से खुद को समर्पित कर देता हूँ। अब शेष क्या बचा? पूर्ण-आत्मसमर्पण 'मैं/अहम्' के स्थान पर केवल ईश्वर का अवशेष छोड़ता है जिसमें 'अहम्/मैं' खो जाता हैं। यह है भक्ति की उच्चतम श्रेणी .... पराभक्ति/पूर्ण-समर्पण या फिर पूर्ण वैराग। अपनी, मेरी मैं से थोड़ा-थोड़ा देने से बेहतर है कि आप 'मैं' और 'मेरा' को ही त्याग दें तो बाकी सब खुद-ब-खुद छूट जाता है। स्वामित्व या हक़ या अधिकार स्थापित करने का बीज ही नष्ट हो जाता हैं। बुराई पनपने से पहले ही समाप्त हो जाती हैं। लेकिन इसके लिए वैराग की भावना का प्रबल होना जरूरी है। जैसे एक अथाह सागर में डूबते प्राणी की सतह पर पहुँचने की इच्छा बहुत प्रबल होती है उसी प्रकार समर्पण की इच्छा भी प्राणों से बढ़कर होनी चाहिए।

पदामलाईः श्री रामना महाऋषि

छठा चरण है गुरु में विलीन हो एक हो जाना, यह एक चरण न होकर बाकी सब चरणों के पालन का फल है। 'अहम' के नष्ट होते ही 'गुरु–कृपा' असीम और तत्पर हो जाती है और भक्त के व्यक्तित्व का केवल अवशेष ही बचता है, अब यह व्यक्तित्व गुरु के रहने लायक केवल एक आवरण मात्र है।

भक्त और गुरु अब एक हैं। गुरु उस भक्त को, जिसे अपनी खोई पहचान का एहसास हो और जो जान चुका हो कि असल में वो है कौन, उसी के माध्यम से उसको उसके ईश्वर–स्वरूप होने की वास्तविकता का ज्ञान कराते हैं जैसा कि श्री रामना महर्षि कहते हैंः "ईश्वर, गुरु और मैं एक ही हैं। दिव्य ज्योति हमेशा प्रकाशित रहते हुए एक देह से दूसरी देह में प्रवेश करती है"। गुरु और शिष्य उस दैविक शक्ति के लिए, जो सब में विद्यमान होते हुए भी सबसे ऊपर और परे है, एक 'आरती' की तरह से ज्योत से ज्योत देने का रिवाज बनाते हैं।

सातवाँ चरण....... एक दिव्य खेल। एक बार यह रास्ता परिश्रम–पूर्वक पार कर के विजयी जीवात्मा को अपनी असल आकांक्षा, तमन्ना का एहसास हो जाता है और केवल वो ही उसके सफ़र का उद्देश्य बन जाता है। फिर शुरू होती है 'प्रभु की लीला'। आप के माध्यम से दूसरों को भी ईश्वरीय दर की सीमा तक लाने का खेल। विकसित और जागृत रूह, जिसने सारी सीमाओं बाधाओं को पार कर लिया हो, पवित्र, पावन, धार्मिक बन जाती है और संसार में विषय–विकारों के बीच में रहकर भी सदा पवित्र रहती है।

ज्ञान, ताकत, शुद्धिकरण, पूजा–पाठ और कर्ता होने का आभास.......... इन सब का त्याग कर देती है यह जीवात्मा। अब रूह और ईश्वर का सीखना–सिखाना भी पूर्ण हो चुका।

क्योंकि अब न कुछ पाने की चाह न कुछ खोने का डर, ना ही कोई उम्मीद शेष है। न कोई शुरुआत और न अंत। चूँकि हर शुरुआत और अंत उस एक ही में विलीन है। होना और न होना उस दिव्य–शक्ति के दो हाथ हैं। जिसके पाँव इस संसार में हैं और 'सिर' उच्चतम स्वर्ग में। वो अपने रोम रोम से इस संसार का पालन करते हैं, और उनका निराकार रूप इस संसार को और न जाने कितनी सृष्टियों को बांधे है।

ये कोई आभास, एहसास या मुक्ति नहीं है अपितु ये तो ऊँची उठती हुई वो उड़ान है जो हमें खुद से परे दुनियावी सपनों से दूर एक अनंत सच की

ओर ले जाती है। एक ईश्वरीय कृपा हमारे जीवन में 'गुरु' रूप में आती है और इस उड़ान का माध्यम बनकर इसे संभव करती है। केवल 'गुरु-कृपा' ही हमारे जीवन की एकमात्र स्थाई सच्चाई है।

हमारे गुरूजी के आशीर्वाद उनकी संगत के पूरे घर-परिवार के साथ सदा रहते हैं। उनके आशीर्वाद उन सब के साथ हैं जो सामान्य, विनीत, अच्छे, वंचित, धन का अभाव होते हुए भी प्यार से भरे हों और जो अपने हृदय में गुरु और गुरु संगत को स्थान देते हों।

ईश्वर हमारे दिलों में वास करते हैं लेकिन उनकी मौजूदगी का एहसास अपने हृदय में हम केवल 'गुरु-कृपा' से ही कर पाते हैं। इसीलिए हर हाल में हर पल में गुरूजी की जीत है! जय है।

जय गुरूजी
जितेन्द्र पंत

अपनों की चाह और लगाव

एक पिता होने के नाते मेरी जिन्दगी में होने वाली उथल-पुथल ही मेरे गुरूजी के पास जाने का पहला कारण बनी।

मैं और मेरी पत्नी कमलेश तीन पुत्रियों सबसे बड़ी जया, मंझली शुभा और छोटी इला के गर्वित माता-पिता हैं। शुभा की शारीरिक परेशानी के कारण मैं गुरूजी से मिलना चाहता था। शुभा बचपन से ही दमा और त्वचा रोग से पीड़ित थी। उसकी 16 वर्ष की आयु में से 14 वर्ष उसे इन दोनों बीमारियों से जूझते हुए हो चुके थे। हर तरह के इलाज के बाद भी इनका कोई भी समाधान नहीं सूझ रहा था। हम दोनों अपनी बेटी की तकलीफ़ से काफी परेशान और निराश थे। जिंदगी के इस मोड़ पर मुझे अपनी एक दोस्त और सहकर्मी शशिकला से, जो एक वरिष्ठ सरकारी अधिकारी थी, गुरूजी के बारे में पता चला। उन्होंने मुझे एम्पायर-एस्टेट, सुल्तानपुर में रहने वाले 'गुरूजी' से आशीर्वाद लेने की सलाह दी। आज दो दशक के बाद भी उनके कहे हुए वाक्य मेरे दिमाग में गहराई से गुदे हुए हैं। उन्होंने कहा था कि गुरूजी बहुत शक्तिशाली हैं। वह तुम्हारी बेटी को ठीक कर देंगे।

हर एक माता-पिता की तरह, हम भी अपनी बेटी की खातिर कुछ भी करने को तैयार थे। मैं ऐसा तो नहीं कह सकता कि मैंने उनके इस पूर्ण विश्वास और दृढ़ता से भरे वाक्य पर पूरा-पूरा विश्वास किया लेकिन हाँ, अपनी बेटी की खातिर, ये उम्मीद जरूर की थी कि जो वो कह रहीं थी, सच हो।

शुभा की बीमारियों से ये जंग उसकी शिक्षा पर भी असर डालने लगी थी और हमारी खुशियाँ उसकी चिंता में खोने लगी थीं। वो अपनी मध्यावधि परीक्षाएँ नहीं दे पाई और उसका एक वर्ष व्यर्थ होने की कगार पर था।

मैंने शशिकला से कहा कि वो मुझे अपने साथ गुरूजी के पास ले चलें। उन्होंने कहा जब अगली बार वो जाएंगी तो मुझे ले जाएंगी।

उसी रात मुझे एक सपना आया।

शशिकला और मैं, साथ में कहीं जा रहे हैं और जब हम वहां पहुँचते हैं तो जो सज्जन दरवाजा खोलते हैं, वो शशिकला को तो अन्दर जाने देते हैं लेकिन मुझे रोककर कहते हैं कि 'आप अकेले आना'। अगले दिन सुबह उठा तो मैं यह समझ चुका था कि जहाँ भी मुझे शशिकला ने जाने को कहा

है, वहाँ मुझे अकेले ही जाना है, शशिकला के साथ नहीं। मैंने उनको फोन लगाया और कहा कि गुरूजी के पास मैं खुद जाऊंगा। और इस के बाद हम दोनों ही इस बात को भूल गए।

गाजियाबाद में हमारा एक घर था जिसमें मेरे माता-पिता रहते थे। चूँकि मैं दिल्ली में काम करता था तो दिल्ली-गाजियाबाद की दूरी के कारण मैंने कालका जी में एक घर किराये पर ले लिया था। उसी दौरान हमें गुड़गाँव में एक निर्माणाधीन आवासीय संस्था जलवायु टावर में एक फ्लैट आबंटित हुआ। इस घर के निर्माण के लिए दी जाने वाली किश्तें चुकाना मेरे लिए काफी चुनौती पूर्ण हो चला था। इसलिए मैं इस योजना से बाहर निकलने का रास्ता खोजने में लगा हुआ था। यह लगभग अक्टूबर 2000 की बात होगी जब मैं अपनी पत्नी के साथ दिल्ली से गुड़गाँव जाते हुए 'एम्पायर एस्टेट' के सामने से गुजरा था। तब मैंने अपनी पत्नी को गुरूजी के बारे में बताते हुए शशिकला का दृढ़ता पूर्वक कहा हुआ वाक्य दोहराया और गुरूजी की स्वस्थ करने की अद्‌भुत शक्ति के बारे में बताया। ऐसा कहते वक्त मैंने स्वयं से एक वायदा भी किया कि जब हम गुड़गाँव में रहने आ जायेंगे तब मैं गुरूजी से मिलने जाऊंगा।

उस समय मुझे इस बात का एहसास नहीं था कि मैं अनजाने में गुरूजी से मिलने के लिए एक शर्त रख चुका था।

मेरी आर्थिक दुविधा का एक ही हल था कि हम अपना गाजियाबाद वाला घर बेच दें। पर यह संभव नहीं था क्योंकि अब भी मेरे माता-पिता वहीं रह रहे थे। इस कश्मकश का निवारण अचानक से हुआ जब कुछ ही दिनों में मेरे पिताजी ने मुझे फोन पर सुझाव दिया कि मैं अपना घर अपने ही बड़े भाई को बेच दूँ। इससे मुझे पैसे भी मिल जायेंगे और मेरे माता-पिता भी बिना किसी परेशानी के उसी घर में रहते रहेंगे।

26 जनवरी 2001 को मैं गुड़गाँव में अपने फ्लैट में रहने आ गया। हम आज भी वही रहते हैं। अब, जो मैंने मन ही मन गुरूजी से गुड़गाँव आने के बाद मिलने का वादा किया था मुझे वो एकदम से याद आया। तीन ही हफ्तों के बाद 18 फरवरी 2001 को, मैं गुरूजी से मिलने 'एम्पायर एस्टेट' के लिए निकल पड़ा।

वहाँ पहुँचा तो सोसाइटी के गेट पर मौजूद सुरक्षा कर्मचारी ने बताया कि आज महा शिवरात्रि होने के कारण गुरूजी बड़े मंदिर में मिलेंगे। मैं बड़े मंदिर

के बारे में कुछ नहीं जानता था। वो पवित्र शिव-मंदिर जिसमें न जाने कितनी शक्तियाँ भर कर गुरूजी ने बनाया था और जहाँ 'शबद्-वाणी' की धुन प्यार और खुशियों का संचार करती हैं। मेरे चेहरे पर उभरी अज्ञानता को देखकर गेट पर खड़े उन सज्जन ने एक लाल-बत्ती वाली कार की तरफ इशारा करके मुझे उसका पीछा करने को कहा। और मैंने वैसा ही किया।

मैं एक सुनसान अंधेरी सी सड़क पर छतरपुर मंदिर से भी काफ़ी आगे लगभग 10.5 किलोमीटर उस कार का पीछा करते हुए बड़े मंदिर पहुँच गया। मंदिर के पास ही गाड़ी खड़ी कर के मैं दर्शनों के लिए खड़े भक्तों की पंक्ति में जा कर खड़ा हो गया और उस लाइन में चलते हुए मैं दरबार हाल में पहुँच गया। गुरूजी की एक झलक देखकर मुझे लगा कि शायद मैं गलत जगह आ गया हूँ। गुरूजी किसी भी लिहाज से मेरी कल्पना के गुरुओं जैसे नहीं दिख रहे थे। मैं एक लंबी दाड़ी वाले भगवा-वस्त्र पहने किसी बड़ी उम्र के व्यक्ति को देखने की कल्पना कर रहा था। मंदिर भी अपने-आप में दिखावटी न होते हुए भी बहुत ही भव्य था। ऐसा जरूर लग रहा था जैसे गुरूजी पूरे संसार के स्वामी हों। मैंने फिर भी सोचा शायद ये 'एम्पायर एस्टेट' वाले गुरूजी तो नहीं हैं जिनसे मैं मिलने आया था। इसलिए कतार में अपने आगे खड़े भक्त का कंधा थपथपाकर मैंने उनसे धीरे से पूछा कि क्या ये 'एम्पायर एस्टेट' वाले गुरूजी ही हैं। उनके चेहरे के हाव-भाव से यह एकदम स्पष्ट था कि उन्हें मेरा यूँ व्यवधान डालना अच्छा नहीं लगा, फिर भी उन्होंने धीरे से दबी आवाज़ में मुझसे कहा– 'अंकल आप सही जगह आ गए हो और अब यहाँ से कही भी नहीं जाना'।

उनके कहे ये दो वाक्य मेरे लिए हमेशा के लिए मार्गदर्शक बन गए। मैं हमेशा संगत से यही बात दोहराता हूँ कि **आप सही जगह पर हैं और यहाँ से कहीं भी जाने की जरूरत नहीं है।**

मैं आज यह समझता हूँ कि मैं यहाँ अपनी इच्छा से नहीं पहुंचा था। मैं गुरूजी महाराज के पास पहुंचा क्योंकि गुरूजी चाहते थे कि मैं उनके पास आऊँ। उन्होंने ही ये योजना बनाई और मेरे मूर्खता पूर्वक शर्त रखने के बावजूद उसको सार्थक भी किया।

बड़े मंदिर में मैं बाकी सब भक्तों का अनुसरण करते हुए ठीक वैसा ही करता रहा जैसा वो सब कर रहे थे। एक निर्मल शांति का अनुभव करते हुए मैंने ध्यानपूर्वक शबद् सुने, दिव्य प्रसाद के समान लंगर ग्रहण किया और

गुरूजी के शब्दों से बिना प्रश्न किए आज्ञापालन करना सीखा। लंगर के बाद, एक सज्जन मुझे नया जानकर मेरे पास आए और मुझे बिना गुरूजी से आज्ञा लिए घर जाने को मना किया।

मैं हैरान था कि अब ये आज्ञा कैसे मिलेगी जिसका जबाव मुझे मिला कि वो बस मिल जाएगी। मुझे घर जाने की आज्ञा मिलने पर मैं घर के लिए निकला और सुबह के करीब 2:30 बजे घर पहुँचा।

हमारा घर एक नए-बसे हुए दूर-दराज इलाके में था। यद्यपि मेरे पास सेल फ़ोन था परन्तु मेरी पत्नी के पास फ़ोन न होने के कारण मैं उसको बड़े मंदिर जाने और वहाँ इतनी देर हो जाने के बारे में सूचित नहीं कर पाया था। वो मेरे लिए चिंतित थी। वो जब चिंतित होती है तो परेशान हो जाती है और इस परेशानी का परिणाम होता है उनका बहुत क्रोधित हो जाना। इसलिए मैं घर पहुंचकर बिलकुल चुप रहा। यह एक व्यवहारिक अच्छाई है। अत्यधिक उकसाने वाली परिस्थितियों में भी चुप रहने की मेरी इस आदत ने मुझे जिंदगी में बहुत मदद की है। यह आदत मुझे कभी भी अपनी कमजोरी नहीं लगी बल्कि इस आत्मसंयम ने मुझे सदैव सशक्त ही किया है।

मैं चुप रहा और घर में आने वाला तूफान शांति-पूर्वक गुजर गया। मुझे इस बात का एहसास था कि मेरी पत्नी को मेरा गुरूजी के पास जाना अच्छा नहीं लगेगा। उस समय उसका मानना था कि पारिवारिक व्यक्ति को पहले अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने को महत्व देना चाहिए ना कि गुरुओं के पास जाकर समय बर्बाद करना चाहिए। उसकी ऐसी सोच के लिए मैं उसे दोष नहीं दे सकता था। यह स्वाभाविक ही था।

मैंने गुरूजी के बारे में अपनी पत्नी को अधिक नहीं बताया क्योंकि मैं नहीं जानता था कि वो इसे स्वीकार करेंगी या नहीं। मैं यह भी नहीं चाहता की था वो मेरे गुरूजी के पास जाने का विरोध करे या कुछ उल्टा-पुल्टा कहे। इसलिए बस चुपचाप मैं हर शनिवार को 'एम्पायर एस्टेट' जाने लगा।

मुझे लगता था कि गुरूजी स्वयं ही तय करेंगे कि उसको कब और कैसे अपने पास बुलाना है। मैं चुप रहा और उसने भी मेरे गुरूजी के पास जाने पर कोई आपत्ति नहीं की।

गुरूजी की मौजूदगी गुरूजी के दरबार को बिलकुल स्वर्ग जैसा बना देती थी। भक्त अपनी गाड़ियाँ 'एम्पायर एस्टेट' के बाहर ही गेट पर खड़ी करते और जैसे-जैसे वह गुरूजी के दरबार की तरफ चलते एक तीव्र सुगंध को

भी महसूस करते थे। सुगंध गुलाबों जैसी पर गुलाब नहीं, इत्र जैसी पर इत्र भी नहीं। यह खुशबू और भी तीव्र हो जाती जब हम गंगा की तरह बहती हुई गुरूजी की कृपा नदी के पास पहुँचते...... ये सब भगवान शंकर की घोषणा की तरह लगता मानो वो कह रहे हों कि गुरूजी के रूप में वह स्वयं विराजमान हैं। शुरुआत में मैं काफी उलझन में था, सोचता था कि शायद गुरूजी बहुत बढ़िया इत्र लगाते हैं, जो आस-पास के क्षेत्र में भी छिड़की जाती हैं पर बाद में हुए अनुभवों ने मेरी सोच को सुधार दिया।

ई-विला एक आवासीय फ्लैट था जिसमें एक विशाल, खूबसूरत और अच्छी तरह से रौशन एक बड़ा-सा कमरा था। जहाँ गुरूजी बैठते थे। यह नियम था कि गुरूजी को मिलने से पहले हम हाथ धोते थे। मैंने थोड़े दिनों के बाद ही जल्दी आना शुरू कर दिया क्योंकि उस वक्त गुरूजी महाराज रसोईघर के बाहर रखी एक कैबिनेट (छोटी अलमारी) पर बैठे होते थे, अपने सैर पर पहन कर जाने वाले आरामदायक कपड़ों में, जो अधिकतर एक आधी बाजू की टी-शर्ट, पतलून और सैर वाले जूते होते थे।

मुझे लगता था इस अनौपचारिक मुलाकात के तरीके में अपनी खुशकिस्मती से शायद मैं उनके अधिक करीब बैठ सकता था और उनकी वाणी सुन सकता था। पर उनसे बात करने का तो सवाल ही नहीं था। कुछ समय के बाद गुरूजी उठते, अपने कमरे में जाते और चोला पहनकर आकर अपने सिंहासन पर बैठ जाते।

उनके भक्त, संगत, उनके लिए फूलों के गुलदस्ते लाते और गुरूजी कुछ से बात करते और बाकी माथा टेक कर वहीं हाल में बैठ जाते। गुरूजी के पास बैठने की एक होड़ लगती थी। लेकिन मैं उनके चरण-कमलों में माथा टेककर सबसे पीछे जाकर ही बैठता था। हर किसी को गुरूजी से वो मिल जाता जिसकी उसे जरूरत थी। काफी लम्बे समय तक मेरी मौजूदगी पर गुरूजी ने प्रत्यक्ष-रूप से कोई ध्यान नहीं दिया। मुझे एक बेहतरीन तरीके से मानो नजर अंदाज किया हो। ऐसा मैं उस वक्त सोचता जरूर था पर मैंने गुरूजी के पास जाना नहीं छोड़ा।

मुझे लगता था कि मेरे लिए यही जगह है और ये ही मेरे गुरु हैं। मैं यह पवित्र स्थान छोड़कर कहीं नहीं जा रहा हूँ चाहे मैं वहाँ होने के काबिल हूँ या नहीं। इसलिए मैं इस बात का बहुत ख्याल रखता था कि मुझसे कभी भी कुछ ऐसा न हो जाए जिससे किसी को कोई बाधा पहुंचे या शिकायत हो और

मुझे वहाँ से बाहर निकाल दिया जाए। इसलिए गुरूजी को नाराज न करने की कोशिश में मैं उनके आसन से बहुत दूर एक कोने में छिपकर बैठता था ताकि गुरूजी का ध्यान मेरी तरफ न जाए। गुरूजी के पास मैं अपनी बेटी की तकलीफ और बीमारी की वजह से गया था पर यह बात मेरे स्मृति पटल में कहीं बहुत नीचे और पीछे चली गयी थी। गुरूजी का दरबार वो दिव्य स्थान था जिसका माहौल इतना संतोषजनक और जबरदस्त असर वाला था कि जिंदगी की रोजमर्रा की कशमकश और उलझनों के मायने ही खो जाते थे।

हॉल के अंदर आकर, गुरूजी को माथा टेककर जब हम बैठते तो हमें 'चाय-प्रसाद' मिलता। गुरूजी के सेवक वो प्रसाद हमें दे देते। वक्त के साथ-साथ मैं कुछ सेवादारों के नाम से भी वाकिफ हुआ जैसे– सिंगला अंकल, जोशी अंकल[2] और कुछ अन्य। करीब रात के 9 बजे गुरूजी अपने हाथ से 'हलवा-प्रसाद' देते। यह एक पूर्णतः अनुशासित प्रक्रिया थी। हम चुपचाप पंक्ति में खड़े होते, अपनी बारी आने का इंतजार करते और गुरूजी हमारे हाथों में 'हलवा-प्रसाद' रख देते। गुरूजी अपने आशीर्वाद रूपी 'हलवा-प्रसाद' को देने के लिए केवल अपना एक हाथ इस्तेमाल करते और हमारे दोनों जुड़े हुए हाथ भी ऐसे भर जाते कि प्रसाद के नीचे गिरने का डर लगता। ये चमत्कार हम रोज देखते। हम बाहर जाकर प्रसाद का एक-एक दाना खाते और हाथ धोकर वापिस हॉल में बैठ जाते। थोड़ी देर बाद संगत लंगर के लिए एक-साथ बैठ जाती थी।

गुरूजी के सामने बैठकर उस दिव्य लंगर को खाना एक अनूठा अनुभव था। पहली बात, लंगर अकेले नहीं खाते थे। हम संगत के तीन अन्य भक्तों के साथ एक ही थाली से लंगर खाते। उन अन्य तीन भक्तों को हम नहीं जानते थे इसलिए कभी-कभी एक हिचकिचाहट भी होती थी, उनके साथ लंगर खाने में। आखिरकार हम सब अलग-अलग ही हैं। फिर भी एक ही थाली में लंगर करना होता था, बिना किसी सामाजिक पहचान, उम्र, कपड़ों की वेशभूषा, रूप, रंग, स्थान या जाति के भेदभाव के। शुरु-शुरु में मुझे किसी के भी साथ लंगर खाने में झिझक होती थी, शायद मेरा अहंकार आड़े आता था।

---

[2] भारत में अंकल और आंटी अक्सर अनौपचारिक रूप से बड़ों को सम्मान देकर बुलाने का तरीका है। जरूरी नहीं कि आप उनके रिश्तेदार हों, इस तरह से बुलाकर गुरूजी तुरंत ही संगत से प्यार और इज्जत देने के माध्यम से जुड़ जाते। नई संगत हो या पुरानी, उनके सामने सब बराबर हैं क्योंकि महाराज बराबरी और उदारता का बेहतरीन रूप हैं। इसलिए एक ही रिश्ते से सबको बुलाकर बराबरी का दर्जा दिया जाता है।

एक शाम, सत्संग शुरू होते समय मैंने गुरूजी को प्रणाम करते हुए अपने पीछे खड़े भक्त को देखा जो नियम के अनुसार, मेरे साथ बैठने वाले थे।

जिसका ये भी मतलब था कि मुझे उनके ही साथ बैठना और लंगर करना पड़ेगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि उस समय उनका हुलिया मुझे पसंद नहीं आया और मैं उनके साथ बैठकर लंगर करने को टालना चाहता था। मैंने मन ही मन क्षमा मांगते हुए यह बात गुरूजी से कह भी दी। बड़ी होशियारी से मैंने उनके साथ बैठने को टाल भी दिया। अचानक एक सेवक मेरे पास आए, मुझसे उठने को कहा और ठीक उसी व्यक्ति के बगल में बैठा दिया जिससे मैं इतनी देर से दूर बैठना चाह रहा था। उस ही क्षण मुझे यह आभास हो गया था कि गुरूजी मेरे दिमाग में चलने वाली हर बात को जानते थे। शुरू में ये बात काफ़ी डराने वाली भी लगी। दिमाग तो वश से बाहर होकर पता नहीं कहाँ-कहाँ दौड़ता है।

जल्द ही मैंने इस वास्तविकता को बिना किसी भी बहसबाजी के स्वीकार कर लिया कि मुझे किसी के भी साथ बैठना और लंगर खाना पड़ेगा। जैसे-जैसे मुझे अनजान लोगों के साथ बैठकर लंगर खाना अच्छा लगने लगा वैसे ही अहंकार नाम की पहली बाधा भी दूर हो गई। गुरूजी ने मुझे लोगों को उनकी सामाजिक पहचान और वेशभूषा के आधार पर ना आंकना और फर्क ना करना भी सिखा दिया था।

मेरे पास बैठे हुए भक्त की 'जीवात्मा' उसकी वेशभूषा से अलग, अध्यात्म के मार्ग में मुझसे कहीं ज़्यादा जागरूक हो सकती है। वक्त के साथ मुझे लंगर बॉट कर खाना आ गया। आजकल, इतने वर्षों के बाद भी जब कोई मुझे अकेले लंगर खाने को कहता है तो ये बात काफ़ी अटपटी लगती है। अब मैं खुद से संगत को अपने साथ मिलकर लंगर खाने को कहता हूँ। मुझे यह समझने में कुछ वक्त जरूर लगा कि हम सब इंसान एक ही हैं जो कुदरत की परोसी हुई एक ही थाली से निवाला पाते है।

गुरूजी के पास जाने की खुशी तो थी ही पर भीतर ही भीतर एक आशंका भी थी कि क्या गुरूजी ने मुझे अपने भक्त के रूप में स्वीकारा है? यद्यपि मैं गुरूजी के पास आठ महीनों से जा रहा था परंतु गुरूजी ने न तो कभी मुझसे बात की ना ही मेरी मौजूदगी पर ध्यान दिया। मैं हैरान हो कर सोचता था कि क्या मैं इस जगह के योग्य भी हूँ और क्या गुरूजी कभी मुझसे बात भी करेंगे?

एक दिन हमेशा की तरह मैंने गुरूजी के सामने घुटनों के बल बैठ कर, नजरें झुकाकर, हलवा-प्रसाद लेने के लिए हाथ आगे किया। मैंने एहसास किया कि काफी समय बीतने के बाद भी मेरे हाथ में प्रसाद नहीं आया था। मैं मन ही मन बहुत घबराया और डर से सोचने लगा कि शायद अब मुझे हलवा-प्रसाद भी नहीं मिलेगा और ये नकारात्मक सोच भी आई कि गुरूजी के दरबार में शायद यह मेरा आखिरी दिन है और अब मैं बाहर निकाल दिया जाऊंगा। ऐसा सोचते हुए डरते-डरते मैंने ऊपर देखा और पाया की अपने हाथ में हलवा-प्रसाद लेकर महाराज मुझे देखते हुए मुस्कुरा रहे थे। उन्होंने बड़े प्यार से पंजाबी में पूछा 'तुम्हारा नाम क्या है?'[3]

इस एक पल का मैंने बड़ी बेसब्री से एक लम्बा इंतजार किया था लेकिन जब ये पल आया तो मैं सुन्न पड़ गया था। चारों खाने चित हुए खिलाड़ी जैसा महसूस कर था। दिल जोर-ज़ोर से धड़क रहा था और दिमाग काम ही नहीं कर रहा था। मैंने घबराई हुई दबी-सी आवाज़ में अपना नाम बताया 'राजकुमार'। फिर उन्होंने पूछा कि मैं क्या करता हूँ। मैंने गुरूजी को बताया कि मैं नौ सेना का सेवानिवृत्त कमान्डर हूँ। गुरूजी ने एक प्यारी-सी मुस्कुराहट के साथ मेरे फैले हुए हाथों में हलवा-प्रसाद दिया और कहा 'आ जाया कर'।

वो एक अनमोल और जिंदगी भर संजोकर रखने वाला पल था। गुरूजी ने मुझसे बात की और अपने पास आते रहने की अनुमति भी दी।

हम हलवा-प्रसाद हमेशा मंदिर के बाहर जाकर ही खाते थे इसलिए जैसे ही मैं उठकर बाहर की ओर चलने लगा किसी ने मेरे कान में धीरे से कहा 'बधाई हो अंकल' गुरूजी ने आपको दाखिला दे दिया है।

मेरी खुशी का ठिकाना नहीं था। मैं ऐसे बाहर निकला जैसे मैंने जीवन का सबसे बड़ा और कड़ा इम्तिहान पास कर लिया हो। मेरे मन में भावनाओं का सैलाब था और विचारों का तूफान भी। आज से मैं यहाँ का हूँ. यह मेरे गुरूजी हैं। मेरी कमियों के बावजूद उन्होंने मुझे अपनी संगत के रूप में स्वीकार कर लिया है। अब मुझे कोई यहाँ से नहीं निकाल सकता। मैं उनका भक्त हूँ और इसके अलावा मैं क्या हूँ कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरे मन में क्या

---

[3] मैंने इस शब्दों को उद्धरण चिन्हों (" ") में रखा है, परन्तु यह गुरूजी के द्वारा कहे गए वाक्य के हूबहू शब्द नहीं हैं। गुरूजी अक्सर पंजाबी में बात करते थे और मैंने अनुवाद को बोल-चाल की भाषा के करीब रखा है।

है इससे कोई अंतर नहीं आता, मैं क्या करता हूँ, मेरी पृष्ठभूमि क्या है, मैं कहाँ से आया हूँ, कुछ भी मायने नहीं रखता। मैं गुरूजी की संगत का हिस्सा हूँ और आज से बस यही मेरी पहचान है।

और वास्तव में तब से सिर्फ यही मेरी पहचान है। बाकी सब कुछ जो जिंदगी ने दिया इस पहचान के सामने कुछ भी महत्व नहीं रखते। मैं सिर्फ 'गुरूजी की संगत' हूँ और यही बने रहना चाहता हूँ। गुरूजी महाराज की उपस्थिति में होना ही इतना अद्भुत एहसास है। उस क्षण को याद कर आज भी मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह गुरूजी की संगत के रूप में मेरी जिंदगी का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण पल था।

घर लौट कर मैंने अपनी पत्नी को गुरूजी द्वारा मुझे अपनी संगत का हिस्सा स्वीकारे जाने की बात बताई। मैंने एक खूबसूरत नाटकीय तरीके से कहा कि 'तुम जानती हो क्यूँ? क्योंकि गुरूजी ने स्वयं ऐसा कहा है! वो अपने भीतर उठते विचारों को भीतर ही रखकर केवल मुझे देर तक देखती रही। कुछ बोली नहीं।

मुझे 'एम्पायर एस्टेट' जाते हुए एक साल बीतने को था तभी गुरूजी पंजाब चले गए। क्योंकि उस वक्त संगत आपस में बहुत कम बात करती थी इसलिए मुझे इस बात का पता ही नहीं चला। मैं हर शनिवार को जाता, बंद गेट के सामने माथा टेकता और घर लौट आता। मार्च 2022 की एक रात को गुरूजी मेरे सपने में आए और बोले की मुझे अभी मंदिर आने की जरूरत नहीं है। गुरूजी ने मुझसे यह भी कहा कि वो 14 अप्रैल को 'एम्पायर एस्टेट' लौटेंगे और मैं उस दिन ही आऊँ उससे पहले नहीं। अगले दिन सुबह मैंने यह बात अपनी पत्नी को यह सोचकर बताई कि वो मुझसे प्रभावित हो जाएगी पर उसने मुझे कुछ ऐसे देखा जैसे वो मेरी अकल पर तरस खा रही हो। हाँ, हमेशा की तरह उसने कुछ कहा नहीं।

मैं अब 'एम्पायर एस्टेट' गुरूजी की दी हुई तारीख पर ही गया। वहाँ जाकर मुझे पता चला कि गुरूजी के पंजाब से लौटने के बाद वो 'संगत' का पहला दिन था। गुरूजी एक दिन पहले ही पंजाब से लौटे थे। मैं बहुत खुश था। और उत्साहित भी क्योंकि मेरा सपना सच हो गया था।

गुरूजी के स्वप्न अवास्तविक नहीं होते। वो तो बहुत ही सार्थक होते हैं। इस स्वप्न ने मुझे यह विश्वास दिलाया कि गुरूजी मुझपर नज़र बनाए हुए हैं और अब मुझसे बात भी करने लगे है।

घर लौट कर मैंने अपनी पत्नी को बताया कि जैसे गुरूजी ने कहा था ठीक वैसे ही गुरूजी 'एम्पायर-एस्टेट' में मौजूद थे। उसे हैरानी जरूर हुई पर चेहरे के हाव-भाव सामान्य थे और वो चुप रही। पहली बार मुझे ऐसा लगा कि वो थोड़ा विनम्र हुई थी और शायद अब वो मेरे गुरूजी के पास जाने की बात को लेकर उतना परेशान या गुस्सा भी नहीं थी। लेकिन उसने कभी-भी मेरे साथ चलने की इच्छा नहीं दिखाई जबकि मैंने संगत से सुना था कि गुरूजी अक्सर पति-पत्नी को साथ आने को कहते थे। मैं बहुत दिल से चाहता था कि वो भी मेरे साथ गुरूजी के पास चले और यह उम्मीद भी करता था कि समय आने पर गुरूजी स्वयं ऐसा कर देंगे।

यह चमत्कार भी जल्द ही हुआ। एक सुबह लगभग 5 बजे मैंने उसको अपने पलंग के किनारे पर परेशान-सा बैठे देखा। उसने मुझे बताया कि उसने घर के अंदर किसी चोर को देखा है। मैंने उससे पूछा कि उसने मुझे पहले क्यों नहीं जगाया। ऐसी बातें करते हुए हम दोनों पूरे घर में चोर ढूँढने लगे लेकिन हमें कोई नहीं मिला। सारे दरवाजे बंद थे जिन पर अंदर की तरफ से ताले लगे थे। यह बात तो साफ़ थी कि बाहर से कोई भी अंदर नहीं आया था।

थोड़ा शांत होकर हम बातें करने लगे। मैंने अपनी पत्नी से पूछा कि चोर कैसा दिखता था। उसने कहा कि वो एक गंजा आदमी था जिसने एक राजसी चोला सा पहना था और वो बड़ा ही खूबसूरत था। वो फ्रिज के पास अपने हाथों को छाती के सामने बांधकर खड़ा था और पूरे घर को मुस्कुराते हुए देख रहा था। सारी बत्तियां बन्द थीं पर ऐसा लग रहा था कि वो स्वयं रोशनी भी दे रहा था।

उसकी ये बातें सुनकर मैं अचंभित हो खुद से ही पूछ रहा था कि क्या गुरूजी महाराज हमारे घर पधारे थे? मैंने अपने मन की यह बात अपनी पत्नी को हाथ जोड़कर बताई। मुझे डर था कि कहीं वो मेरे गुरूजी के पास जाने का विरोध न करने लगे इसलिए मैंने उस से कहा कि मैं झगड़ा नहीं करना चाहता पर मुझे लगता है कि जिस खूबसूरत व्यक्ति को उसने देखा था वो मेरे गुरूजी थे। वो मेरी यह बात सुनकर चुप रही। उसकी चुप्पी ने मुझे हौसला दिया कि मैं अपनी बात पूरी कर सकूँ। मैंने उससे कहा कि गुरूजी उसे आशीर्वाद देने आए थे और शायद गुरूजी अब चाहते थे कि वो भी गुरूजी से मिलने आए। मैंने उस से विनती की वो केवल एक बार मेरे कहने पर मेरे

साथ उनके दर्शन के लिए चले और उसके बाद खुद तय कर ले कि उसे दोबारा जाना है या नहीं। बड़ी हैरानी की बात थी– वो मान गई। मैं बहुत खुश हुआ कि आखिरकार अब मैं उसे अपने साथ गुरूजी से मिलाने ले जा सकूँगा। अब तक मुझे लगता था, जैसे मैं आधा-अधूरा ही गुरूजी से मिलने जाता हूँ।

अगले शनिवार को जैसे ही हम गुरूजी के दरबार में दाखिल हुए, मेरी पत्नी ने महाराज को देखा और धीरे से मुझसे कहा कि यह वो ही हैं जो उस दिन हमारे घर में घुस आए थे। हमने गुरूजी को प्रणाम किया, माथा टेका और उसके बाद मैंने उसे कमरे में पीछे चलकर बैठने के लिए इशारा किया। इसके विपरीत उसने आगे ही बैठने का निर्णय लिया और धीरे से मुझे भी वैसा ही करने को कहा।

मैंने उसे समझाने की थोड़ी सी कोशिश की कि हमें जितना हो सके उतना पीछे बैठना चाहिए, पर वो नहीं मानी। हम गुरूजी के इतने पास थे कि वो हमारी बात सुन सकते थे इसलिए मैंने बिना कुछ भी और बोले उसे वैसा करने दिया जैसा वो चाहती थी। वो गुरूजी के ठीक सामने बैठ गई और मैं कमरे के आखिर में रखे म्यूजिक सिस्टम के पास जाकर बैठ गया जिसपर दिव्य शबद् चल रहे थे। उस जगह पर गुरूजी के बंद कमरे से गुरूजी की गुलाब-जैसी खुशबू भी आती थी और मेरा वहाँ बैठने का एक यह कारण भी था।

एक प्यारी सी खुशबू गुरूजी के पास से हमेशा आती थी। भक्त जब भी गुरूजी को याद करते उन्हें यह खुशबू महसूस होती। जब और जहाँ गुरूजी अपनी मौजूदगी का एहसास कराना चाहते, तब-तब भक्तों को यह खुशबू आती थी।

मेरी पत्नी गुरूजी को भली-भांति देखने और भांपने के लिए आगे बैठी थी। हर बार जब भी वो उनको देखती, गुरूजी अपनी बातचीत को रोकते, मुड़कर उसे देखते और वो फौरन सर झुका देती। ऐसा कई बार हुआ।

इधर घर पर अब मेरी पत्नी चार-पांच दिन तक सो ही नहीं पाई, उसके ज़हन में हर वक्त गुरूजी की आँखें ही दिखती रहीं। गुरूजी की नज़र में बहुत शक्ति है। हमारे दिमाग की समझने और सोचने की क्षमता से कहीं ज्यादा। अगले शनिवार, उसने खुद मेरे साथ चलने की इच्छा व्यक्त की और इस बार हमारे प्रणाम करने और माथा टेकने के बाद उसने धीरे से मुझ से कहा कि वो भी मेरे साथ कमरे में पीछे की तरफ ही बैठेगी।

गुरूजी की नज़र की दिव्य ताकत को सहन करना आसान नहीं होता। मैंने कहा कि हम दोनों तो कमरे के पिछले हिस्से में बैठने के लिए ही बने थे। क्योंकि जो लोग गुरूजी के सामने बैठते थे, वो तो शायद किसी और ही दुनिया से आए थे।

कुछ समय बीतने पर मेरी पत्नी ने अपने लंबे बाल कटवाकर काफी छोटे करवा लिए। हमारे अगली बार 'मंदिर' जाने पर कई अन्य महिला भक्तों ने उस से कहा कि बाल कट जाने के कारण वो उसे पहचान ही नहीं पाईं थीं। अब मेरी पत्नी ने भी सोचा कि अगर वो इतना अलग दिख रही थी तो शायद गुरूजी भी उसको पहचान नहीं सकेंगे। बड़ी हिम्मत कर के वो फिर से एक बार आगे बैठ गई।

मैं हमेशा की तरह पीछे जाकर अपनी जगह पर बैठ गया। वो गुरूजी के आसन से करीब-करीब 3 मीटर की ही दूरी पर बैठी थी। वो जैसे ही बैठी, गुरूजी ने सिंगला अंकल को बुलाया और मेरी पत्नी की तरफ इशारा करते हुए धीरे से कुछ कहा। सिंगला अंकल मेरी पत्नी के पास आए और बधाई देते हुए उसको बोले कि गुरूजी ने उसको सीधे ही अपने कॉलेज में दाखिला दे दिया है। दरअसल गुरूजी ने सिंगला अंकल को मेरी पत्नी से यह कहने के लिए कहा था कि वो (गुरूजी) जानते हैं कि ये छोटे बालों वाली आँटी असल में 'कमांडर आंटी' ही है।

गुरु और शिष्य के बीच में कुछ भी छिपा हुआ नहीं होता। इस एक छोटे पर प्यार भरे तरीके से, गुरूजी ने उसको तुरंत ही संगत में दाखिला दे दिया। उस दिन के बाद कभी-भी मेरी पत्नी ने आगे बैठने की इच्छा नहीं की। लेकिन जब-जब महाराज ने चाहा, हम दोनों उन – उन अवसरों पर महाराज के चरण-कमलों के करीब बैठे।

मैंने एक बात और सीखी और वो यह कि गुरूजी का लंगर हमेशा पर्याप्त होता है। अक्सर जब एक ही थाली से चार लोग खाते थे तो हर एक के हिस्से में दो रोटी ही आती थीं। मुझे लगा कि दो रोटी मेरे लिए काफी नहीं है, तो एक शाम मैंने दर्शनों के लिए जाने से पहले कुछ खाकर जाने का सोचा। उस दिन, गुरूजी ने इतनी मात्रा में लंगर दिया कि विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह हुआ क्या। हमेशा की तरह पूरी भरी थाली, उस पर पहाड़ जैसे रखे समोसे और साथ में चार अलग-अलग तरह के मीठे। ऊपर से जो थाली चार लोग बाँटकर खाते वो केवल मुझे और मेरी पत्नी, दो जन को ही मिली।

उस थाली में जितना हम घर पर चार वक्त के खाने में खाना खाते उतना खाना था, जो हम दोनों को ख़त्म करना था। मेरी पत्नी ने उतना सा ही खाया जितना वो हमेशा खाती थी बाकी का सारा लंगर मुझ अकेले को खाना था, जो मैंने खाया भी।

मेरे इतना सारा लंगर खाने से मैं और मेरी पत्नी दोनों ही हैरान थे कि इतना मैं कैसे खा पाया। लेकिन उस दिन एक बात समझ आ गई कि जो भी गुरूजी देते हैं वो हमेशा ही हमारे लिए काफी से कुछ ज्यादा ही होता है।

धीरे-धीरे हमने सब कुछ गुरूजी को सौंप दिया। उन्होंने भी हमारी सारी जिम्मेदारियों को स्वयं उठा लिया। जैसे-जैसे हम समर्पण करते गए वैसे-वैसे गुरूजी हमारी जिंदगी का नियंत्रण अपने हाथ में लेते गए। न सिर्फ हमारे भाग्य को अपितु रोज़मर्रा की छोटी-छोटी बातों को भी गुरूजी ने पूरी तरह से अपने नियंत्रण में ले लिया।

अब हमारी जिंदगी में बिना गुरूजी की आज्ञा के, बिना उनकी मंजूरी के, बिना उनके चाहे, बिना उनके किए, कुछ भी नहीं होता। जिस क्षण से हम उनकी संगत बने जिंदगी हमेशा के लिए बदल गई।

मेरे मन में गुरूजी से एक और चीज़ पाने की बड़ी इच्छा थी और वो था गुरूजी का स्वरूप। संगत के कुछ लोगों की तरह मैं भी महाराज की छोटी-सी फोटो अपनी कमीज की जेब पर लगाना चाहता था। उन दिनों महाराज की तस्वीर इतनी आसानी से नहीं मिलती थी। हम तस्वीर को खुद छपवाकर संगत में नहीं बाँट सकते थे, जैसा आजकल होने लगा है। इसके लिए सख्त मनाही थी। ये तस्वीर संगत को गुरूजी या तो खुद देते थे या उनके आदेश पर उनके सेवक। संगत इन तस्वीरों को बड़े गर्व से संजो-संजोकर अपने कमीज की ऊपर वाली जेब पर लगाती थी। संगत के लिए गुरूजी का स्वरूप स्वयं गुरूजी ही थे इसलिए जब भी स्वरूप मिलता ऐसा लगता कि हम सच में गुरूजी को अपने साथ घर लेकर आए हैं।

मैंने इस बारे में कर्नल चटर्जी से बात की। लंगर के वक्त मुझे और मेरी पत्नी को उनके साथ बैठने का सौभाग्य मिला। चटर्जी अंकल, जब से गुरूजी की शरण में आए तब से वह एक उच्च श्रेणी के भक्त रहे और साथ-साथ वो सेना में मेरे वरिष्ठ अधिकारी भी थे। वो हमेशा गुरूजी का स्वरूप अपनी जेब पर लगा कर रखते। जब मैंने उनसे स्वरूप वाली अपने मन की बात कही

तो उन्होंने मुझे गुरूजी से स्वरूप माँगने की सलाह दी। मैंने उन्हें बताया कि गुरूजी के सामने कुछ भी बोल सकने की मेरी हिम्मत नहीं थी।

इस पर उन्होंने कहा कि मैं आँख बंद करके प्रार्थना करूँ, 'महाराज' मुझे आपका स्वरूप चाहिए। मुझे उनकी सलाह पर विश्वास नहीं आया पर सोचा कर के देखते हैं। मैंने चुपचाप से आंखें बंद की और गुरूजी से मन ही मन प्रार्थना की कि क्या मुझे भी स्वरूप मिल सकते हैं? मैं भी अपनी कमीज की जेब पर लगाना चाहता हूँ।

लंगर के बाद, हाथ धोकर हम घर जाने के लिए गुरूजी की आज्ञा लेने के लिए पंक्ति में खड़े हो गए। गुरूजी ने कुछ इशारा किया और एक सेवादार उनके पास एक डिब्बा ले आए। जब मेरी बारी आई, तब गुरूजी ने वो डिब्बा खोला, चार स्वरूप गिने और मुझे दे दिए। उसके बाद डिब्बा बंद करके वापिस भिजवा दिया। मेरे पूरे परिवार के लिए स्वरूप ! इतनी जल्दी सुन ली गुरूजी ने मेरी प्रार्थना! एक लंबे समय तक मैं बड़े गर्व से वो स्वरूप अपनी जेब पर लगाता रहा। आज भी गुरूजी के आशीर्वाद के रूप में वह स्वरूप मेरे साथ ही रहते है। और हाँ, उन बेशकीमती पलों की एक यादगार भी हैं– ये स्वरूप।

मेरे बच्चों के सर पर गुरूजी ने अपना हाथ रखा

अक्सर, ऐसा होता है कि जिंदगी की परेशानियाँ और कश्मकश महाराज की शरण में हमारे जाने का एक अहम कारण बनती हैं।

जब जिंदगी में सब सही चल रहा हो तब हमें भगवान की जरूरत कहाँ महसूस होती है। जब-जब तकलीफ, दुख जीवन में आते है तब ही भगवान याद आते है। अगर मेरी बेटी बीमार नहीं होती तो क्या मैं तब भी महाराज के पास जाने का प्रयत्न करता? शायद नहीं। इसलिए, बहुत बार हमारे जीवन में आने वाले दुखों में भी छुपे आशीर्वाद हो सकते है। यह बात गुरूजी से जुड़ने के बाद समझ में आ गई थी। गुरूजी से जुड़ने के बाद, हम इस बात को भूल ही गए कि हमारी बेटी को तकलीफ है। हम भूले, पर गुरूजी नहीं। मैंने कभी शुभा की बीमारी के बारे में गुरूजी से जिक्र भी नहीं किया, इसके बावजूद जिस दिन से मैंने 'एम्पायर-एस्टेट' के बाहर से गुज़रते हुए अपनी पत्नी से वहाँ रहने वाले ऐसे गुरु का जिक्र किया था जो हमारी बेटी को ठीक कर सकते थे, शुभा उसी दिन से ठीक होने लगी थी।

हमारे गुड़गाँव में आकर रहने के बाद मेरी छोटी बेटी इला को दिल्ली स्थित अपने स्कूल जाने के लिए एक साधन की जरूरत थी। गुड़गाँव में जहाँ हम रहते थे वहाँ पर कोई भी साधन उपलब्ध नहीं था। फिर अचानक ही, एक व्यक्ति ने दिल्ली के स्कूल जाने वाले बच्चों के लिए टैक्सी-सेवा शुरु की और उन्होंने यह बात हमें भी बताई। शुरुआत में उनकी टैक्सी से दिल्ली जाने वाली केवल हमारी बेटी थी। गौर करने की बात है कि कई सालों बाद जब उसकी स्कूल की पढ़ाई पूरी हो गयी तब टैक्सी वाले भैया ने अपनी टैक्सी सेवा बंद कर दी। हमारे गुड़गाँव में आकर रहने के दिन से जिस दिन तक हमें जरूरत थी, गुड़गाँव से दिल्ली के बीच यह टैक्सी चलती रही।

जो दूसरी समस्या गुड़गांव आने के बाद हमारे सामने थी वो थी शुभा का गुड़गाँव के स्कूल में दाखिला। वो अपनी बीमारी की वजह से 11वीं कक्षा की परीक्षा नहीं दे पाई थी और एक बहुत प्रतिभाशाली छात्रा होने के बावजूद उसे अपना एक वर्ष (11वीं कक्षा) को दोहराना पड़ रहा था।

यहाँ फिर एक बार उसकी मदद महाराज ने ही की। गुड़गाँव के जिस स्कूल में हम गए थे वहाँ की प्रधानाध्यापिका ने शुभा का एक साल बचाने

का प्रयत्न किया। उन्होंने सुझाव दिया कि गरमी की दो महीने की छुट्टियों में शुभा 11वीं कक्षा की परीक्षा की तैयारी कर ले, यह परीक्षा केवल उसके लिए ही ली जाएगी। उन्होंने एक शर्त भी रखी कि शुभा को यह परीक्षा कम-से-कम 80% अंको से पास करनी होगी। उन्होंने उसे 11वीं कक्षा में दाखिला दे दिया परन्तु स्कूल आने से मना कर दिया ताकि वो अपनी इस खास परीक्षा की तैयारी कर सके। घर पर शिक्षिका की मदद से परीक्षा की तैयारी शुरू की गई और महाराज की कृपा से शुभा ने शर्त के मुताबिक 80% अंको से यह पास कर ली। प्रधानाध्यापिका ने अपने वादे को निभाया और उसको 12वीं कक्षा में दाखिला दे दिया। बाद में उन्होंने कहा कि वो खुद नहीं जानती थी कि उन्होंने शुभा के लिए ऐसा क्यूँ किया पर वो एक बात जानती थीं कि उन्होंने सही किया। ऐसे काम कराते हैं हमारे गुरूजी और वो भी बिना बताये।

हम हर शनिवार को 'एम्पायर एस्टेट' जाते थे इसलिए घर पर परीक्षा की तैयारी में मदद कर रही शुभा की अध्यापिका से हम शनिवार को थोड़ा जल्दी पाठ खत्म करने की विनती करते। हमने उनको कारण भी बताया। सालों बाद, गुरूजी के चोला छोड़ने के बाद वो शिक्षिका भी बड़े-मंदिर गईं। अब उन्हें ये पछतावा है कि क्यूँ उस वक्त उन्होंने गुरूजी के पास जाने की इच्छा व्यक्त नहीं की। परंतु ये बात हम सब जानते है कि कोई भी व्यक्ति गुरूजी के पास अपनी मर्जी से नहीं आता।

गुरूजी ये ख्याल भी हमारे ज़हन में तब तक नहीं आने देते जब तक वो स्वयं नहीं चाहते कि हम उनके पास आएँ। अगर गुरूजी ने चाहा होता कि वो आएँ तो वो हमसे गुरूजी के बारे में जरूर पूछती। पर उन्होंने नहीं पूछा क्योंकि गुरूजी की आज्ञा नहीं थी।

गुरूजी का बुलावा किसे और कब आता है, जिन्दगी में जल्दी आता है या देर से, यह समय-सीमा, भक्त का मूल्यांकन करने का मापदंड नहीं हैं। गुरूजी अपने भक्तों में कभी कोई भेद-भाव, कोई फर्क नहीं करते। जैसे माँ अपने सब बच्चों से एक समान प्यार करती है। माँ शायद विभिन्न कारणों से हर बच्चे के साथ थोड़ा अलग व्यवहार करती हो परन्तु प्यार सभी को बराबर करती है।

गुरूजी ने अपने अदृश्य आशीर्वादों से शुभा को ठीक कर दिया। उसकी त्वचा ठीक होने लगी, कुछ निशान थे जो समय के साथ साथ फीके पड़ गए। पर उसका दमा पूरी तरह ठीक नहीं हो रहा था। शुभा चाहती थी कि मैं इस बारे में गुरूजी से बात करूँ पर मैंने ऐसा नहीं किया। मैंने हमेशा उसे

समझाया कि गुरूजी को मेरे बारे में सब कुछ पता है और उनको कुछ भी बताने की जरूरत नहीं है। शुभा 'ना' नहीं सुनना चाहती थी और उसने मेरी पत्नी, अपनी माँ को सिंगला अंकल से बात करने के लिए राजी कर लिया। सिंगला अंकल, मेरी पत्नी और शुभा को गुरूजी के सामने लेकर जाने को तैयार हो गए। मेरा रवैया इन सब के प्रति ऐसा रहा जैसे मेरा इस सब से कुछ लेना देना नहीं था। वो दोनों जैसे ही गुरूजी के सामने आईं, गुरूजी ने मेरी बेटी के बारे में पूछा, उसका नाम पूछा और फिर हमको अगले दिन एक तांबे का लोटा लेकर आने को कहा। मैंने गुरूजी को बताया कि कल सुबह-सुबह तो शुभा बैंगलौर जा रही थी। गुरूजी ने कहा वह एक दिन की देरी से उनका आशीर्वाद लेने के बाद ही जाएगी।

हमने माथा टेका, चरण-स्पर्श किये और आज्ञा ले ली। शुभा का दो दिन के बाद दोपहर तक अपने कॉलेज की फीस जमा कराने बैंगलौर पहुंचना जरूरी था। रात के 11 बजे थे जब हम 'एम्पायर एस्टेट' से सीधे हवाई – अड्डे की तरफ उसकी टिकट बदलवाने के लिए निकले।

जिस एअर-लाइन का टिकट हमारे पास था, उसका काउन्टर बन्द होने का समय काफी पहले हो चुका था पर हैरानी की बात थी कि जब हम हवाई-अड्डे पहुंचे तो काउंटर खुला था और वहाँ पर एक लड़की बैठी थी। हमने उससे शुभा का टिकट एक दिन आगे स्थानांतरित करने की विनती की। उसने हमसे हमारी टिकट मांगी जो उस वक्त हमारे पास नहीं थी। फिर भी उसने शुभा की टिकट स्थानांतरित करके अगले दिन की बुक कर दी। और उसे केवल रद्द टिकट यात्रा के समय लेकर आने को कहा। हमारी मदद करने के एकदम बाद, उसने काउंटर बन्द किया और चली गई। ऐसा लगा कि वो केवल हमारी प्रतीक्षा ही कर रही थी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए क्योंकि इसी तरह पूरी सृष्टि गुरूजी का आदेश मानती है। जब गुरु आदेश करते हैं तो सृष्टि का एक-एक तिनका उनकी दिव्य इच्छानुसार झुक जाता है।

अगले दिन शाम को हम तांबे का लोटा लेकर गए और गुरूजी के आशीर्वाद का इंतजार करने लगे। जब गुरूजी ने इशारा किया तब हम उनके पास गए। उन्होंने मेरी बेटी का नाम पूछा, धीरे से कुछ कहा, लोटे को अभिमंत्रित किया और मेरी बेटी को दे दिया।

शुभा ने जिस दिन बैंगलौर जाना था उस दिन काफी धुंध थी और दृश्यता भी काफी कम थी। वो दिल्ली की, सर्दी की एक आम सुबह थी और

हमें डर था कि धुंध की वजह से यह उड़ान रद्द न हो जाए और शुभा निर्धारित समय-सीमा में कॉलेज पहुंचकर फीस ना जमा करा पाए। फीस दोपहर से पहले जमा करना अनिवार्य था।

अगले दिन हवाई अड्डे पर बेहद धुंध थी। जिस जहाज़ से शुभा बैंगलोर जा रही थी वह उस दिन सुबह हवाई अड्डे से उड़ने वाली एकमात्र उड़ान थी। उसके बाद उस दिन की सभी उड़ाने रद्द कर दी गई थीं।

गुरूजी का आदेश मानने का यह परिणाम हुआ की विपरीत परिस्थितियों में भी शुभा समय रहते कालेज पहुंची और फीस जमा करा पाई। वह अपने साथ लोटे के रूप में महाराज का दिया दिव्य आशीर्वाद भी ले कर गई थी। और उस लोटे ने वह कर दिया जो उसे करना था। वक्त के साथ शुभा ठीक होने लगी और आज उसको देखकर कोई कह ही नहीं सकता कि इसे कभी कोई स्वास्थ्य संबंधित परेशानी थी।

यहाँ एक सवाल गुरूजी द्वारा स्वस्थ करने के लिए इस्तेमाल हुए तरीकों को लेकर उठता है। जब गुरूजी सर्वव्यापी हैं और ऐसा कुछ नहीं है जो वह नहीं कर सकते तो फिर उन्हें लोटे की क्या जरूरत है? वो अपने आशीर्वाद को फलित होने के लिए अलग-अलग तरीके क्यूँ चुनते है? सच तो यह है की ये तरीके गुरूजी के लिए हैं ही नहीं। हमारे लिए हैं। हमारे विश्वास की कमी की भरपाई करने के लिए हैं। मुझे तो पता था कि मुझे गुरूजी के द्वारा आशिर्वादित लोटे की जरूरत नहीं है। पर मेरी बेटी को यह जरूरत महसूस हुई कि उसको गुरूजी को बताने की जरूरत है तो उसने बताया और गुरूजी ने उसके मन में विश्वास पैदा करने के लिए ये तरीका अपनाया। दरअसल गुरूजी को अपने और अपने भक्त के बीच कोई भी बिचौलिया पसंद ही नहीं फिर चाहे वो बिचौलिया अन्य भक्त हो, क्रिया हो या कोई वस्तु। उन्हें अपने और अपने भक्त के बीच कुछ भी नहीं चाहिए लेकिन क्योंकि हर भक्त का गुरूजी से जुड़ाव और समझ का स्तर अलग-अलग हैं इसलिए गुरूजी के तरीके भी अलग-अलग है, जिससे वो हर भक्त को इतना आत्मविश्वास दे सकें की वो उनके आशीर्वाद को प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाये।

गुरूजी को जिस भक्त के लिए जो रास्ता सही लगता है वह उसे उस रास्ते पर ही चलाते हैं। हर भक्त गुरूजी से जुड़ा है पर हर एक का जुड़ाव अलग है।

गुरूजी हर भक्त के आध्यात्मिक जुड़ाव के स्तर के अनुसार ही उसके लिए अपने तक पहुँचने का उपयुक्त रास्ता चुनते हैं। यह ऐसा है जैसे शिक्षक अपने विद्यार्थी की क्षमता को देखते हुए पाठ और पढ़ाने के तरीक़े का चुनाव करता है। शुरुआत में बच्चे को A समझाने के लिए A फॉर एप्पल सिखाया जाता है और वो A को एप्पल से जोड़ कर देखता और समझने लगता है।

ठीक इसी तरह हम में से कुछ के लिए गुरूजी का दिया हुआ लोटा उनके आशीर्वाद का वो रूप है जिसे आँखों से देख सकते हैं और वो आशीर्वाद को लोटे से जोड़कर गुरूजी के आशीर्वाद को समझ लेते हैं। ऐसा ही हम गुरूजी के स्वरूप के साथ करते हैं, लंगर के साथ और मंदिर के साथ भी। हम इस सब को गुरूजी के आशीर्वाद के प्रत्यक्ष रूप से जोड़ देते हैं। और इसमें कुछ भी गलत नहीं है। पर जैसे हम समय के साथ यह समझ जाते हैं की A सिर्फ एप्पल नहीं है, उसी तरह हम भी गुरूजी के रूप में विद्यमान महाशिव के मूलभूत तत्व को सीधा सीधा समझ सके और समय के साथ उनसे जुड़ सके।

आप एक बार सिर्फ अपने आस-पास देखें और आप समझ जाएंगे कि हर वस्तु गुरूजी में है और गुरूजी हर वस्तु में। सही में यह एहसास, यह समझ ही गुरूजी से आपका बेहतरीन जुड़ाव होगा। 'सिया राम मय सब जग जानी'। सृष्टि ब्रह्म की एक अभिव्यक्ति के अलावा और कुछ भी नहीं है।

जब तक भक्त का अपने इष्ट से जुड़ाव इस स्तर तक ना पहुँच जाये, मन में प्रश्नों का आना स्वाभाविक ही है। मन में श्रद्धा और विश्वास की नींव को मजबूत बनाने के लिए इन सवालों के जवाब की भी जरूरत होती है।

इन जवाबों के रूप में एक इतनी मजबूत नींव तैयार होती है जिस पर विश्वास और श्रद्धा अडिग खड़े हो जाते हैं। भक्त को अपने सभी सवालों के जवाब भी मिलते हैं। हालांकि आध्यात्मिक जुड़ाव के परिपूर्ण होने पर सारे सवाल ही गायब हो जाते हैं और भक्त को फिर किसी जबाव की तलाश नहीं रहती। वास्तव में न सिर्फ जवाबों की बल्कि किसी भी तरह की कोई इच्छा नहीं रहती। वो कुछ भी नहीं जानना चाहता क्योंकि सच तो यह ही है कि जब जानने के लिए कुछ है ही नहीं तो कोई प्रश्न भी शेष नहीं रहेगा। बचेगा तो सिर्फ एक ब्रह्म (गुरूजी) की सच्चाई का एहसास।

हम या तो वो सब पा लें जिसकी हमें इच्छा हो या फिर किसी चीज की कोई इच्छा ही न बचे, दोनों परिस्थितियों में हम एक ही स्तर पर पहुँच

जायेंगे। या तो हम राजा हो सकते है जिसके अधिकार में सब कुछ है या वो संत जिसे कुछ चाहिए ही नहीं। एक वो है जिसने सारी इच्छाएँ पूरी कर ली और दूसरा वो जिसने इच्छाओं से ही छुटकारा पा लिया, दोनों का स्तर एक समान ही होगा। भक्त की इच्छाओं और जरूरतों की एक लंबी लिस्ट होती है जो उसे खुश होने के लिए जरूरी लगती है और जिनकी पूर्ति के लिए वह हर समय गुरूजी से अरदास करता रहता है। वह लिस्ट, वक्त के साथ गहरे होते महाराज के साथ जुड़ाव से गायब होने लगती है और भक्त उनसे छुटकारा पा लेता है।

इच्छाओं का तो कोई अंत है ही नहीं। इसीलिए जो माँगता है वो कभी संतुष्ट नहीं होता। जब हम खुशी को तलाशते हैं तो हम अपने आस-पास जो चीजे हमें खुशी दे सकें उनको ढूंढते हैं। मैं शायद आज खुश हूँ क्योंकि मेरे पास एक बड़ी गाड़ी है, लेकिन, मेरा अपना जहाज़ मुझे कुछ और अधिक खुशी देगा। शायद एक बड़ा सा आलीशान बंगला इस खुशी को और बढ़ा देगा आदि आदि। और क्योंकि इस लिस्ट का अंत ही नहीं होता इसीलिए हम पूरी तरह से खुश भी नहीं होते। हर बार कुछ ना कुछ कमी रह ही जाती है। वक्त के साथ ही हमें एहसास होता है कि चीज़े हमें खुशी दे ही नहीं सकती थीं।

खुशी तो हमारे मन की एक अवस्था है। खुशी तो हमारे दिल में है। गुरूजी हमें सब कुछ देते हैं और साथ-साथ मन की वो स्थिति भी देते हैं जब हम समझ सकें कि खुशी हमारे भीतर ही है। जब हमें ये एहसास हो जाए कि गुरूजी हमसे प्यार करते हैं और हम भी उनसे बहुत प्यार करते हैं फिर बाकी किसी चीज का कोई महत्व ही नहीं रहता।

हमें खुशी के वास्तविक मायनो का पता तब ही चलता है जब हमें गुरु और शिष्य के अलौकिक दिव्य बंधन-पाश का एहसास हो जाता है।

गुरूजी अपने भक्तों की जरूरतों को और विभिन्न स्वभावों को भली-भांति जानते हुए यह तय करते हैं कि उन्हें भक्त को आशीर्वाद देने का कौन-सा तरीका अपनाना है। चूँकि हर भक्त अपने आप में अद्वितीय है इसीलिए हर किसी को अद्वितीय तरीकों से ही आशीर्वाद प्राप्त होता हैं। एक-दूसरे से तुलना करना न तो वांछनीय है और न ही इसकी कोई जरूरत है।

शुभा शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ती रही और गुरूजी की कृपा-आशीर्वाद हमेशा उसके साथ रहा। अपनी पढ़ाई पूरी करके वो एमबीए करने के लिए

अमरीका चली गयी। पढ़ाई में बहुत अच्छा करने के बावजूद, वहाँ के नए प्रशासन के द्वारा नियमों में बदलाव के कारण उसे अपनी नौकरी छोड़ कर भारत वापिस आना पड़ा। उसे अपने अमेरिका लौट पाने की अब कोई उम्मीद भी नहीं थी।

वापिस आने के लिए न्यूअर्क के लिबर्टी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे से उड़ान लेने से पहले, शुभा ने 'स्टारबक्स' के बाहर खड़ी होकर रोते हुए गुरूजी से कहा "मैं नहीं जानती आप ये कैसे करोगे पर मुझे अगले साल यहाँ इसी स्टारबक्स के बाहर वापिस आना है और यह आपको करना पड़ेगा"। ये प्रार्थना नहीं अपने गुरु के सामने मानो ज़िद करने जैसा था।

जैसे एक बच्चा अपनी माँ से ज़िद करता है भक्त भी कर सकते हैं और गुरूजी इसका बुरा भी नहीं मानते। शुभा बहुत ही उदास मन से भारत लौट आई। उसने यहाँ आकर अमेरिका में पीएचडी की पढ़ाई के लिए बहुत से विश्वविद्यालयों में फार्म भरे पर कोई नतीजा नहीं मिला क्योंकि दाखिले के लिए फार्म सर्दियों में ही भरे जा चुके थे और अभी अप्रैल का महीना था।

एक-बार फिर गुरूजी की ही महर ने काम किया। कोई भी उम्मीद न होते हुए एक दिन अचानक अमेरिका के एक विश्वविद्यालय से शुभा को फोन आया यह पूछने के लिए कि क्या वो पीएचडी पाठ्यक्रम में प्रवेश लेना चाहेगी? बाद में पता चला कि शुभा के एक मित्र ने, जो उसके साथ वाशिंगटन विश्वविद्यालय में ही पढ़ता था, अपनी तरफ से शुभा के नाम का फार्म उस वक्त भर दिया था जब एक दूसरे छात्र ने चयन के पश्चात भी पीएचडी पाठ्यक्रम को न करने का फैसला लिया था।

शुभा ने पहले साक्षात्कार की औपचारिकता को फोन पर पूरा किया और विश्वविद्यालय की ओर से उसे आने के लिए हवाई-टिकट भेज दी गई। तीन दिन बाद वो दूसरे साक्षात्कार के लिए जाने के लिए हवाई-जहाज में बैठी थी। उसका साक्षात्कार हुआ और उसके बाद वापिस आते हुए वह फिर से उसी 'स्टारबक्स' के सामने खड़ी थी और ठीक तभी उसे विश्वविद्यालय से सन्देश मिला कि उसका चुनाव हो गया है और वो उनकी दी हुई तारीख पर आकर पाठ्यक्रम आरम्भ कर सकती है।

गुरूजी ने एक बार फिर शुभा पर अविश्वसनीय कृपा कर दी थी। शुभा आभार और खुशी के आँसू नहीं रोक पाई। अब वो 'अटलांटा' में अपनी पीएचडी की पढ़ाई पूरी कर रही है और गुरूजी की कृपा से सब बहुत अच्छा

चल रहा है। जिस निराशा का उसने सामना किया उस निराशा ने उसके विश्वास और श्रद्धा को एक नई प्रेरणा और हिम्मत दी।

याद रखने वाली सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जिंदगी में उतार-चढाव तो आएंगे लेकिन गुरूजी हमेशा हमारा हाथ थामे हमारे साथ चलेंगे।

गुरूजी जब हमारा ख्याल रखते हैं तो साथ ही साथ वह हमारे पूरे परिवार का भी ध्यान रखते हैं फिर चाहे बाकी के सदस्य उनके पास आएँ या न आएँ। घर के केवल एक सदस्य को नहीं बल्कि पूरे परिवार को उनका आशीर्वाद मिलता है।

मेरी बेटी जया को मिले आशीर्वाद से यह साबित होता है। जया अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद बड़ी मेहनत से नौकरी की तलाश कर रही थी। मैंने कभी भी महाराज से स्पष्ट रूप में इसके लिए प्रार्थना नहीं की। जल्द ही उसको दिल्ली स्थित एक कंपनी में गुणवत्ता जांच अधिकारी के पद के लिए साक्षात्कार के लिए बुलाया गया। जब जया वहाँ पहुँची तो वहाँ रिसेप्शन पर बैठे व्यक्ति से उसे पता चला कि उसका नाम साक्षात्कार के लिए बुलाए उम्मीदवारों में है ही नहीं। उसको तो फोन ही नहीं किया गया था। उसको वह नौकरी मिलने की कोई उम्मीद नहीं थी क्योंकि उसके पास न तो उस पद के लिए आवश्यक योग्यता थी ना ही अनुभव। फिर भी उसे वापिस न भेज कर वहीं बैठकर इंतज़ार करने को कहा गया।

साक्षात्कार के लिए आए हर एक उम्मीदवार को एक-एक करके अस्वीकृत कर दिया गया। अब केवल वहाँ पर जया ही रह गई थी और आखिर में उसको साक्षात्कार कर्ताओं ने अंदर बुलाया। उन्होंने उसके सारे दस्तावेज़ देखे और वह बहुत हैरान थे कि वह वहाँ क्यूँ आई थी। उनमें से एक ने सुझाव दिया कि वो उसे इस शर्त पर नौकरी दे सकते हैं कि वो वादा करे कि वो काम सीखेगी और फिर काम संभाल लेगी। उसने हाँ कहा और नौकरी ले ली।

इसी दौरान घर पर मेरी पत्नी ने गुरूजी से अरदास की कि उसकी बेटी ने अच्छी पढ़ाई और कड़ी मेहनत की है, इसलिए गुरूजी उसे कम से कम 10,000 रुपए प्रति माह की नौकरी तो दिला दें। दिल्ली में चल रहे जया के साक्षात्कार के दौरान उससे पूछा गया कि क्या उसे 10,000 रुपए महीना की तनख्वाह मंजूर हैं? और उसने स्वीकार कर लिया।

जब जया घर लौटी तो मेरी पत्नी ने उसे गुरूजी से की गई प्रार्थना के बारे में बताया। जया थोड़ी हैरान और नाराज़ हुई। हैरानी इस बात पर कि

गुरूजी ने उसकी माँ की 10,000 रुपये वाली प्रार्थना स्वीकार कर ली थी, और नाराज़गी इसलिए कि उन्होंने गुरूजी से 30,000 रुपए प्रति माह की तनख्वाह की बात क्यूँ नहीं कहीं! चाहे जितना भी मिल जाए, वह कभी-भी पर्याप्त नहीं होता है।

जल्दी ही गुरूजी ने जया की यह बात भी सुन ली। जब वो नौकरी बदलने लगी तो एक साधारण साक्षात्कार के बाद उसको 30,000 रुपए प्रति माह की तनख्वाह का प्रस्ताव दे दिया गया।[4]

जैसा की हर भक्त जानता है कि हम गुरूजी से खुलकर बात कर सकते हैं। वो कोई कहीं दूर आकाश में रहने वाले भगवान नहीं हैं अपितु हमारे अपने हैं, हमारे बेहद करीबी। हमसे बहुत प्यार करने वाले और हर वक्त हमारी रक्षा करने वाले हमारे पिता हैं। वो हमसे इतना प्यार करते हैं कि वो हमारी हर बात हर समय सुनते हैं।

यह सच, कि वो ही भगवान हैं, बिलकुल ही एक अलग पहलू है। पर हम किसी भगवान से नहीं जुड़े थे। हम तो जुड़े थे एक बहुत प्यार करने वाले, हमारा ख्याल रखने वाले पिता से जो हमारे लिए सर्वस्व थे और वो हमें सही राह पर ले आए।

जया के साथ भी गुरूजी की कृपा सदा बनी रही है। जब वो 23 वर्ष की हो गई तो उसकी शादी की इच्छा से हमने योग्य लड़के की तलाश करना शुरू किया और इसके लिए अख़बार में विज्ञापन भी दिया।

उसी अखबार के विज्ञापनों में फरीदाबाद में रहने वाला एक परिवार अपनी बेटी के लिए लड़का तलाश कर रहा था। वो जिस समय अख़बार में विज्ञापन देख रहे थे ठीक उसी समय उनके घर के दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी। उन्होंने दरवाजा खोला तो बाहर एक सुंदर लंबे संत के समान दिखने वाले पुरुष खड़े थे। घर की महिला ने उनको आदर से 'बाबा' बोला और पूछा कि उन्हें क्या चाहिए? उन्होंने उत्तर में कहा कि उन्हें एक कप चाय के अलावा कुछ नहीं चाहिए।

महिला जब रसोई में चाय बनाने गई तब 'बाबा' ने उनके पति से कहा कि उनको पहले अपने बेटे की शादी करनी चाहिए। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में

---

[4] मेरी बेटी का यह सत्संग गुरूजी के ग्रन्थ "Light of Divinity" में Guruji's Grace in School Life के शीर्षक के अंतर्गत शामिल है।

कहा यह उनके लिए अच्छा रहेगा। अपने हाथ में चाय का कप पकड़े हुए बाबा ने उन्हें समझाया कि उन्हें अपने बेटे के लिए दुल्हन ढूंढनी चाहिए और फिर वह चले गए। किसी ने भी उन बाबा को ना आते देखा और ना जाते। उस परिवार ने बाबा की बात मानकर अपने बेटे के लिए लड़की ढूँढना शुरू कर दिया। शादी के लिए दिए विज्ञापनों में उनकी नज़र हमारी बेटी के विज्ञापन पर पड़ी और उन्होंने तुरंत ही हमें फोन किया। सब कुछ अच्छा रहा और कुछ ही महीनों के अंदर शादी संपन्न हो गई।

जब गुरूजी हमें आशीर्वाद देते हैं तो उनके अपनी ओर से प्रयत्न अविश्वसनीय होते हैं। हम जिंदगी की कशमकश में उलझे गोल-गोल घूमते रहते है, पर जब हम सब कुछ उन पर छोड़ देते हैं तो गुरूजी हमें हाथ पकड़ कर सही सलामत एक सुरक्षित किनारे तक पहुंचा देते है।

जब मेरी बड़ी बेटी की शादी हुई तो गुरूजी ने संगत को भी निमंत्रण पत्र दिए। गुरूजी ने एक सेवक से, जिनकी सत्संग के दौरान संगत को बैठाने की जिम्मेदारी होती थी, कहा कि वो विवाह-स्थल पर जाएँ और बैठने की संपूर्ण व्यवस्था को संभालें ठीक उसी तरह जैसा वो सत्संग के लिए करते हैं। यह आदेश मेरे लिए एक अविश्वसनीय तरीके से मददगार सिद्ध हुआ क्योंकि मैं स्वयं एक समस्या के आने के कारण, सही वक्त पर विवाह स्थल पर नहीं पहुँच पाया। विवाह-स्थान पर हमने सारा इंतज़ाम बाहर खुले में किया था, अचानक की शाम को 6 बजे एक तूफान आने की वजह से लगने लगा कि गड़बड़ हो जाएगी।

मेरी पत्नी बाहर निकलीं, आकाश की ओर देखकर उसने सिर्फ इतना कहा, 'ये क्या करा रहे हो गुरूजी? पाँच मिनट के अंदर-अंदर तूफान थम गया। गुरूजी के द्वारा भेजे हुए सेवादार अंकल और वहाँ मौजूद संगत की मदद से सारे इंतजाम बाहर से हाल में स्थानान्तरित कर दिए गए। इंतजामों की पुर्नव्यवस्था कर के हम 8 बजे तक भोजन परोसने की स्थिति में पहुँच गए। जब तक मैं विवाह-स्थल पर पहुंचा लोग भोजन खाकर मुझे ढूंढ रहे थे। सारा का सारा प्रोग्राम बहुत अच्छे ढंग से संपन्न हुआ और इसका कारण मैं तो बिलकुल नहीं था। गुरूजी जानते थे कि मैं ये सब खुद से नहीं संभाल पाऊँगा इसलिए उन्होंने समस्या से पूर्व ही हस्तक्षेप करके अपने सेवक को नियुक्त कर दिया था ताकि सब कुछ सही तरह से सम्पूर्ण हो सके। इतने प्यार से भरे हैं हमारे गुरूजी और इतनी दयावान है उनकी संगत। गुरूजी

हमारी जिंदगी का नियंत्रण अपने हाथ में लेते हैं पर उतना ही जितना नियंत्रण हम गुरूजी पर छोड़ देते हैं।

शादी के बाद जया नोएडा में रहने लगी पर उसको वो जगह कुछ खास पसंद नहीं आई। उसने मन ही मन गुरूजी से कहा कि वो वहाँ नहीं रहना चाहती थी। उस रात गुरूजी ने उसे सपने में दर्शन दिए और कहा कि वो चिंता न करे, अगले दो सालों में वो विदेश चली जाएगी। अगली सुबह, उसने थोड़ा परेशान होकर नाराज़गी दिखाते हुए मेरी पत्नी को फोन कर के बताया कि गुरूजी उसे देश से ही बाहर भेज रहे हैं जबकि वो सिर्फ नोएडा से बाहर जाना चाहती थी। मैंने जया से कहा कि उसे गुरूजी से कुछ भी मांगने से पहले काफी सतर्क रहना चाहिए था क्योंकि गुरूजी ने वो दे दिया जो उसने माँगा। मांगने में यह एक और नकारात्मक बात है। केवल जब आप सब गुरूजी पर ही छोड़ देते हो तब ही सब अच्छा होता है।

सिर्फ डेढ़ साल के अंदर उसके पति को काम के सिलसिले में जर्मनी जाना पड़ा। उसके विदेशी सहकर्मियों को उसका काम काफी पसंद आया और उन्होंने उसे उनके साथ काम शुरू करने को कहा। तीन महीने बाद मेरी बेटी अपने पति के साथ जर्मनी में थी, जहाँ वे तब से अब तक एक खुशहाल जिंदगी जी रहे हैं। ये सब जया के सपने के ठीक दो साल के बाद हुआ।

गुरूजी सुनते है और अगर उन्हें लगता है कि यह उनके भक्त के लिए अच्छा है तो फौरन उसे कर देते है। पर गुरूजी वह सब भी देखते हैं जो हम दूर-दूर तक न देख सकते हैं न समझ सकते हैं। इसीलिए जब चीजें हमारी इच्छानुसार ना हों तो हमें चिंता नहीं करनी चाहिए। केवल गुरूजी ही जानते हैं कि हमारे लिए क्या अच्छा है, हम नहीं।

अगर एक बच्चा, छुरी माँगता है तो क्या माँ-बाप उसे यूँ ही पकड़ा देते हैं? नहीं वे नहीं देते। एक माँ कभी भी अपने बच्चे को स्वयं को खतरे में नहीं डालने देगी भले ही वह कितना भी रो ले। गुरूजी भी हमारी माँ ही हैं। वो जानते है कि हमारे लिए क्या अच्छा है। इसलिए कभी-भी उनके निर्णय पर प्रश्न ना करें। हो सके तो कभी मांगें नहीं। और अगर मांगें भी तो बहुत सोच समझ कर।

गुरूजी की कृपा मेरी सबसे छोटी बेटी इला पर भी हमेशा रही है। इला गुरूजी की एक शांत-भक्त है। उसने अपनी 12वीं कक्षा की परीक्षा अच्छे अंको से उत्तीर्ण की और इंजीनियरिंग कॉलेज में दाखिले के लिए फार्म भर

दिए। एक शनिवार, जब हम गुरूजी के पास गए, तो उन्होंने उसे एक विशेष आशीर्वाद दिया।

हमें जाने की आज्ञा मिल गई, पर गुरूजी ने इला को दरबार में पीछे जाकर बैठने और ध्यान लगाने को कहा। हमें आज्ञा मिल गई थी इसलिए हम बाहर खड़े होकर इला का इंतजार करने लगे। इला उस दिव्य वातावरण और एक परमानंद के अनुभव को अपने अंतर मन में उतारते हुए वहीं बैठी रही। काफी समय के बाद, गुरूजी ने हमें भी बाहर से बुलाया और दरबार में इला के साथ बैठने को कहा। सुबह के करीब डेढ़ बजे होंगे, महाराज के पास केवल मुट्ठी भर संगत ही बैठी थी। गुरूजी ने एक सेवादार को 'हलवा-प्रसाद' बनाने को कहा और वो प्रसाद संगत को दिया गया। उसके बाद हमें जाने की आज्ञा मिल गई। अगले ही दिन मेरी बेटी का दाखिला अमेठी विश्वविद्यालय, नोएडा में हो गया।

अगले शनिवार, हम 'एम्पायर-एस्टेट' गए और जैसे अपने माता-पिता को बताते हैं, ठीक उसी तरह हमने इस आशीर्वाद के बारे में गुरूजी से कहा। मेरी पत्नी गुरूजी के पास गई और इला के दाखिले के लिए उनका धन्यवाद किया। "फौजियों के काम तो मैं ऐसे ही कर देता हूँ", गुरूजी ने जबाव दिया। ऐसा ही कुछ गुरूजी ने जया के बेटे के पैदा होने पर भी कहा। हम गुरूजी के पास गए और मेरी पत्नी ने उनको यह बात बताई। गुरूजी ने कहा कि उनकी कृपा और आशीर्वाद से ही बेटा पैदा हुआ है।

जो कुछ भी हमारी जिंदगी में होता है वो केवल गुरूजी के आशीर्वाद से होता है-यही सार है।

इला विदेश नहीं जाना चाहती थी। पर गुरूजी ने उसके लिए कुछ और ही सोचा हुआ था। उसकी कंपनी ने उसे अमेरिका भेजने का प्रस्ताव रखा। पर उसको वीजा मिलने की उम्मीद काफी कम थी। फिर भी हमने उसे एक कोशिश करने के लिए प्रेरित किया। और इससे पहले ही हम कुछ समझ पाते, इला अमेरिका जा रही थी। जिन हालातों में अनियंत्रित 'कोविड-19' फैला था, लोगों को नौकरी से निकाले जाने का डर था। उस दौरान हाल ही में उसे तरक्की भी मिली है।

ऐसा कौन कर सकता है? ऐसा कैसे हो सकता है? ऐसा सिर्फ गुरूजी महाराज के कारण ही होता है। महाराज ने हमें जो सबसे बड़ा आशीर्वाद दिया है वो यह है कि हमारे बच्चों की सारी चिंता अपने ऊपर लेकर हमें

चिंता मुक्त कर दिया है। वो अब उनके बच्चे हैं। हम सब उनके बच्चे हैं। हम सब का केवल उनसे ही सम्बन्ध है। मूल रूप में देखें तो हम उनकी परेशानी हैं, सुलझाने और बेहतर बनाने के लिए। हमारी जिंदगी पर उनका पूर्ण नियंत्रण है।

मैं कभी-कभी हैरान हो कर सोचता हूँ कि क्या मेरी पीढ़ी के भक्तों के पास बहुत सवाल थे? गुरूजी की महिमा को समझने और समर्पण करने से पहले हमें इन सवालों के जबाव चाहिए थे। हमारे बच्चों का गुरूजी के पास पहुँचने का रास्ता उस मुकाबले में काफी सरल और सीधा रहा है– बिना किसी प्रक्रिया और रीती-रिवाजों के।

सर्व ज्ञानी भगवान

एक बार एम्पायर एस्टेट में सत्संग के दौरान गुरूजी के आदेश का पालन करने के लिए चुने जाने पर मैं अत्यधिक उत्साहित था।

कर्नल जोशी, जो एक सेवानिवृत्त सेना अधिकारी थे और महाराज की सेवा में वरिष्ठ भक्तों में से एक थे, मेरे पास आए और बोले कि गुरूजी कर्नल चटर्जी अंकल से बात करना चाहते हैं। मैं उनको ढूंढकर गुरूजी का यह संदेश उन्हें दे दूँ। उत्साहित होकर मैंने निचली मंजिल, पहली मंजिल, दोनों जगह के हॉल में, प्रवेश–द्वार के पास, जोड़ा–घर में, और बाहर की सड़क तक, सब जगह चटर्जी अंकल को तलाश किया पर वो मुझे कहीं नहीं मिले। मैंने लौटकर ये बात जोशी अंकल को बता दी और उन्होंने यही बात गुरूजी से कही। गुरूजी ने तब बताया कि चटर्जी अंकल थोड़ी दूरी पर अंधेरे में खड़ी एक एम्बेसडर कार के पास खड़े हैं। मैं तुरंत ही जल्दी से वहाँ गया और वास्तव में वह वहीं खड़े थे।

गुरूजी सर्व ज्ञानी हैं, इस सच को पहचानने का यह मेरा पहला सबक था। वो सब जगह हैं और वो सब जानते हैं। मैं यह अच्छी तरह समझ गया कि महाराज से कुछ भी छिपा हुआ नहीं हैं– कुछ भी नहीं।

न सिर्फ गुरूजी सब कुछ जानते हैं, वो बड़ी ही आसानी से और सावधानी के साथ हमारी इच्छा को भी ऐसे निर्देशित करते हैं कि हमें इस बात का एहसास भी नहीं होता।

एक रोज़, मैं और मेरी पत्नी अपने शनिवार के नियमित दर्शनों के दौरान, 'एम्पायर एस्टेट' में पहली मंजिल पर बैठे शबद् सुन रहे थे। उसने धीरे से कहा कि यह शबद् 'बहुत जन्म बिछड़े थे 'माधो, ए जन्म तुम्हारे लेखे' बहुत दिनों से नहीं बजाया गया। यह शबद् उसके पसंदीदा शबदों में से एक था।

इसमें भक्त अरदास कर रहा है कि मालिक मैं कई जन्मों से आप से बिछड़ा हुआ हूँ, ये जिंदगी मैं आपको समर्पित करता हूँ क्योंकि आप से मिलने की खुशकिस्मती बहुत जन्मों की जुदाई के बाद आई है। मेरी पत्नी ने अपनी बात मुश्किल से ख़त्म ही की थी जब हमारा ध्यान इस ओर गया कि जो शबद् चल रहा था उसे बदल कर, जिस शबद् का जिक्र उसने किया था, वो चल पड़ा था।

यह सारे शबद् दो-कैसेट वाले म्यूजिक-सिस्टम (संगीत-यंत्र) पर कैसेट के द्वारा चलाए जाते थे। CD प्लेयर तब नहीं थे। वो शबद् जिसके बारे में मेरी पत्नी और मैं बात कर रहे थे, ठीक उसी वक्त गुरूजी के केवल इशारे से, बिना किसी भौतिक-संपर्क के, सेवादार अंकल ने दूसरी कैसेट से चला दिया।

वक्त भी गुरूजी के कड़े आदेश का पालन करता है, इस बात को प्रमाणित करने के लिए बहुत सारे सत्संग हैं। एक बार, कुछ भक्त अमेरिका जाने से पहले 'एम्पायर एस्टेट' गुरूजी से मिलने और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने आए। गुरूजी ने उन सब को रोक कर रखा और कहा कि वह सब लंगर करने के बाद ही जाएंगे। वक्त बहुत तेजी से बीत रहा था और गुरूजी को उनके जाने के बारे में बड़े आदर के साथ कुछ बार याद कराया गया। इसपर महाराज ने उनको तसल्ली दी कि उनकी उड़ान निर्धारित समय से देरी से ही जाएगी और वो बेफिक्र होकर लंगर खाएँ। लंगर खाने के बाद जिस वक्त वो हवाई अड्डे पहुँचे तब तक उड़ान के जाने के निर्धारित समय से काफी देर हो चुकी थी। परंतु पता करने पर उन्हें मालूम हुआ अब तक हवाई जहाज में यात्रियों के सवार होने की घोषणा भी नहीं हुई थी। हवाई जहाज उड़ान के लिए अभी तैयार नहीं था। हो भी कैसे सकता था जब महाराज ऐसा नहीं चाहते थे।

मुझे यह समझने में बहुत वक्त नहीं लगा कि गुरूजी महाराज के लिए कुछ भी असंभव नहीं। वो हर चीज़ का, जिंदगी के हर पहलू का ख्याल रख सकते हैं।

गुरूजी अपनी इच्छा शक्ति की शक्तिशाली लहरों के माध्यम से ना केवल हमारी सांसारिक गतिविधियों का ख्याल रखते हैं बल्कि साथ ही साथ एक करुणा से भरे गुरु के रूप में संगत की प्रार्थना को सुनते हैं और जवाब भी देते हैं।

मेरा यह विश्वास और भी पक्का हो गया जब मेरे एक प्रिय मित्र, विजय पुष्करना ने मुझसे सेक्टर 56 की आवासीय समितियों में रहने वाले लोगों के लिए एक मंदिर बनवाने की बात की। वो जानना चाहते थे कि क्या मैं किसी ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ जो हुडा से मंदिर बनवाने के लिए जमीन दिलवाने में मदद कर सके? मंदिर सार्वजनिक इस्तेमाल के लिए बनना था इसलिए पुष्करना अंकल ने पहले ही एक समिति बना ली थी और हुडा में जमीन के लिए आवेदन-पत्र भी दे दिया था। मैंने उनके प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में दिया।

मेरे मित्र ने सोचा कि मैं या तो प्रशासन में या सरकार में किसी अधिकारी को जानता हूँ जो हमारी मदद करेगा। उनका ऐसा सोचना स्वाभाविक था। मैंने उनको गुरूजी के पास ले जाने और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने की अपने मन की बात बताई। विजय ने सोचा की शायद गुरूजी किसी सरकारी अफसर को हमारी मदद के लिए कह देंगे।

विजय और उनकी टीम के साथ मैं गुरूजी महाराज के पास गया। हमने 'एम्पायर एस्टेट' की सारी सामान्य प्रक्रिया को पूर्ण किया। आखिर में जब गुरूजी से आज्ञा लेने का वक्त आया तो विजय ने गुरूजी महाराज को अपने आने का मकसद का बताया। गुरूजी ने बड़े ध्यान और सब्र से पूरी विनती सुनी और कहा, "कल्याण"। मैंने धीरे से विजय से कहा हमें गुरूजी का आशीर्वाद प्राप्त हो गया है और हमारी प्रार्थना स्वीकार भी हो गयी है। उस वक्त विजय को गुरूजी और उनके तरीकों के बारे में कुछ भी नहीं मालूम था। उन्हें और उनकी पूरी टीम को शायद हैरानी हुई होगी कि प्रार्थना ऐसे कैसे पूरी होगी।

लेकिन, कुछ ही समय में इस काम के लिए ट्रस्ट को मंदिर निर्माण के लिए एक 1000 वर्ग गज भूमि का आबंटन पत्र मिल गया। तुरंत बाद ही, विजय भी गुरूजी महाराज के अनुयायी बन गए।

क्योंकि इस मंदिर को गुरूजी के आशीर्वाद से बनाया गया था, मुझे लगा कि मुझे भी इस मंदिर से जुड़ना चाहिए। जल्द ही सिंगला-अंकल ने फोन करके मुझे बताया की गुरूजी के आदेशानुसार मुझे इस मंदिर से किसी भी तरह का कोई संबंध नहीं रखना है। मुझे केवल गुरूजी महाराज के पास ही आना है।

गुरूजी के इस आदेश ने एक बार फिर उसी बात पर जोर दिया जो सलाह मुझे पहली बार बड़े मंदिर जाने पर एक संगत से मिली थी। उस भक्त ने तब मुझ से कहा था कि मैं सही जगह पर आ गया हूँ और अब मुझे कहीं और नहीं जाना चाहिए। तब से मैं अपने इस विश्वास पर अडिग हूँ कि मुझे सिर्फ गुरूजी की ही चाह और आवश्यकता है।

इसी कारण मैंने खुद को बड़े मंदिर के अलावा पूजा प्रार्थना करने के हर स्थान से दूर कर लिया है। किसी भी धार्मिक स्थान के सामने से गुजरते हुए मैं आभार से सिर अवश्य झुकाता हूँ पर हृदय में उपासना और आदर हमेशा गुरूजी के ही प्रति होता है। मैं सर को कहीं भी झुकाऊँ वो हमेशा केवल

गुरूजी के चरण-कमलों पर ही रखा होता है। पूजा और प्रार्थना की बाकी सभी प्रक्रियाओं और तरीकों से मैंने खुद को दूर कर लिया है।

धार्मिक व्यक्ति जैसा सब कुछ करते हैं मैं वैसा कुछ भी नहीं करता। मुझे ज़रूरत ही नहीं है। ऐसा कोई भी रीति-रिवाज़ नहीं है जो मुझे वो दे सके जो मेरे पास पहले से ही है – मेरे गुरूजी। मैं उनके चरण-कमलों में हूँ। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया है। उन्होंने मुझे अपने साथ रहने को कहा है तो उन्हीं की तलाश कहीं और करके मैं क्या हासिल कर सकता हूँ? इसी विश्वास को नींव बना लेने से मुझे मेरे घर पर कभी 'दरबार" बनाने की भी जरूरत भी महसूस नहीं हुई।

क्यूँ नहीं हुई? क्योंकि सबसे बड़ा मंदिर तो मेरे दिल में पहले से ही है। और अगर मेरे दिल में मंदिर नहीं है तो फिर मैं चाहें 24X7 मंदिर में बैठा रहूँ उस से कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है। वो हर जगह जहाँ मैं बैठकर गुरूजी को याद करूँ या सत्संग का हिस्सा बन जाऊं मेरे गुरु का मंदिर है। मैं कभी भी, कहीं भी, खाते हुए, खाना पकाते हुए, सोते हुए, दोस्तों के साथ, अपनी पत्नी और परिवार के साथ, अपने दफ्तर में या इसके अलावा भी कहीं और होते हुए हमेशा उनके मंदिर में ही होता हूँ। मैं हर वक्त अपने गुरु के साथ हूँ। ऐसा कोई पल नहीं जब वो आस-पास नहीं होते।

उनका अनुयायी होने के कारण, हमारे पास ये विकल्प ही नहीं है कि जब हम चाहें, जब हमें जरूरत हो केवल तभी गुरूजी हमारे पास हों, बाकी समय नहीं। गुरूजी तो हमारे पास तब भी होते हैं जब शायद हम ये न भी चाहें। हम तो सदा ही अपने गुरूजी के साथ हैं। किसी बाहरी अनुष्ठान या प्रक्रिया की जरूरत कहाँ है गुरूजी को ढूंढने के लिए।

जैसा की संत कबीर ने कहा हैः–

"कस्तूरी कुण्डली बसै मृग ढूँढ़ै बन माहि।
ऐसे घट घट राम हैं दुनिया देखै नाहि"

(हिरन कस्तूरी को सारे जग में ढूंढता है जबकि वो तो उस की नाभि में ही होती है)।

मेरी पत्नी ने रसोईघर में गुरूजी का स्वरूप रखा है। जहाँ वो काम करती है उस जगह से थोड़ी ही दूर। उसे यह विचार पसंद है कि वो रसोईघर में, जिसे वो अपना दफ्तर मानती है, जब भी काम करे तो महाराज को देखती रहे। हम महाराज को किसी एक स्थान, कमरे या कुर्सी से बांधने का तो

सोच भी नहीं सकते। यह विचार, मेरे लिए तो बिलकुल काम नहीं करता। पर जिनके लिए करता है मैं उनके लिए खुश हूँ।

यह सबका व्यक्तिगत जुड़ाव है। हर किसी का महाराज के साथ जुड़ने का अपना एक निजी संबंध होता है। मेरा मानना है कि महाराज लिए एक अलग से जगह की जरूरत नहीं क्योंकि मेरे गुरूजी तो मेरे दिल में हैं। उन्हें मैं अपने दिल में ही महसूस करता हूँ। मैं तो यह भी नहीं कह सकता कि गुरूजी कृपा करके मेरे पास आइए। कहाँ से आइए? वे तो यहाँ मौजूद हैं। मैं उनसे बात करता हूँ। "गुरु का साथ" मन की अवस्था है। यह किसी प्रक्रिया द्वारा प्राप्त नहीं हुई है।

जब मैं गुरूजी से सीधा-सीधा जुड़ा हूँ तो मुझे कतई फर्क नहीं पड़ता कि कोई दूसरा क्या कर रहा है। यह उनका अपना जुड़ाव है महाराज के साथ, यह उनकी यात्रा है। हम किसी दूसरे का मूल्यांकन करने वाले कोई नहीं होते। यह मेरा जुड़ाव और मेरी आत्मा की यात्रा है और केवल यह ही बात मेरे ध्यान देने योग्य है। मुझे यकीन है कि गुरूजी मुझे मेरे साथियों के दबाव का शिकार नहीं होने देंगे। कोई अन्य भक्त क्या कर रहा है या क्या नहीं कर रहा है इस से मुझे क्या फर्क पड़ेगा? वास्तव में हम केवल इतना ही कर लें कि हम अपनी जिम्मेदारियों को अच्छी तरह से निभाएं और ऐसा करते हुए सदैव गुरूजी को अपने दिल में रखें। जैसा रामचरितमानस में संत तुलसी दास जी ने कहा है – प्रबिसि नगर कीजे सब काजा, हृदय राखि कौशलपुर राजा।[5]

---

[5] सुंदर कांड में इस चौपाई की दूसरी लाइनें इसी विश्वास की घोषणा को पूरा करती हैं–

'गरल सुधा रिपु करहि मिताई
गोपद सिन्धु अनल सितलाई।

इसका अर्थ है जो हृदय में अयोध्या के राजा का ध्यान करके सांसारिक कार्य करते हैं जहर, अमृत बन जाता है, दुश्मन दोस्त बन जाते हैं। सांसारिक दुखों का सागर गाय के खुर जितना रह जाता है और आग ठंडी पड़ जाती है।

सत्संग का सार(भावना) – साधारण आयोजन और गहरा जुड़ाव

सेक्टर 56 में बनने वाले मंदिर में जाने से गुरूजी ने मुझे पहले ही मना कर दिया था क्योंकि उन्होंने मेरे लिए एक अन्य सेवा चुन रखी थी। अक्टूबर 2003 में यह बात एकदम अचानक से सामने आई। मैं महाराज से आज्ञा लेकर पार्किंग स्थल पर जैसे ही पहुंचा तब ही अर्जुन-अंकल, जो गुरूजी के एक सेवक थे और पार्किंग व्यवस्था को देखते थे, मेरे पास आए। उन्होंने एक A-4 नाप का कागज़ जिस पर गुड़गाँव संगत के नाम और फोन नम्बर लिखे थे मुझे देते हुए गुरूजी का आदेश बताया कि अब से गुड़गाँव में हर महीने सत्संग के आयोजन की व्यवस्था मुझे करनी है।

उस वक्त तक, मैं गुड़गाँव के कुछ सत्संग में जा चुका था। परंतु सत्संग आयोजित और संचालित कैसे करते हैं इस बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं थी। जानकारी के न होते हुए भी मैं बहुत उत्साहित और खुश था और खुद को बेहद भाग्यवान महसूस कर रहा था। मैंने उन सब संगत को फोन से बुलाकर पहला सत्संग आयोजित किया। हम सब इकट्ठा हुए, महाराज के बारे में बातें की, खूब खाया-पिया और अपने-अपने घर चले गए। अगले महीने, हम एक अन्य अंकल के घर पर इकट्ठा हुए और एक अद्‌भुत शाम बिताई, खूब मजे किए और राजसी पकवानों के समान परोसा हुआ प्रसाद खाया और तृप्त होकर खुशी-खुशी घर लौट आए।

बहुत दिन नहीं हुए, जब एक दिन मुझे महाराज से फटकार मिली। गुरूजी ने मुझ से कहा कि मेरा कर्तव्य सत्संग आयोजित करना है, किट्टी-पार्टी नहीं। पर मुझे तो सत्संग के आयोजन के बारे में कुछ पता नहीं था। मेरी इस घबराहट को स्वयं गुरूजी ने ही दूर किया। जल्द ही पंजाब से गुरूजी के दर्शन को आए एक भक्त को गुरूजी ने खड़े होकर अपना सत्संग सुनाने को कहा। उन्होंने सुनाया कि किस तरह गुरूजी की शरण में आने के बाद उनकी जिंदगी बेहतर हो गई।

साथ ही महाराज से मिले सभी आशीर्वादों के बारे में भी बताया। इस तरह गुरूजी ने मुझे सत्संग का निचोड़ समझा दिया। सत्संग में हमें अपने

आप पर हुई गुरूजी की कृपा का वर्णन करना है। अर्थात, भक्त स्वयं पर हुई गुरूजी की कृपा और गुरूजी से प्राप्त हुए आशीर्वादों का बखान करते हुए यह बताए कि कैसे गुरूजी से मिलने के बाद उसकी जिंदगी पहले से बेहतर हो गई। बस ये ही है सत्संग।

फिर मुझे गुरूजी से कुछ और भी निर्देश मिले। सत्संग हर महीने के तीसरे रविवार को शाम 5 बजे से 7 बजे के बीच होगा। शाम के 7 बजे जो भक्त 'एम्पायर एस्टेट' दर्शन के लिए जाना चाहें जा सकते हैं। प्रसाद भी केवल एक नमकीन, एक मीठा और चाय तक सीमित होगा।

शुरुआत के दिनों में संगत इतनी कम संख्या में होती थी कि हम शबद् भी नहीं चलाते थे। हम सब इकट्ठा होते और गुरूजी के साथ अपने-अपने अनुभव यानी सत्संग सुनाने लगते। न कोई आरती, न कोई मंत्र-जाप और कुछ वक्त तक तो स्वरूप भी नहीं होता था। जैसे-जैसे संगत बढ़ी तो उनके पहुँचने के समय में थोड़ा अंतर आने लगा। इस पर तय किया गया कि सब के आने का इंतजार किया जाए और केवल उस समय तक कुछ शबद् चलाए जाए, जब तक अधिकांश लोग आ न जाएँ। सब अक्सर वक्त पर ही आते थे। तो इसलिए केवल एक या दो शबद् ही चल पाते थे। शबद् सत्संग का अभिन्न अंग नहीं थे। हमारे गुरूजी के साथ हुए अनुभवों को सुनाने सुनने को ही महत्व दिया जाता था। मेरा मानना है की सत्संग का अहम हिस्सा अपने अनुभव सुनाना था और आज भी वो ही है। गुरूजी की संगत द्वारा अपने-अपने अनुभवों को साझा करना सत्संग का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। अगर आप सिर्फ अपने-अपने अनुभव सुना रहे हैं और इसके अलावा और कुछ भी नहीं कर रहे तो भी यह सत्संग ही है।

सत्संग का असली मायना है 'सच के साथ होना'। गुरु ही सच हैं और गुरु से ऊपर कुछ भी नहीं है। वो ही परम सत्य हैं। अपने अनुभव सुनाते हुए हम गुरूजी यानी सच के साथ होते हैं। यह ही हैं– सत्संग।

हर महीने एक सत्संग आयोजित करने के कारण हम साल में केवल 12 सत्संग ही आयोजित कर सकते थे। धीरे-धीरे संगत के बढ़ने से भगत महीनों पहले सत्संग आयोजित करने के लिए अपना नाम लिखवा देते थे। मुझे याद है की भूल जाने के डर से मैंने एक रजिस्टर में नाम लिखना भी शुरू कर दिया था।

एक समय सत्संग आयोजित करने की मेरी बारी थी। सत्संग घर पर ही होते थे। मुझे गुरूजी का एक संदेश मिला कि इस बार सत्संग में संगत बहुत अधिक संख्या में आएगी इसलिए मुझे सत्संग के लिए एक बड़ी जगह का इंतजाम करना चाहिए। मैंने जल वायु टावर्स के सामाजिक समारोह हाल को सत्संग आयोजित करने के लिए बुक करा लिया। संगत सामान्य से अधिक संख्या में आई भी। उस वक्त गुरूजी 'एम्पायर एस्टेट' में थे और उन्होंने सत्संग के लिए आई संगत की संख्या एकदम सही-सही बताई। हमने मूर्खों की भांति लंगर की थालियों की गिनती तक कर डाली और जो संख्या मिली तो बिलकुल वही थी जो गुरूजी पहले ही बता चुके थे ऐसा होना तो निश्चित ही था। महाराज ना सिर्फ हो रहे सत्संग की पूरी जानकारी रखते हैं वो विशेष रूप से उसको नियंत्रित भी करते हैं। वो सत्संग की अध्यक्षता करते हैं और सत्संग में भाग भी लेते हैं। जिन संगत को लगता है कि सत्संग, संगत की आपस की बात है तो उनको यह याद रखना चाहिए कि सत्संग हमेशा गुरूजी और उनकी संगत के बीच होता है।

उन दिनों, कुछ मौकों पर, गुरूजी किसी भक्त के घर चरण डालने की कृपा भी करते थे। एक ऐसे ही मौके पर गुरूजी ने गुड़गाँव में माथुर अंकल के घर आने की कृपा की। माथुर अंकल ने सत्संग आयोजन की सामान्य प्रक्रिया के अतिरिक्त दो चीजें और की, जो आज तक हमारे सत्संग आयोजन को प्रभावित करती हैं। उन्होंने महाराज के विराजने के लिए खूबसूरती से सजाए हुए एक सोफे पर महाराज के लिए एक आसन बनाया जिसे महाराज ने बैठकर पवित्र कर दिया। माथुर अंकल ने भक्ति भरी ज्योत जलाकर गुरूजी की आरती भी की। माथुर अंकल के घर इसके बाद होने वाले सभी सत्संग में वो सोफा महाराज के आसन के रूप में आरक्षित हो गया क्योंकि गुरूजी ने उस पर बैठकर उसे पवित्र कर दिया था। इसके बाद हम सब ने भी सत्संग के दौरान गुरूजी के लिए एक आसन का इंतजाम करना शुरू कर दिया। बाद में 'आरती' भी सत्संग का हिस्सा बन गई क्योंकि इस भक्तिपूर्ण भावना से की जाने वाली आरती से संगत बहुत खुश होती थी। यह अलग बात है कि 'एम्पायर एस्टेट' में आरती करने का उस समय कोई नियम नहीं था। अब हमारे गुरूजी का स्वरूप, आसन, शबद्, प्रसाद, आरती और अपने अनुभवों का व्याख्यान सत्संग के अभिन्न अंग के रूप में स्थापित हो चुके थे– और यह सब के सब गुरूजी महाराज को समर्पण के भाव सहित।

गुड़गाँव में हो रहे इन सत्संगों में से एक सत्संग में ब्रिगेडियर सैनी अंकल ने कहा कि गुरूजी हम सब की बीमारियाँ और तकलीफ अपने ऊपर ले लेते हैं और इस मानव देह के बंधनों की वजह से खुद तकलीफ भोगते हैं। इसलिए उनके अनुयायी होने की खातिर, हम सब को उनकी सेहत और सलामती के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। हम में से कुछ हैरान हो कर सोचने लगे कि हम तुच्छ प्राणी अपने गुरूजी के लिए, जो स्वयं ईश्वर है, कुछ कर भी सकते हैं क्या? तब ब्रिगेडियर सैनी ने हमें समझाया कि गुरूजी के स्वास्थ्य के लिए हमें गुरूजी से ही प्रार्थना करनी चाहिए।

यह उनकी भक्ति का एक अद्भुत प्रमाण था। अब सवाल यह था कि प्रार्थना की रूप-रेखा क्या हो? सैनी अंकल ने बड़े मंदिर के प्रवेश के पास लगे गुरूजी के स्वरूप के करीब वाले LED स्क्रीन की ओर हमारा ध्यान मोड़ा। उस स्क्रीन पर दिव्य मंत्र **'ओम् नमः शिवाय शिवजी सदा सहाय'** लगातार चलता रहता था। हम इस मंत्र को अपना सकते थे और अपने अनुभवों को सुनाने से पहले इस मंत्र को दोहरा सकते थे। वास्तव में गुरूजी से, भगवान शिव से ही प्रार्थना करते हुए कि वह अपना ख्याल रखें।

हम में से एक संगत ने 'गुरूजी सदा सहाय' लाइन को मंत्र में जोड़ने का सुझाव दिया क्योंकि गुरूजी के अनुयाइयों के लिए गुरूजी और शिवजी एक ही हैं। सब को यह बात पसंद आई। इसके फौरन बाद ब्रिगेडियर सैनी अंकल ने इस दिव्य मंत्र के उच्चारण में हमारा नेतृत्व किया।

ओम नमः शिवाय, शिवजी सदा सहाय।
ओम नमः शिवाय, गुरूजी सदा सहाय।।

यह मंत्र तभी से 'मंत्र-जाप' बन गया। शुरू में हम इसे 7 बार दोहराते थे, गुरु जी की जन्मतिथि 7 जुलाई होने के कारण। बाद में वरिष्ठ संगत की सलाह पर 9 बार दोहराने लगे क्योंकि नम्बर 9 इकाई अंक का सबसे बड़ा अंक हैं। अगले महीने से गुड़गाँव में होने वाले सत्संग में 'मंत्र-जाप' के उच्चारण की जिम्मेदारी मुझे मिली। एक लम्बे समय तक, गुड़गाँव में हर माह होने वाले सत्संग में 'मंत्र-जाप' नियमित रूप से उच्चारित करके ही किया जाता था क्योंकि कोई भी रिकार्ड किया हुआ 'मंत्र-जाप' उपलब्ध नहीं था।

'मंत्र-जाप' को गुरूजी की मंजूरी थोड़ी बाद में मिली। 'एम्पायर एस्टेट' में संगत के लिए जो लंगर होता था, वह बड़े-मंदिर में बनाया जाता था और

उसे बनाने की तैयारी में गुड़गाँव संगत से कुछ अनुयायी शामिल थे। वो उस पवित्र भोजन को पकाने से पहले मंत्र-जाप करते थे।

यह एक बड़े ही स्वाभाविक तरीके से अपना लिया गया था। कुछ अन्य भक्तों ने यह 'देखा' और इस नए बदलाव के बारे में गुरूजी को बताया जिन्होंने शीघ्र ही इस मंत्र को मंजूरी दे दी।

महाराज की महासमाधि के बाद, जब पहली बार संगत बड़े मंदिर में एकत्रित हुई तो वहाँ एक बड़ा दुखद और गंभीर माहौल था। सभी काफी निराश थे और बिल्कुल चुपचाप बैठे थे। हम में से कोई नहीं जानता था कि अब क्या कहना या करना है। मुझे अच्छे से याद है कि बड़ों की सलाह पर मैं महाराज के आसन के करीब खड़ा हुआ और बड़े मंदिर में 'मंत्र-जाप' का उच्चारण करने लगा। कुछ समय पश्चात 'मंत्र-जाप' की एक रिकार्डिंग आ गई और तब से वो ही प्रयोग होती है।

सत्संग में जो एक अन्य चीज़ जोड़ी गई, वो था पूरा लंगर। जैसा हम आजकल देखते भी हैं। यह भी एकदम स्वाभाविक तरीके से हुआ। हम समझ सकते हैं कि संगत अपनी जिंदगी के महत्वपूर्ण अवसरों पर अपनी खुशी को अन्य संगत के साथ भी साझा करना चाहते थे। इसलिए धीरे-धीरे सत्संग इन सभी अवसरों का एक अभिन्न अंग बन गया और इन अवसरों की महत्वता के मुताबिक प्रसाद भी वैभवशाली बन गया। इस पूरे लंगर को केवल विशेष अवसर पर किए जाने वाले सत्संग से हर सत्संग का हिस्सा बनने में वक्त नहीं लगा।

जैसा कि महाराज ने निर्देश किया, दरबार में केवल गुरूजी का स्वरूप होता था और होना भी चाहिए क्योंकि हम सारी संगत ने सभी विकल्पों को त्याग कर पूजा के लिए दिव्यता के जिस एक रूप को चुना, वो हैं – गुरूजी। सत्संग के दौरान जो बात महत्व देने लायक थी और हमेशा रहेगी वो है सादगी, विनम्रता और प्यार से भरकर अपने अनुभवों को सुनना-सुनाना।

जैसा कि गुरूजी ने कहा– **सत्संग किट्टी-पार्टी नहीं है**। याद रहे यह हमारे लिए गुरूजी की दिव्य उपस्थिति में मौजूद रहने का एक सुनहरा अवसर भी है।

सबक सीखा – बहुत कठिनाइयों का सामना करने के बाद

साल 2003 के बीतते-बीतते, रक्षा क्षेत्र से जुड़ी एक बहुराष्ट्रीय कंपनी के भारत के प्रमुख ने सेवानिवृत्त होने का फैसला किया। यह पद नए उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध हो गया और करीब-करीब एक दर्जन उम्मीदवारों को इस पद की नियुक्ति के चुनाव के लिए विचार-सूची में रखा गया जिन में मैं भी था। इस नियुक्ति के लिए मेरा नाम निर्धारित हो गया। पर इससे पहले मुझे नियुक्ति-पत्र मिले, एक अन्य उम्मीदवार जिसकी शायद कुछ तगड़ी जान-पहचान थी, सामने आए और मेरी नियुक्ति को रोक लिया गया। फिर भी बहुत से कारणों के चलते महीनों तक इस पर किसी को भी नियुक्त नहीं किया जा सका। कंपनी अब और इंतजार करने को तैयार नहीं थी इसलिए साल 2004 के आखिर में एक बार दोबारा उन्होंने मुझ से संपर्क किया और जानना चाहा कि क्या मैं अब भी इस पद को लेना चाहूंगा।

मैं इस पूरे घटनाक्रम से परेशान तो था पर मैंने अपनी स्वीकृति दे दी। इसके कुछ दिन बाद ही मुझे पता चला कि मेरे ही एक घनिष्ठ मित्र ने अपने लिए इस पद को स्वीकार कर लिया था। कुछ महीनों में ही उसने भी यह नौकरी छोड़ दी और कंपनी अब फिर एक बार मेरे पास इस पद के प्रस्ताव के साथ लौट आई।

यह सब अब कुछ अटपटा और अपमानजनक महसूस हो रहा था पर इस पद के लिए कंपनी द्वारा दी जाने वाली तनख्वाह काफी लाभप्रद थी इसलिये मैं मना नहीं कर पाया और मैंने एक बार फिर हाँ कह दी। पर नियुक्ति-पत्र अब भी नहीं मिला। मैं काफी इंतजार करता रहा। इस पद का अवसर आए बहुत समय हो गया था परंतु कुछ भी नतीजा नहीं निकल रहा था।

मैंने फैसला किया कि इस समस्या को गुरूजी महाराज के सामने रखा जाए और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया जाए। मुझ में तो गुरूजी के सामने जाने और अपनी समस्या बताने की हिम्मत बिलकुल भी नहीं थी। मेरे लिए उनके सामने अपना मुंह खोलना तो दूर, उनके एकदम नज़दीक खड़ा रहना भी काफी कठिन था।

हमेशा की तरह मैंने मदद के लिए एक बार फिर सिंगला अंकल को संपर्क किया। मैं जानता था कि वो गुरूजी से आसानी से बात कर लेंगे। मैंने उन्हें पूरा किस्सा सुनाया और अपनी परिस्थिति से अवगत कराया और वो गुरूजी से बात करने के लिए मान गए। हमने एक घटनाक्रम की पूरी संरचना की – कहाँ और कैसे खड़ा होना है, क्या कहना है वगैरह-वगैरह। उन्होंने मुझसे कहा कि अगर उन्हें गुरूजी अच्छे मूड में लगे (हमारी इंसानी दिमाग की सोच) तब ही वो गुरूजी से बात करेंगे वरना यह बात वह किसी और दिन के लिए टाल देंगे। हमने यह भी तय किया कि मैं जल्दी आऊंगा ताकि जब गुरूजी रसोई के दरवाजे के पास की कैबिनेट पर बैठे हों तब उनसे मुलाकात हो जाए।

वह शाम आ गई, हम दोनों महाराज के पास गए। जब सिंगला अंकल महाराज से बात करने लगे पर मैं केवल हाथ जोड़कर वहाँ चुपचाप खड़ा रहा। गुरूजी ने मुझे देखा कुछ देर चुप रहे इस बारे में सोचा और कहा कि मुझे किसी नौकरी की जरूरत नहीं। मुझे तो उनके पास आ जाना चाहिए। वो बोले **"तेनू जॉब दी लोड नहीं है, तू मेरे कोल आ जा।"**

मैंने उनके कहे इस वाक्य की अहमियत को तब नहीं जाना। आज पलट कर जब भी सोचता हूँ तो लगता है कि गुरूजी मुझे अपनी सेवा में रखना चाहते थे और मैं इस से बढ़कर क्या मांग सकता था? नौकरी तो खुद-ब-खुद मिल ही जाती। पर मैं, वहाँ, उस वक्त, चुपचाप खड़ा रहा। ना तो हाँ कहा और ना ही ना।

सिंगला अंकल ने बीच में बोलते हुए कहा कि मुझे उन पैसों की ज़रूरत है जो इस नौकरी से मुझे मिलेंगे। गुरूजी कुछ देर चुप रहे, मेरी तरफ देखा और कहा, 'ठीक है जा कमा ले पैसे।"

मैं खुश तो था कि उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। पर 'कमा ले पैसे' यह कैसा, आशीर्वाद था, यह वो तो नहीं था जिसको मैं सुनना चाहता था। मैं उम्मीद कर रहा था कि गुरूजी 'कल्याण' या 'ऐश कर' ऐसा कुछ कहेंगे जिसका मतलब होता कि अब मुझे चिंता की कोई ज़रूरत नहीं। खैर कोई बात नहीं, मैंने महाराज के सामने कुछ नहीं कहा। माथा टेका, उनके चरण-स्पर्श करे और चला आया। अगले सोमवार मुझे कंपनी से फोन आ गया। वो जानना चाहते थे कि मैं कब से यह प्रभार संभाल सकता हूँ?

तब अचानक ही मुझे यह समझ आया कि अब तक गुरूजी ही मुझे यह नौकरी लेने से रोक रहे थे। मैंने ये प्रार्थना स्वीकार करने की जिद करी

इसीलिए अब उन्होंने यह नौकरी दिला दी। कुछ ही दिनों के बाद में गुरूजी ने एक संगत से कहा कि उन्होंने ही मुझे यह नौकरी दी है। गुरूजी ने इस नौकरी से जुड़ी सभी बातें बताई और मुझे मिलने वाली तनख्वाह भी बता दी। साथ-ही-साथ गुरूजी ने यह भी कहा कि उन्होंने कमान्डर अंकल को चार साल दिए हैं। मैं और मेरी पत्नी यह नहीं जानते थे कि इस बात का मतलब क्या है? क्या उन्होंने मुझे जिंदगी के चार साल दिए थे या इस नौकरी को करने के लिए चार साल का समय तय किया था। शायद इसीलिए वो मुझे अपनी सेवा में रखना चाहते थे।

नई नौकरी पर नियुक्त होने के बाद जब मैं गुरूजी के पास आया और उनके सामने माथा टेका तो गुरूजी ने कहा, **"कमांडर, रिटायर्ड फौजी को उसकी घरवाली भी नहीं पूछती। मैंने तेरी दो लाख की जॉब लगवाई"!**

गुरूजी मुझे छेड़ रहे थे। भले ही मेरी बात मेरी पत्नी न सुने पर प्यार से भरे गुरूजी हमेशा हमारी बात सुनते हैं। उनके आस-पास बैठे सब लोग हंस पड़े। गुरूजी की मजाक करने की वो क्षमता एकदम कल्पना से परे थी। मेरे लिए, चाहे वो मुझे छेड़ ही रहे हों पर मैं जानता था कि वो मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। गुरु की मुस्कुराहट और हँसी से बढ़कर उनकी स्वीकृति का और क्या तरीका हो सकता है?

गुरूजी की भविष्यवाणी मेरे ज़हन में कहीं पीछे चली गई और मैं इस बात की तरफ सचेत नहीं रहा कि मैं चार साल की समय रेखा में बंधा हुआ था। गुरूजी के शब्दों में एक अद्भुत मगर गुप्त शक्ति थी। सही समय आने पर ही उनकी कही बात याद आ जाती और वो बात सत्य सिद्ध होती। गुरूजी के कहे इस वचन ने मुझे कभी परेशान नहीं किया– और वो मस्तिष्क में कहीं पीछे चला गया। लेकिन दो साल बाद गुरूजी ने महासमाधि ले ली और जैसे सब कुछ बदल गया।

साल 2009 के अक्टूबर माह में चार साल पूरे हो गए और एक संकेत की तरह, मेरी जिंदगी और नौकरी में सब कुछ बिखरने लगा। इस हद तक कि कंपनी ने एक ऐसे व्यक्ति को बाहर से नियुक्त कर लिया जो मेरे प्रति कभी भी अनुकूल सोच नहीं रखता था और चाहता था कि मैं नौकरी से त्यागपत्र दे दूँ। इस दौरान मेरा मानसिक संतुलन बिगड़ने लगा। मेरा आत्मविश्वास कम हो गया, मैं एकाग्रता खोने लगा, दिमागी-रूप से परेशान हो गया और हर

वक्त घबराहट से भरा हुआ इंसान बन गया। मुझे कहीं शांति, चैन नहीं मिल रहा था और ना ही मैं ठीक से सो पा रहा था।

बाकी सब चीज़ों के साथ-साथ, मेरी इस मानसिक स्थिति ने मेरी गाड़ी चलाने की क्षमता को भी प्रभावित किया। इस नौकरी के चार साल होने पर मैं ठीक से अपनी कार भी नहीं चला पाता था।

गाड़ी को खड़ा करते वक्त मैं किसी खम्भे से टकरा देता, एक बार तो मैंनें गाड़ी की ब्रेक का नियंत्रण ही खो दिया। मेरी 'टोयोटा करोला' हर मुमकिन जगह से पिचक गई थी। कार का अगला हिस्सा धंस गया,पिछला भाग भी टूट गया। कार काफ़ी खराब दिखती थी। इस खूबसूरत कार पर इतने निशान पड़ गए थे कि शायद कोई भी पेन्ट करने वाला ठीक न कर पाए।

मानसिक धुंधलाहट की इस स्थिति में जिंदगी चलती रही। मुझे मिले चार साल अब ख़त्म हो चुके थे। कुछ बहुत ही बुरा होने के डर से, मेरी पत्नी ने गुरूजी से पहले ही प्रार्थना कर रखी थी कि जब तक मई 2010 में हमारी छोटी बेटी इला की इंजीनियरिंग की पढ़ाई ख़त्म न हो जाए तब तक मुझे मिली इन चार सालों की अवधि को बढ़ा दिया जाए। वो चाहती थी कि जब तक इला की बी.टेक. की पढ़ाई पूरी न हो जाए कुछ भी अप्रिय न हो। 10 मई को इला ने अपनी आखिरी परीक्षा दी और 14 मई को मैं इस कंपनी से बाहर था। मेरी पत्नी की बेसब्री से की हुई प्रार्थना का दिव्य जवाब मिल चुका था। मैं उस वक्त नहीं जानता था कि जब 2006 में महाराज ने मुझे अपनी सेवा में स्वीकार कर लिया था तब उन्होंने मेरी जिंदगी को इन चार सालों के आगे बढ़ाने का भी सोच लिया था।

बेशक, गुरूजी ने इसके साथ-साथ, मुझे सारी परेशानी और तकलीफ से भी गुजरने दिया क्योंकि मेरे कर्मों का हिसाब-किताब भी तो पूरा करना था। लेकिन पूरे समय रखा अपनी शरण में। इस बारे में विस्तार से बाद में बात करेंगे।

नौकरी चली गई पर तकलीफें अब भी जारी थीं। पंद्रह दिन के बाद नोएडा से दिल्ली कार से आते हुए मैंने गुरूजी से विनीत भाव से प्रार्थना की:–

"महाराज, अब मुझसे और बर्दाश्त नहीं हो रहा। अब आप इसे ठीक कर दीजिए। मैं नहीं जानता आप कैसे करेंगे पर कृपा कर के सब कुछ ठीक कर दीजिए। मुझ पर कृपा करें और अभी मुझे जानने दें कि आप सच में मेरी प्रार्थना सुन रहे हैं। मुझे एक कार जिस पर

गुरूजी का स्टिकर लगा हो दिखा दीजिए। मुझे अभी वो कार देखनी है जिसपर स्टिकर लगा हो। मैं जानना चाहता हूँ कि आप मुझे सुन रहे हैं और आप को मेरी परवाह है क्योंकि मेरी दुनिया बिखर रही है"।

मैं बेताब था और चाहता था कि गुरूजी कुछ प्रतिक्रिया दें और जैसा मैं चाहता था वैसा ही एक इशारा मुझे दें।

जब मैं बहते आँसुओं के साथ यह प्रार्थना कर रहा था, मेरी कार आश्रम के पास एक पुल के नीचे से मुड़ रही थी। जैसे ही गाड़ी ने मोड़ लिया, मुझे एक कार के पीछे 'गुरूजी' का स्टिकर नजर आया। मैंने उसे देखा और अगर मैं यह कहूँ कि मैं फूट-फूट कर रोने लगा तो भी जो उस वक्त महसूस किया उन भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकूँगा। मैं एक बच्चे की तरह ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था क्योंकि गुरूजी ने मेरी पुकार तब सुन ली जब मैं अपनी जिंदगी से पूरी तरह निराश हो चुका था। उसके बाद मैंने खुशी और एक राहत की भावना को महसूस किया। जो होता है हो जाने दो, अब मुझे कोई परवाह नहीं"– मेरी जिंदगी गुरूजी के हाथों में थी और जो चार साल मैंने ज़िद करके लिए थे गुज़र चुके थे। मैं उनको पीछे छोड़ चुका था।

उस ही दिन, मुझे एक अन्य अमरीकन कंपनी से एक शानदार प्रस्ताव मिला। वो मुझे अपने इंडिया ऑफिस का प्रमुख नियुक्त करना चाहते थे। यह एक असाधारण नौकरी थी वो भी बहुत बढ़िया तनख्वाह के साथ। गुरूजी की महर हो गई थी।

आज जब पलट कर देखता हूँ, तो नौकरी के लिए महाराज के पास जाने के अपने फैसले पर मैं बहुत पछताता हूँ। आज मैं उस वक्त से कुछ बेहतर समझ रखता हूँ। मुझे सब कुछ महाराज के हाथों में छोड़ देना चाहिए था। मुझे उनको और उनकी मर्जी के प्रति समर्पण कर देना चाहिए था। उनके पास मेरे लिए इससे बेहतर योजना थी।

मेरे अपनी ही योजना के पूर्ण होने पर ज़ोर डालने के कारण मुझे अपनी जिंदगी के तकलीफों से भरे चार साल झेलने पड़े और मेरी जिंदगी बिखर गई। लेकिन गुरूजी ने मुझे इतनी शीघ्रता से इन सब से बाहर खींच लिया कि मैं वापिस अपने पैरों पर खड़ा था और जल्द ही यह सब भूल गया। अपने भक्तों के लिए इतने दयालु, इतना प्यार करने वाले हैं गुरु जी महाराज!

इस सब से मैंने सीखा क्या? गुरूजी को कभी भी मत बताओ कि तुम क्या चाहते हो। जो करना चाहते हो वो करो पर परिणाम उन पर छोड़ दो।

अपने आप को कभी भी यह छूट मत दो कि आप उनसे कुछ माँगो। अपनी इस मांगने की चाह का हमेशा विरोध करो।

मैं आज भी प्रार्थना करता हूँ और मुश्किल परिस्थिति में उनसे हल भी माँगता हूँ। लेकिन कभी-भी एक विशेष हल को नहीं बताता क्योंकि मैं जानता हूँ कि गुरूजी को मेरी जरूरतों और इच्छाओं के बारे में सब पता है। उन्हें पूरा कैसे करना है यह उनकी जिम्मेदारी है। मैं यह न जानना चाहता हूँ और न ही मुझे यह जानने की जरूरत है। जब हम सब उन पर ही छोड़ देते हैं तो केवल इन ही हालात में गुरूजी इच्छा पूर्ति करते हैं। कैसे सब उनपर छोड़ना है यह हमारी जिम्मेदारी है। शायद हम नहीं जानते कि गुरूजी को समर्पण करना कैसे है पर हम इस दिशा में पहला कदम तो उठा ही सकते हैं उन से कुछ न माँग कर।

जैसा यह एक शबद् समझाता हैः-

"इक तकया भरोसा तेरे चरणां दा, होर सब्बे ढाइयाँ ढेरियाँ"

जिसका अर्थ है- कि जो भी मेरे पास है वो केवल आप हो, मेरा अकेला सहारा आप हो क्योंकि बाकी हर रिश्ता, हर संबंध मैंने तोड़ दिया है। यह कुछ-कुछ वैसा है जैसे भारत में एक नई शादीशुदा लड़की अपने ससुराल जाती है, वो आवश्यक रूप से अपने सभी पिछले रिश्ते छोड़कर नए रिश्तों को अपनाती है।

हम ऐसा ही करते हैं जब हमें एक रिश्ते की सच में कद्र होती है हम अपनी जिंदगी में उसकी सही कीमत समझते हैं। हम उस एक रिश्ते को ही अपनी जिंदगी में महत्व देते हैं। जब तक ऐसी भावना हमारे हृदय में जागृत नहीं होती तब तक हम गुरूजी के प्रति केवल 'दिखावटी प्रेम ही करते हैं'। दिल ही दिल में हमारे पास कई योजनाएं होती हैं कि अगर गुरूजी के द्वारा काम नहीं बना तो हमें क्या करना है। यह हमेशा याद रखिए गुरूजी न सिर्फ वो जानते हैं जो हम कहते हैं परन्तु वो वह भी जानते हैं जो हम सोचते हैं। इसीलिए एक आधा-अधूरा प्रयास हमेशा विफल रहेगा। या तो केवल गुरूजी या फिर कुछ नहीं।

अगर हमें बर्तन में साफ पानी इकट्ठा करना है तो सबसे पहले यह निश्चित करना होगा कि बर्तन साफ है। समस्या यह है कि हम में से अधिकांश अपने शारीरिक और मानसिक बर्तनों को साफ़ नहीं कर पाते

क्योंकि हमें उनके गंदे होने का ही एहसास नहीं है। हमने, माँग-मांग कर, गलतियों को अस्वीकार करके, प्रतिस्पर्धा की भावना रखकर, लड़ाई-झगड़ों में पड़कर, बहस कर के, छोटी-छोटी बातों पर लड़कर, प्यार की भावना को खोकर अपने आप को बहुत गंदा कर कर लिया है। गुरु को हमें साफ करना पड़ता है इसीलिए गुरूजी के प्रति समर्पण और आज्ञाकारिता बहुत महत्वपूर्ण है।

अगर एक अनुयायी आज्ञा-पालन ही नहीं कर सकता तो फिर वह गुरूजी के आशीर्वाद को प्राप्त करने के लिए तैयार कैसे हो सकता है?

अपने-आप को स्वच्छ बनाने की सोच का परिणाम है कि मैं चाहे जो भी करूँ-अच्छा या बुरा, इस जागरूकता के साथ करूँ कि गुरूजी मुझे देख रहे हैं। जब हमें उनकी मौजूदगी का एहसास रहेगा तो हमेशा इस बात का फर्क कर सकेंगे कि क्या करना है, और क्या नहीं करना हैं। यह एक तरह की वास्तविकता की जाँच हैं, जिससे हम गुजरते हैं।

सिर्फ गुरूजी ही जानते हैं कि उनकी कौन सी संगत कितनी भक्ति में विलीन है। ऐसे भगत हैं जिनकी आत्मा गुरूजी के प्रति पूर्ण समर्पण में है, और ऐसे भी हैं जिनका सारा ध्यान केवल इस पर केंद्रित होता है कि सत्संग के दौरान क्या-क्या हो रहा है और वो गुरूजी से क्या पा सकते हैं।

जैसे ही उनको कुछ मिलता है वो यह सोचने लगते है कि और क्या रह गया। ऐसे भगत है जो गुरूजी के प्रति समर्पण की अवस्था में हैं और फिर वहीं ऐसे भी हैं जिन्हें केवल सांसारिक सुखों की अभिलाषा है। यह दोनों तरह के भगत दो किनारों के समान अलग-अलग हैं। ऐसे भी हैं जिन्हें अपने गुरु पर पूर्ण विश्वास है, और ऐसे भी हैं जो सिर्फ दुनियावी चीजें ही मांगते रहते हैं। कुछ जरूरतमंद है और कुछ विश्वास से भरे। अब इनमें फर्क आप जैसा चाहें वैसा समझ लीजिए।

कुछ ऐसे भगत हैं जो सब को बताते है कि वो गुरूजी के पास कब से आ रहे हैं और उन्होंने कितनी सेवा की है और साथ-ही शिकायत भी करते हैं कि उनकी कौन-कौन-सी इच्छाएँ पूरी नहीं हुई। जहाँ ऐसे है, वहीं पर कुछ ऐसे अनुयायी भी हैं जो कहते हैं मैं नहीं जानता कि मैं माँगू क्या? मुझे कोई भी परवाह नहीं है। मेरे लिए मेरे पास मेरे गुरु हैं यह ही काफी है। वो मेरे साथ जो चाहें कर सकते हैं।

इन दो चरम सीमाओं के बीच जुड़ाव की कई श्रेणियाँ और स्तर हैं। हर कोई एक स्तर पर नहीं है और इसीलिए हर किसी को वो नहीं मिलता जो उसे चाहिए। उनके दुख भी अलग-अलग हैं। सबसे जरूरी बात है – हमारा चयन। क्या हम वो व्यक्ति बनना चाहते हैं जो हर समय गुरूजी से कुछ-न-कुछ माँगता रहे या फिर वो जो सिर्फ गुरूजी को अपना ले और माँगे कुछ नहीं।

"जो संपति शिव रावनहि, दीन्ही दिए दस माथ।
सोई संपदा विभिषनहि, सकुचि दिए रघुनाथ"।।

अर्थात– जो कुछ भी भगवान शिव ने रावण को दस सिर के बदले दिया, वो सब कुछ भगवान राम ने विभीषण को संकोच करते हुए दिया।

दो अलग-अलग एक-दूसरे से भिन्न रास्ते हैं। एक रास्ता है प्रक्रियात्मक, जिस से मिलने वाले आशीर्वाद भी प्रक्रिया केंद्रित हैं। जो चुनी हुई प्रक्रिया और उसके पालन पर निर्भर करते हैं। दुसरा रास्ता इन सब प्रक्रियाओं रीती-रिवाज से परे है। जो एकमात्र जरूरत है वो है हमारे दिव्य गुरूजी को पूर्ण समर्पण। बाकी सब तो गुरूजी खुद ही देख लेते हैं। और इसी कारण मिलने वाले आशीर्वाद न ही किसी शर्त से बंधे होते हैं न ही प्रक्रिया पालन की पूर्णता पर।

हम सब को भी विभीषण की तरह समर्पण के भाव से आशीर्वाद प्राप्ति के लिये तैयार होना चाहिए। यह एक ऐसी अवस्था नहीं है जिसे हम किसी पैंतरेबाज़ी या चालाकी से पा सकें। आशीर्वाद-प्राप्ति के लिए तैयार होने की कोई प्रक्रिया नहीं है क्योंकि गुरूजी को समर्पण करने का कोई माध्यम है ही नहीं। ये अवस्था तो बस हो जाती है। ये होता है क्योंकि गुरूजी चाहते हैं कि ऐसा हो। उनकी मर्जी, उनकी मंजूरी के बिना तो हम उनकी मौजूदगी में भी नहीं हो सकते। आशीर्वाद – प्राप्ति के लिए तैयार होना तो बहुत दूर की बात है।

"बिनु हरि-कृपा मिलहि नहिं संता।"

वो क्या है जो हमें आशीर्वाद प्राप्ति के लायक बनाता है? मेरे लिए आशीर्वाद पाने के लिए तैयार होने का मतलब है कि दिव्यता के हर तरीके को पूरे दिल से स्वीकार कर लिया जाए। इस दोहरी मापदंडता वाली दुनिया

में जहाँ पर बराबर और विपरीत दोनों शक्तियां कार्यरत है, और हमेशा रहेंगी, व्यापक संतुलन को स्वीकार कर लेना चाहिए। समुद्र-मंथन में जहाँ अमृत निकला, जो सभी प्राणियों को अमर बना सकता था, वहीं 'विष' भी निकला, जो उसे निकालना ही था। 'विष में पूरे प्राणी-जगत को ख़त्म करने की ताकत थी। पूरे ब्रह्मांड की जिस दोहरी मापदंडता से संरचना हुई है यह उसी जटिल संतुलन का एक उत्तम उदाहरण है– बराबर और परस्पर विरोधी।

हमें बिजली के प्रवाह के लिए सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ऊर्जाओं के प्रभार की ज़रूरत होती है। आप जितना चाहें उतना नकारात्मक ऊर्जा को नापसंद कर लें, जब तक दोनों ऊर्जा के प्रभारों का जुड़ाव नहीं होगा बिजली का प्रवाह नहीं होगा।

सकारात्मक टर्मिनल और नकारात्मक टर्मिनल पर ऊर्जा का खिंचाव बराबर और विपरीत होता है। यदि आप सकारात्मक ऊर्जा का प्रभार बढ़ाते हैं तो नकारात्मक ऊर्जा का प्रभार संतुलन बनाते हुए बढ़ जाता है। ठीक इसी तरह,प्यार और नफरत भी एक संतुलन में है, जैसे "अच्छा और बुरा'' (अगर इस संतुलन को व्यक्तिगत करना चाहे तो देवता और दानव कह सकते है।) जैसे ही तराजू का एक पलड़ा झुकने लगता है तो संतुलन का सार्वभौमिक नियम इसको बराबर कर देता है। इस बात पर यकीन रखिए, हमारे न जानते हुए भी, नकारात्मकता का विरोध करने के लिए कहीं न कहीं सकारात्मकता भी बढ़ रही है क्योंकि दोनों शक्तियों को सदा ही बराबर और विपरीत होना है। अगर संतुलन बिगड़ने लगता है तो गुरूजी उसे पुनः स्थापित करने के लिए हस्तक्षेप करते हैं। यह एक सार्वभौमिक नियम है। हमारी खुशियाँ और हमारे दुख-दर्द भी इसी संतुलन के कड़े नियम का पालन करते हैं। यह हमारे आध्यात्मिक जगत का एक कड़ा नियम है। अगर हम यह एहसास करें और इस बात को मान लें कि हम केवल एक का चुनाव करके दूसरे को छोड़ नहीं सकते तो हम आशीर्वाद – प्राप्ति के लिए तैयार हैं।

मेरी समझ के अनुसार भगवान शिव यानी गुरूजी, दुनिया को इसी नियम से चलाते हैं। आप खुशी माँगेंगे तो संतुलन के दिव्य नियम के अंतर्गत दुख भी आपके द्वार पर आएंगे। अगर आप दुखी नहीं होना चाहते तो खुशी को ढूंढना छोड़ दीजिए। अगर आप कुछ खोना नहीं चाहते तो कुछ भी अपना

बनाइए ही नहीं। वो सब जिनको महाराज के मानव रूप में दर्शन करने का सौभाग्य मिला उनको उनके देह-त्याग के दुःख और तकलीफ को भी झेलना पड़ा। यह बहुत ही सरल है।

माँगने वालों (जो इच्छा रखते है) और मानने वालों (जो अपना लेते हे या विश्वास रखते हैं) में फर्क है। जो इच्छा रखते हैं, उन्हें सुख और दुख के द्वंद से गुज़रना पड़ेगा वहीं जो गुरूजी में विश्वास रखते हैं वो सिर्फ खुश हैं, अपने गुरूजी के साथ एक होने की अपूर्वता से। जो भी गुरूजी आशीर्वाद के रूप में निर्धारित करें, वह विश्वास से भरे भक्त के लिए सदैव ही पर्याप्त है। गुरूजी के साथ एक होने की कोई भी विपरीत प्रतिक्रिया नहीं हैं।

अब सवाल है माँगने वाले से मानने वाला कैसे बना जाए। एक उदाहरण से यह समझाता हूँ आप सोचिए कि आपको मुम्बई से चैन्नई जाना है। चैन्नई पहुँचने के लिए आपको मुम्बई को छोड़ना पड़ेगा। इसी तरह हमें मांगने वाले (शुरुआत) से दूर होना पड़ेगा इस से पहले कि हम मानने वाले (मंजिल) बन जाएँ। जैसे ही हम माँगना बंद कर देंगे हमारी गुरूजी की ओर ले जाने वाली यात्रा शुरू हो जाएगी। महाराज के साथ यह सफ़र तय करना बेहतरीन है। जैसा कि एक भजन में कहा है –

"साडे गुरु ने जहाज बनाया, आओ जिन्हें पार लंघना"

अर्थातः हमारे गुरूजी ने जहाज़ बनाया है आओ इस पर सवार हो जाओ, यह हमें दुनियावी दुखों के सागर से पार ले जाएगा।

महाराज के जहाज़ पर सवार हो जाइए, आराम से बैठिए और महाराज के साथ अपनी इस यात्रा का आनंद लीजिए। कोई प्रयत्न न करें, कुछ माँगें नहीं और कोई उम्मीद भी न करें। इस विश्वास के साथ यात्रा करें कि आप सही जहाज पर हैं, और सही मंजिल की ओर बढ़ रहे हैं। जैसे-जैसे आप इस यात्रा में आगे बढ़ेंगे गुरूजी न सिर्फ आपको एक सच्चा अनुयायी बना देंगे बल्कि स्वयं का ही एक हिस्सा बना लेंगे।

लेकिन यह कहना आसान है करना बहुत मुश्किल। पर यह भी सच है कि ऐसा किसी ने कभी नहीं कहा की दिव्यता के साथ यह सफ़र आसान होगा। वास्तव में एक शबद् में समझाया है कि गुरु की दी हुई सेवा उनके निर्देश के अनुसार करना एक कड़वी दवाई खाने जैसा हैं पर ऐसा करने से ही सच्ची ख़ुशी मिलती हैं।

"गुर पीरां दी चाकरी महा करड़ी, सुख-सार।"

शायद कभी हमारे सब्र का बांध टूटने लगे और शायद कभी लगे कि इतना वक्त क्यूँ लग रहा हैं। हमें हमारी जरूरतें सही भी लगें पर हमें यह कोशिश करते रहने चाहिए कि महाराज से अपनी समस्याओं का हल माँगने के लालच को दबा दे। अगर हम जिद करके जोर देकर अपनी इच्छाओं को गुरूजी से माँगते रहेंगे तो हो सकता है गुरूजी महाराज हमें वो दे दें जो हम चाह रहे हैं फिर हमें हमारी अपनी जिंदगी में आगे बढ़ जाने दें। ऐसा करके शायद हम उनके दिव्य जहाज पर चढ़ने का अवसर खो दें। शायद गुरूजी कभी उनकी संगत होने का दर्जा भी न दें।

जो गुरूजी से प्यार करते हैं वो उनसे प्यार करते हैं, बिना यह सोचे कि उन्हें क्या मिल रहा है या क्या नहीं मिला है। इसे ही बिना शर्त प्यार करना कहते हैं। एक सच्चा भगत इसीलिए गुरूजी से प्यार नहीं करता कि गुरूजी उसके लिए कुछ भी कर सकते हैं। वह तो केवल प्रेम करता है। और सिर्फ यह ही एक ज़रूरी फर्क है। विश्वास करने वाले दुखों का सामना करते हुए भी गुरूजी के साथ यात्रा करने के लिए उनके बनाए जहाज पर सवार हो जाते हैं। जो केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए गुरूजी के पास आते हैं उनको शायद वो मिल ही जाए जो वो माँग रहे हैं लेकिन गुरूजी के साथ एक होने का मौका वो खो सकते हैं।

एक बार मैं अपने एक घनिष्ठ मित्र को गुरूजी के पास ले कर गया। वो मित्र एक सरकारी मुलाज़िम थे और उनकी तरक्की काफी समय से रुकी हुई थी। वरिष्ठता में उनसे ऊपर के पद पर नियुक्त एक व्यक्ति उनकी फाइल को आगे बढ़ाने की कार्यवाही नहीं कर रहा था। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं किसी को जानता हूँ जो थोड़ा प्रभाव डालकर यह काम करा दें। मैंने उन्हें गुरूजी के पास चलने का सुझाव दिया, विश्वास भी दिलाया कि गुरूजी के आशीर्वाद से उनकी तरक्की हो ही जाएगी। उन्होंने काफ़ी अविश्वास से मेरी ओर देखा पर साथ चलने को मान गए। यह दिसंबर 2006 के पहले कुछ दिनों की बात है।

मैंने गुरूजी से उसका परिचय कराया और मैंने गुरूजी को सारी परिस्थिति समझाना शुरू किया। गुरूजी मुझे देखकर बोले, 'क्या तुम इसके वकील हो?" मैंने 'ना' में उत्तर दिया और पीछे हो गया। मुझे यह पता होना

चाहिए था कि गुरूजी को कभी भी बिचौलिया पसंद नहीं था। उनके और उनके भक्त के बीच में कोई आए, चाहे वह कोई भी हो, कुछ भी हो, यह बात गुरूजी को पसंद नहीं। गुरूजी ने मेरे मित्र को आशीर्वाद दिया और उसे 31 दिसंबर 2006 को बड़े मंदिर में नए साल के समारोह में आने को कहा। अगले 15 दिनों के अंदर-अंदर उसकी फाइल आगे बढ़ गई और उसकी तरक्की हो गई।

गुरूजी से यह सच्चा आशीर्वाद पाकर भी उसके पास हमेशा गुरूजी के पास ना आने के कई कारण थे। मैंने भी जोर नहीं दिया और छोड़ दिया क्योंकि मुझे यकीन था कि गुरूजी नहीं चाहते थे कि मेरा मित्र उनसे जुड़ जाए। गुरु जी के पास हमारे दिमाग की चाबी है। बिना उनकी इच्छा के कोई भी अनुयायी उनके मंदिर नहीं पहुँच सकता, न ही उसकी गुरूजी से मिलने की इच्छा जागृत होती है। वो अपना काम करवा लेगें पर गुरूजी महाराज के साथ उनके रिश्ते का यही अंत भी हो सकता है।

मैं ऐसे बहुत लोगों को जानता हूँ जिनके सब काम तुरंत हो जाते हैं और फिर वह लौट कर नहीं आते। यह वो लोग है जिन्हें गुरूजी अपने आस- पास नहीं चाहते। इधर उनकी जरूरतें पूरी हुई और उधर उनकी फाइल बंद। मेरा मानना है कि गुरूजी उन्हीं को अपने साथ रखना चाहते हैं जो भक्त ख़ुशी-ख़ुशी अपनी जरूरतों और उनकी पूर्ति की समय रेखा गुरूजी को ही तय करने देते हैं। गुरूजी जिन भक्तों को पसंद करते हैं और चाहते हैं कि वो उनके पास आएँ, ऐसे भक्तों की विनती को गुरूजी तब तक कबूल नहीं करेंगे जब तक उन्हें गुरूजी से प्यार न हो जाए।

इस प्रश्न का एक दूसरा उत्तर देते हैं। सोचिए अगर हमारे पास दो विकल्प हैं – एक जिसमें हमारी जिंदगी में गुरूजी हैं, लेकिन परेशानियाँ भी हैं। दूसरा जिसमें जिंदगी में कोई तकलीफ तो नहीं लेकिन गुरूजी भी नहीं हैं। हम कौन-सा विकल्प चुनेंगे? हमारा चुनाव ही तय करेगा कि गुरूजी के साथ हमारा संबंध कितना लंबा और गहरा होगा। अगर हम बिना कुछ भी मांगे गुरूजी का साथ चाहते हैं हर तकलीफ हर दुःख-दर्द को सहने को तैयार हैं अगर गुरूजी का साथ है। फिर हम समर्पण कर चुके हैं। हम गुरूजी के साथ एक हैं। हम उनके और वो हमारे हैं। अब गुरूजी और हमारे बीच कुछ नहीं आ सकता। वो हमारी सोच से कहीं ज्यादा हमारा ख्याल रखेंगे और आशीर्वाद देंगे।

इस बाहरी दुनिया में जहाँ हम शारीरिक रूप से मौजूद हैं हमारी जिंदगी में कौन आता है कौन जाता हैं इसपर हमारा कोई नियंत्रण नहीं हैं। वो हमारे साथ कैसा व्यवहार करें हम यह तय नहीं कर सकते, हम क्या प्रतिक्रिया देंगे यह भी हमारे बस में नहीं है। परंतु हमारे आंतरिक स्थान में बसी दुनिया सिर्फ हमारी है। जब तक हम न चाहें उसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता। हम जिनसे प्रेम करते हैं केवल उन्हें ही हम अपने हृदय और आत्मा के करीब आने देते हैं। अपने अंतरमन में प्रवेश देते हैं। कभी-कभी हम अपनी नासमझी या लालच की वजह से कुछ गलत लोगों को प्रवेश दे बैठते हैं जो हमारे भीतर सब कुछ नष्ट कर देते हैं फिर हमें टूटा-बिखरा सा छोड़कर चले जाते हैं।

अगर हम अपने अंतर मन में केवल गुरूजी के लिए स्थान रखें तो कोई और उसमें प्रवेश नहीं कर सकता। वहाँ केवल हम दोनों ही होंगे – गुरूजी और हम। हमारी जिंदगी में किसी भी तरह की बकवास की कोई जगह नहीं होगी। न कोई सवाल न कोई जवाब। एक सच्ची खुशी जो केवल गुरूजी के साथ रहने से मिल सकती है हमारा दिल और आत्मा उस खुशी को महसूस करेंगे। ऐसे में हमें किसी और की जरूरत ही नहीं रहेगी। गुरूजी हमारा और हमारे अपनों का हमारे बिना कुछ कहे, पूरा ख्याल रखेंगे।

गुरूजी और मेरे इस अलौकिक संबंध से जुड़ी मेरी भावनाओं को हिन्दी फिल्म का एक गीत एकदम सही व्यक्त करता हैः

"कुछ ना कहो, कुछ भी ना कहो
क्या कहना है, क्या सुनना है
मुझको पता है, तुमको पता है
समय का यह पल, थम सा गया है
और इस पल में, कोई नहीं है
बस एक मैं हूँ, बस एक तुम हो।

अर्थात् – एक शब्द भी कहने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि कुछ कहने-सुनने को है ही नहीं। वक्त ने इस प्यारे लम्हे को कैद कर लिया है, जिस लम्हे में दूसरा कोई नहीं हैं केवल मैं और आप (गुरूजी) हैं।

बिलकुल ऐसा ही रिश्ता होना चाहिए गुरूजी और उनके भक्त के बीच। मैं प्रार्थना करता हूँ कि भक्त गुरूजी से इसी तरह से जुड़ सके। प्यार की इस गहराई में कुछ और नज़र ही न आए। जब अनुयायी का भक्तिपूर्ण प्यार इस

ऊंचाई पर पहुँच जाए कि उसके और गुरूजी के बीच कुछ भी और आने की कोई गुंजाइश न रहे।

अंत में मैं सिर्फ यही कहूँगा कि आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए तैयार होना अपने-आप में एक यात्रा है। यह काफी हद तक व्यक्तिगत है और इस यात्रा में इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि दूसरे यात्री कहाँ पर पहुंचे हैं। मैं इस यात्रा में कितनी दूर निकल आया हूँ, मैं नहीं जानता। पर अच्छी बात यह है कि गुरूजी जानते हैं और बस यही महत्वपूर्ण है।

सतगुरु प्यारा मेरे नाल है – विश्वास के साथ यात्रा

सन् 2004 में मैं अपनी पत्नी और दो बेटियों के साथ श्री लंका छुट्टियाँ मनाने के लिए गया। कोलम्बो के लिए हवाई–उड़ान हम चेन्नई से लेने वाले थे इसलिए हम चेन्नई पहुँच गए। हवाई अड्डे पर 'एयर–लाइन' कंपनी का 'काउन्टर' बंद होने के समय से एक घंटा पहले हमने अपने पासपोर्ट जमा कराए और शुभा के सिवा हम सबको हवाई–जहाज में चढ़ने के लिए अनुमति–पत्र मिल गए। शुभा के पासपोर्ट पर एक 'अप्रवासन–जाँच' की मोहर की जरूरत थी। हमें हवाई अड्डे से 10 किलोमीटर दूर शहर में अप्रवासन विभाग के दफ्तर जा कर मोहर लगवाने को कहा गया। हमारे पास केवल एक घंटा था शहर जा कर मोहर लगवा कर हवाई अड्डे वापिस पहुँचने के लिए। यह असंभव था कि यह सब करके वक्त पर वापिस आया जा सके, पर मुझे गुरूजी पर विश्वास था। शुभा और मैं, महाराज से यह प्रार्थना करते हुए कि "कृपया सिर्फ एक मोहर की वजह से हमारी छुट्टियाँ बर्बाद मत होने दीजिए। कृपया इसे कर दीजिए," फौरन चेन्नई शहर की ओर जाने के लिए निकल गए।

हम हवाई अड्डे से बाहर ही निकले थे कि एक आटो रिक्शा चालक ने हमसे पूछा कि क्या हम शहर में अप्रवासन विभाग के दफ्तर जा रहे हैं। चालक काफी चुस्त था और बहुत सी लाल–बत्तियों के होते हुए भी हम 20 मिनट में दफ्तर पहुँच गए।

दफ्तर के अंदर, एक संबंधित अधिकारी मुझे नियमों से संबंधित जानकारी देना चाहते थे। मेरे पास केवल 40 मिनट थे हवाई अड्डे वापिस पहुंचने के लिए इसलिए मैंने उनसे कहा कि वो प्रक्रिया शुरू करें। मुझे एक फार्म दिया गया, जिसकी मैंने नीचे जाकर एक दुकान से तीन कॉपियाँ बनवाई और उनको भर दिया। इस सब में 10 मिनट निकल गए। अगला काम था, आधा किलोमीटर दूर स्थित बैंक में जाकर 100 रुपए जमा कराना।

मैं मन ही मन में गुरूजी से इस नौकरशाही की बाधाओं का विरोध करते हुए अपनी बेटी को वहीं दफ्तर में बैठा कर बैंक की तरफ भागा। बैंक में पैसे तुरंत जमा हो गए और मैं वापिस भागा। इसमें 15 मिनट और निकल गए। हमें मोहर लगकर पासपोर्ट वापिस मिल गया और जैसे ही हम बाहर निकले आटो रिक्शा हमारा इंतजार करता हुआ मिल गया।

जो सारा वक्त, आटो रिक्शा, दफ्तरों, बैंकों और हवाई अड्डे की अनिवार्य प्रक्रिया में बर्बाद हुआ उसका हिसाब करके हवाई अड्डे वापिस पहुँचने के लिए हमारे पास अब केवल 10 ही मिनट बचे थे। रास्ते में हमें एक भी लाल-बत्ती नहीं मिली। 5-7 मिनट के अंदर ही अंदर मुझे भारतीय हवाई अड्डा प्राधिकरण के नाम का बोर्ड दिखाई देने लगा। विश्वास न कर पाने के कारण मैंने अपनी बेटी से पूछा कि क्या हम अभी से हवाई अड्डे के पास पहुँच गए हैं। हमें हवाई जहाज दिख रहे थे, हम वापिस पहुँच चुके थे। हम तेजी से अंदर गए।

क्या हम वक्त रहते पहुँच गए? पूरी तरह से नहीं। एयर-लाइन कंपनी का मैनेजर काउन्टर पर बैठी लड़की को समय समाप्त हो जाने के कारण काउन्टर बंद करने को कह रहा था। मैनेजर के ऐसा कहने के दौरान ही उसने मुझे और शुभा को तेजी से आते हुए देखा। उसने मेरी पत्नी से हमारे परिचय की पुष्टि की और उस लड़की को पुनः काउन्टर खोलने, हमारा सामान हवाई-जहाज में चढ़ाने के लिए लेने और साथ ही हमें अंदर जाने देने को कहा। जो बात चमत्कार के समान थी वो यह कि अप्रवासन विभाग के दफ्तर जाने में 20 मिनट लगे थे लेकिन वहाँ से लौटने में 10 मिनट से भी कम समय लगा। मैं आज भी विश्वास नहीं कर पाता कि ऐसा कुछ भी हो पाया। महाराज के सिवा ऐसा और कौन कर सकता है?

गुरूजी के लिए वक्त और जगह का कोई मायना नहीं है। वो सर्वव्यापी हैं। वो आपको कभी भी कहीं भी ले जा सकते हैं। वो अपने भक्तों को कभी-भी निराश नहीं करते।

श्री लंका में जिस होटल में हम ठहरे थे, वो एक दूर-दराज के इलाके में था। यात्रा सम्बन्धित एक विवरणिका को देखते हुए हमने जाना कि जहाँ हम रह रहे थे वो जगह 'अशोक वाटिका' के एकदम साथ थी, जहाँ रावण ने देवी सीता को बंदी बनाकर रखा था।

हमने वो जगह देखी जिसका जिक्र रामायण की एक सुंदर कथा 'सुंदर कांड' में हैं। जहाँ भगवान हनुमान देवी सीता से मिलने आए थे और जिसके बाद उन्होंने सोने की लंका को जला डाला था। वहाँ की प्राकृतिक छटा, जैसा रामायण में कथित है, बिल्कुल वैसी ही थी। मिट्टी का कुछ भाग काला था मानो वह आज भी कड़ी पीड़ा का अनुभव कर रही हो। केवल एक मीटर की दूरी पर शेष मिट्टी सामान्य थी। बाग के बीचों बीच पानी बह रहा था। गुरूजी ने हमारी छुट्टियों को एक तीर्थयात्रा में बदल दिया।

गुरूजी को यह बात बहुत पसंद है कि उनकी संगत जिंदगी को अच्छे से और बहुत मजे से जिए। उनके पास हम ऐसे तैयार हो कर आते मानो किसी समारोह में जा रहे हों। ऐसा देखकर गुरूजी बहुत खुश होते। गुरूजी बिलकुल माँ की तरह हैं जो अपने बच्चों को खुश देखकर खुश होती है।

यह एक रिवाज था कि भक्त देश से बाहर जाने से पहले गुरूजी से आज्ञा लेंगे। अगर हमें कहीं भी जाना होता, हम उनसे आज्ञा मांगते थे। वो हमेशा मुस्कुराते और अपना आशीर्वाद दे देते। मेरे लिए भी ऐसा ही होता था। वो अक्सर 'ऐश कर' या कुछ अन्य आशीर्वाद से भरे शब्द कह देते थे। 2005 में अमेरीकन कंपनी में नियुक्त होने के बाद, मुझे अमेरीका जाने का अवसर मिला।

यह अमेरिका जाने की मेरी पहली यात्रा थी। मैं अत्यंत उत्साहित होकर गुरूजी के पास उनसे आज्ञा लेने आया। वे खुश थे, यह मैं देख सकता था।

उन्होंने मुझे देखा, थोड़ी देर चुप रहे फिर मुझे दो बोतल विटामिन E की गोलियाँ लाने को कहा। मैं विश्वास ही नहीं कर पाया कि गुरूजी मुझसे कुछ व्यक्तिगत करने को कह रहे हैं। मैं बहुत उत्साहित था, लेकिन मैंने केवल हाथ जोड़े और गुरूजी के हुक्म को 'जी गुरूजी' कह कर स्वीकार किया। मैं जैसे ही जाने लगा, गुरूजी ने कहा कि गोलियों की बोतलों पर निर्माण की तिथि एकदम नवीनतम होनी चाहिए। मैं वापिस मुड़ा, अपने हाथ जोड़े और 'जी गुरूजी' कह कर उनका यह हुक्म भी स्वीकार किया। मैं एकदम सातवें आसमान पर था कि गुरूजी मुझसे अपने लिए कुछ करवा रहे हैं। जाहिर सी बात है यह उनका मुझे आशीर्वाद देने का एक तरीका था।

अमेरिका मैं अधिकारिक काम के सिलसिले में गया था पर विटामिन-E की गोलियाँ लाना मेरा सबसे महत्वपूर्ण काम बन गया। मेरे वाशिंगटन पहुँचने पर मेरा एक अमरीकन सहकर्मी मुझे लेने आया था जो चाहता था कि हम सीधे काम पर चले। मैंने उसे रोका और बताया कि मुझे सबसे पहले नवीनतम निर्माण तिथि वाली विटामिन-E की गोलियों की दो बोतल खरीदनी हैं। उसने कहा जरूर, पर क्यों? मैंने उससे कहा कि यह खरीदना मेरे लिए किसी भी अन्य काम से जरूरी हैं। हम एक दवाई की दुकान पर गए और मैंने दो बोतलें विटामिन-E की खरीद ली।

यह एक सफल यात्रा रही। मैंने सीखा कि वह संस्था कैसे काम करती है, बहुत से दोस्त बनाए, काम करने की जगह के तौर-तरीकों को समझा और

लौट आया। आने वाले शनिवार को, जो कि मेरा दर्शनों के लिए जाने का नियमित दिन था, मैं विटामिन E की बोतलों को साथ ले गया।

मैं गुरूजी के पास गया और वो बोतलें उनको दे दीं। महाराज ने थोड़ी देर उन बोतलों को जाँचा और पूछा कि क्या वो नवीनतम निर्माण तिथि वाली हैं? मैंने केवल हाँ में अपना सर हिलाया। उन्होंने मुझसे उन बोतलों को अपने कमरे रखने को कहा।

यह एकदम अविश्वसनीय था। मैंने जो सुना उस पर यकीन नहीं कर पा रहा था। गुरूजी के कमरे में, बिना उनकी आज्ञा के कोई भी नहीं जा सकता था, परंतु वो मेरे लिए असाधारण आशीर्वाद को पाने का दिन था। सत्संग के दौरान मैं उस कमरे के दरवाजे के पास बैठता था इसीलिए उस कमरे से आने वाली अद्भुत खुशबू से भी वाकिफ था। मैं दरवाजा खोलकर अंदर गया और मैं स्वर्ग में था। उस कमरे की आभा, रम्यता, सादगी और खूबसूरती सब अविश्वसनीय थे। मुझे सिर्फ अंदर जाकर, गोलियों को वहाँ छोड़कर लौट आना था। परंतु मैं वहाँ रुक गया, पीठ दीवार की ओर, मुंह गुरूजी के बिस्तर की ओर करके, मैं बैठा रहा, उस सारे एहसास को अपनी साँसों के साथ अपने अंदर समेटता हुआ। उस हवा को, जिसे गुरूजी की साँसों ने छुआ था, सोख रहा था। अपने लालच के कारण पकड़े जाने के डर से मैं माथा टेककर न चाहते हुए भी बाहर आ गया और चुपचाप जाकर अपनी जगह पर बैठ गया। (ऐसा लग रहा था मानो जिस चीज़ पर मेरा हक नहीं था मैंने उसे ले लिया हो)। ये एक बहुत ही खास अनुभव था।

गुरूजी हम सब को बहुत महत्वपूर्ण महसूस करवाते थे। वास्तव में हम सब कुछ भी नहीं हैं। इस सृष्टि के विस्तार में धूल के एक कण के समान भी नहीं। भगवानों के भी भगवान का हम सब को एक व्यक्तिगत रूप से वांछित और खास महसूस कराना, बहुत ही अद्भुत था। गुरूजी अपनी हर संगत को ऐसा महसूस कराते थे कि मानो केवल वो ही गुरूजी के लिए खास हैं।

गुरूजी अपनी हर एक संगत के लिए हर वक्त मौजूद रहते हैं और इसीलिए वो हमें अपने साथ सीधे जुड़ने पर जोर देते हैं, सब के साथ मिलकर जुड़ने पर नहीं। किसी भी एक गुट का हिस्सा बनकर उन से मत जुड़े और इसमें सोशल-मीडिया के गुट भी शामिल हैं। संगत में कोई भी पहला या दूसरा नहीं है। गुरूजी के साथ सीधा, एक-से-एक वाला संबंध बनाइए बिना किसी भी और को बिचौलिया बनाकर।

मुझे अमेरिका जाने का एक और मौका मिला और मैंने फिर से गुरूजी का आशीर्वाद माँगा। जब मैं गुरूजी से बात कर रहा था, मेरी पत्नी मेरे पीछे खड़ी थीं। गुरूजी ने उसकी ओर देखा, फिर मुझे देखा और पूछा कि क्या मैं उसको अमेरिका लेकर गया हूँ। इससे पहले मैं जवाब दे पाता, मेरी पत्नी ने शिकायत करने के अंदाज में कहा कि मैं उसे कभी अपने साथ अमेरिका नहीं ले गया। मेरा चेहरा एकदम लाल हो गया। मैंने घबराते हुए बहाना दिया कि यह तो व्यापारिक यात्रा थी पर गुरूजी को तो जवाब में ना सुनना ही नहीं था। गुरूजी ने मुझे देखकर कहा "क्यूँ नहीं लेकर जाता इसको"? मैंने कहा ले जाऊँगा। फिर गुरूजी ने मेरी पत्नी को देखकर कहा "ये तुझे इस बार ले जाएगा"।

वो यात्रा बहुत ही कम समय के लिए थी और मुझ पर काफी चीजों की जिम्मेदारी थी और सच कहूँ तो मैंने गुरूजी के इस कथन को गंभीरता से भी नहीं लिया था। मैं उसे अपने साथ नहीं ले गया। मैं वापिस आया और जब मैं महाराज की मौजूदगी में गया तो पहली बात जो गुरूजी ने पूछी वो यही थी, "क्या तुम आंटी को अपने साथ ले गए थे"? मेरे पास कोई बहाना नहीं था और इस से पहले कुछ कहूँ मेरी पत्नी ने उनको बताया कि मैं नहीं लेकर गया था। गुरूजी ने एक कड़ा निर्देश देते हुए मुझसे कहा अगली बार उसे अवश्य लेकर जाना। फिर वो मेरी पत्नी की तरफ मुड़े और उस से कहा कि अगली बार मैं उसे पक्का अमेरिका ले जाऊँगा।

अगली अमेरिका यात्रा गुरूजी की महासमाधि के बाद ही हो पाई। उस यात्रा के दौरान वहाँ पर केवल दो ही दिन के लिए रहना था फिर भी मैं अपनी पत्नी को अपने साथ लेकर गया। हमने साथ में यात्रा की और गुरूजी की मौजूदगी में लौट आए। पहली बार बड़े मंदिर में उनकी समाधि के सामने। भीगी हुई आंखों और जुड़े हाथों के साथ मैंने गुरूजी को बताया कि महाराज, मैं अपनी आँटी को अमेरिका ले गया था। मुझे यह महसूस हो रहा था कि गुरूजी खुश थे कि मैंने उनका आदेश माना था।

यह सच है कि गुरूजी ने महासमाधि ले ली है। लेकिन संगत आज भी उनसे बिलकुल वैसे ही जुड़ रही है, बातें करती है जैसा संगत महासमाधि से पहले प्रत्यक्ष विराजमान गुरूजी से करती थी। और यह सही भी है। क्योंकि गुरूजी तो यहाँ पर ही मौजूद हैं। हम उनका जिक्र कभी भी भूतकाल में नहीं करते। उनके स्वरूप पर माला नहीं चढ़ाते। गुरूजी सदा के लिए हैं और उनसे हमारा रिश्ता–एक दिव्य पवित्र गुरु और अनुयायी का रिश्ता भी सदा के

लिए हैं। यह समय की सीमा में नहीं बंधा है। उस सृष्टि से परे जो दिखाई देती है। क्योंकि जो हम देखते हैं वह तो सच्चाई नहीं हैं। वह केवल सच्चाई की अनुभूति है। आत्मा से आत्मा का जो संबंध महाराज के साथ है केवल वो ही सच्चाई है।

महाराज हमें किन-किन तरीकों से कैसे आशीर्वाद देते है, यह समझना मुश्किल है। आज जब मैं पीछे मुड़ कर देखता हूँ तो मेरी दो बेटियों का अमेरिका में होना, मुझे गुरूजी के आदेश, कि मैं अपनी पत्नी को अमेरिका लेकर जाऊँ, से कहीं न कहीं जुड़ा महसूस करता हूँ। गुरूजी ने हमारे कर्मों का सम्पूर्ण प्रसंग देखा, उसके बंद दरवाज़े खोल दिए, ताकि हम एक बेहतर जिंदगी जी सकें। घर की महिला का खुश होना इन बंद दरवाजों को खोलने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

जब मैं वैवाहिक संबंधों की बात कर ही रहा हूँ तो एक बात और कहता हूँ कि मेरे इस अनुभव ने, मेरी व्यक्तिगत सोच में, जो मैंने शास्त्रों से सीख कर बनाई, कुछ इजाफा ही किया। ये सोच थी कि जहाँ कहीं भी एक महिला की इज्जत की जाती है, उसे पूजनीय समझा जाता है, वहीं पर भगवान बसते हैं।[6] जहाँ कहीं उनकी इज्ज़त नहीं की जाती वहाँ सब कार्य निष्फल रहते हैं। यदि आप चाहते हैं कि गुरूजी महाराज से मिलने वाले आशीर्वाद आपको एक सुचारु प्रवाह में मिलते रहें तो आप अपनी पत्नी, को हमेशा खुद से पहले रखें।

मुझे स्पष्ट रूप से याद है कि मैं संगत को गुरूजी के स्वरूप वाले लॉकेट को ब्लैस करने के लिए महाराज से प्रार्थना करते देखता था। महाराज ख़ुशी-ख़ुशी उनकी प्रार्थना स्वीकार भी कर लेते थे। दिसम्बर 2006 में हमने भी सोने के दो लॉकेट बनवाए और पहनने से पहले गुरूजी के सामने प्रस्तुत किये ताकि वो उन्हें ब्लैस कर सकें। गुरूजी ने लॉकेट अपने हाथ में लिए और पूछा कि यह किसके लिए है। मैंने जवाब दिया कि एक मेरे लिए है और दूसरा मेरे दामाद के लिए।

---

[6] (यह नैतिक उपदेश मनुस्मृति से लिया गया है → यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः

I यन्त्रैवास्तु न पुज्यन्ते सर्वास्तिप्राफलाः क्रियाः

II षोचन्ति जामयो यत्र विनष्यत्याषु तत्कृतम्। न षोचन्ति तु यत्रैता वर्धते वृद्धि सर्वदा। (वो परिवार जिसमें महिलाएँ (जैसे माँ पत्नी बहन और बेटी आदि) दुखी हैं वह परिवार जल्द ही नष्ट हो जाता हैः वहीं पर वह परिवार जहाँ वो दुखी नहीं हैं सदा ही फलता-फूलता है।)

महाराज ने तुरंत पूछा – और आँटी का क्या?

मैं एकदम से सकपका गया। मुझे यह पहले से ही पता होना चाहिए था। अपनी पत्नी से पहले खुद के लिए आशीर्वाद प्राप्त करने का मैं सोच भी कैसे सकता था। मैं शर्मिंदा था और कुछ कहने के लिए मेरे पास शब्द भी नहीं थे। मैं केवल सर झुकाकर नीचे देखते हुए चुपचाप खड़ा रहा। मेरे पास कोई भी बहाना नहीं था। खैर, महाराज ने लॉकेट ब्लैस कर के मुझे वापस कर दिए।

हम घर लौट आए और तब तक मैंने अपने लॉकेट को न पहनने का फैसला लिया जब तक मैं अपनी पत्नी और बेटियों के लिए भी लॉकेट बनवाकर गुरूजी से आशीर्वाद न दिलवा लूँ। इसमें कुछ वक्त लगा। अप्रैल 2007 में ही, पहले के दो लॉकेट जिन्हें महाराज ने ब्लैस किया था, उनके समान दिखने वाले अन्य चार लॉकेट की हम व्यवस्था कर पाए। मैं उनको लेकर गुरूजी के पास गया और गुरूजी का आशीर्वाद प्राप्त किया। फिर पूरे परिवार ने एक साथ लॉकेट पहने।

मैं, अमेरिका से बने अपने सम्बन्धों पर लौट कर आता हूँ। मेरा विश्वास है कि गुरूजी चाहते थे कि अमेरिका हमारे भविष्य का हिस्सा बन जाए और यह संबंध हमारे लिए भाग्यशाली हो इसके लिए मेरा अकेले अमेरिका जाना उतना फलदायक नहीं था, मेरी पत्नी को इस संबंध का हिस्सा बनना ज़रूरी था। हमें एक–साथ पति–पत्नी के रूप में ही आशीर्वाद मिलना था।

मुझे पता है कि मेरी पत्नी को यात्रा करना, घूमना और नई जगह देखना पसंद है। यह सब उसे बहुत खुशी देता है। मैं यह भी जानता हूँ कि जो कुछ उसे खुश करता है वो गुरूजी को भी खुश करता है। जब महाराज खुश होते हैं, हमें उनके असीमित आशीर्वाद प्राप्त होते हैं।

अमेरिका की कुछ यात्राओं में, मेरी पत्नी और मुझे गुरूजी के संरक्षण के बयान करने लायक अनुभव हुए। एक ऐसी ही यात्रा से लौटते हुए, जब विमान न्यूअर्क हवाई अड्डे से उड़ान भरने के लिए चलना शुरू हुआ तब मुझे विमान के बाएँ पंख से काफी ज्यादा कंपन महसूस हुआ। जहाज़ को रोका गया, जाँचा गया, ठीक किया गया, और उसके बाद हमारी यात्रा आरामदायक रही।

मुझे कोई चिंता नहीं थी मैं जानता था कि मैं अपने गुरु की गोद में हूँ। वो मुझे हमेशा एक माँ की तरह पकड़े हुए हैं।

एक अन्य मौके पर हम एयर बस 320 से उड़ान भरने ही वाले थे कि हवाई जहाज के सभी बिजली से चलने वाले उपकरणों में से बिजली चली

गई। हवाई जहाज पूर्ण रूप से बंद हो गया। एक विचार मेरे मन में आया कि अगर यह केवल कुछ सैकन्ड के बाद हुआ होता तो हवा में एक मृत यानि पूर्ण रूप से बंद जहाज होता। कुछ समय पश्चात ठीक कर के बिजली लौटाई गई। सब चीज़ों की अच्छी तरह से जाँच हुई और हवाई जहाज को उड़ान के लिए तैयार किया गया। हवाई जहाज़ एक बाज़ की तरह उड़ा। एक बार फिर, मैं बाकी सब की तरह सुरक्षित था क्योंकि मैं अपने गुरु की गोद में था, सिर्फ हवाई जहाज़ में नहीं बैठा हुआ था।

अभी–हाल ही में साल 2020 में हमें अमेरिका में कोविड प्रतिबंधों के कारण 5 महीने तक रुकना पड़ा। हम जितनी जल्दी मुमकिन हो पाया उतनी ही जल्दी वापिस आ गए। नुवार्क के हवाई–अड्डे पर, उड़ान से पूर्व हवाई जहाज के सभी सिस्टम्स को रिबूट करने की जरूरत पड़ी थी। जैसा हम कभी कभी अपने डेस्कटॉप कम्प्यूटर के साथ करते हैं। इसमें करीब ढाई घंटे का समय लगा। जहाज ने उड़ान भरी और जहाज एक अत्यंत खराब मौसम की परिस्थितियों में फंस गया। मैं काफी यात्राएँ करता हूँ पर जैसा अनुभव उस दिन हुआ वैसा अनुभव मैंने कभी नहीं किया। मेरी पत्नी मेरे साथ थीं। हमने एक–दूसरे की तरफ देखा और मैंने उससे केवल इतना ही कहा, तुम्हारे बच्चों की जिंदगी अच्छी तरह से व्यवस्थित है और हम दोनों हमारे गुरु की बांहों में हैं, तो अब हम सो जाते हैं। अगर सुबह हम उठे– तो अच्छा है और अगर नहीं उठे तो भी अच्छा है। सामान्यता हम दोनों कभी भी उड़ान दौरान सोते नहीं हैं परन्तु उस दिन 8 घंटे का खराब मौसम भी हमें सोने से नहीं रोक पाया। हम सोए रहे और जब जागे तो जहाज अफगानिस्तान के पास पहुँच गया था, उतरने के स्थान, दिल्ली से केवल डेढ़ घंटा दूर। मैंने उसकी और देखा और कहा, "हम पहुँच गए, हम जहाज में नहीं उड़ते हम तो अपने गुरूजी की गोद में बैठकर यात्रा करते हैं"।

वो हमें अपनी बाँहों में कसकर थामे रहते हैं और एक जगह से दूसरी जगह ले जाते हैं। हम दोनों का करोना से बचाव का टीका करण नहीं हुआ था और हम सह–यात्रियों के साथ हवाई जहाज में, नूवार्क और दिल्ली के हवाई अड्डों पर संपर्क में आए थे। लेकिन कोई समस्या नहीं हुई।

यह शबद् "सतगुरु प्यारा मेरे नाल है" मेरे विश्वास को समाहित करता है। यह शबद् गुरूजी का खुद दिया हुआ एक आश्वासन है। इसका अर्थ है कि प्यारे गुरूजी हमेशा मेरे साथ हैं। इस बात में विचार–विमर्श या बहस की

कोई ज़रूरत ही नहीं है। अगर यह एक बात हम अपने दिल में हमेशा के लिए बैठा लें तो फिर हमारे पास कुछ भी, सोचने या चिंता करने के लायक, नहीं है। हमें माँगने की ज़रूरत नहीं हमें तो केवल अपने गुरूजी पर विश्वास करना है। वो हमारे साथ रहें यह प्रार्थना करने का कोई कारण नहीं है। मेरी नजर में तो शायद यह एक भूल ही होगी। हमें तो यह विश्वास रखना है कि गुरूजी हमारे साथ ही हैं, वास्तव में मुझे पक्का पता है कि वो मेरे साथ ही हैं।

गुरूजी ने बहुत बार, जरूरत के वक्त भी और रोजमर्रा की नियमित जिंदगी में भी, यह दिखाया है कि वो हम पर नजर रखते हैं। उदाहरण के लिए एम्पायर-एस्टेट की एक बात बताता हूँ। सत्संग के दौरान एम्पायर-एस्टेट में काफी संगत उनकी मौजूदगी में बैठ कर आनंद लेते रहना चाहती थी। वहाँ से जाना ही नहीं चाहती थीं क्योंकि गुरूजी का साथ एक लत लगने जैसा है। गुरूजी हमें एक अनोखी, अद्‌भुत सी अनुभूति कराते। मैं भी एम्पायर एस्टेट में ज्यादा से ज्यादा वक्त रुकने की कोशिश करता था। लंगर करने के और आज्ञा लेने के बाद भी मैं वहीं आस-पास घूमता रहता था और चुपके से एक ऐसी जगह में रहता जहाँ मुझे लगता था कि गुरूजी मुझे नहीं देख पाएंगे। लेकिन यह चालाकी कभी नहीं चली।

एम्पायर एस्टेट में हाल में प्रवेश द्वार के पास एक तरफ एक खम्भा है। मैं उसके पीछे खड़ा रह कर छिपने की कोशिश करता। वहाँ तक गुरूजी का सीधे-सीधे देख पाने का कोई रास्ता नहीं था। कभी एक या दो सेवादार घोषणा करते कि गुडगांव की जिस संगत को घर जाने की आज्ञा मिल गई है वो चले जाएँ। लेकिन मैं ऐसा दिखावा करता कि मानो यह घोषणा मेरे लिए है ही नहीं। एक बार जैसे ही मैंने खंभे के पीछे जाकर बैठने के प्रयास में अपने घुटने मोड़े, मुझे सुनाई दिया– "कमांडर घर जाओ।" मैं महाराज की तरफ बिना देखे, हाथ जोड़कर बाहर निकल गया, ऐसा नाटक करते हुए कि मानो कुछ हुआ ही नहीं। ऐसी चालाकी करने की मैंने दो बार कोशिश की और फिर छोड़ दिया। इस चालाकी ने कभी काम नहीं किया।

गुरूजी हम पर हमेशा अपनी नज़र रखते हैं। गुरूजी ने हमें अपने चार फोटोग्राफ दिए थे जब मैंने मन ही मन उनसे इनके लिए प्रार्थना की थी। (जिसका जिक्र मैं पहले कर चुका हूँ)। परिवार के हर सदस्य के पास एक स्वरूप था। हमारी श्रीलंका की यात्रा के दौरान, मेरी सबसे छोटी बेटी इला ने स्वरूप अपने पर्स में रखा। यात्रा से लौटकर घर पहुँचकर हम जल्दी सो गए।

अगली सुबह, हमने देखा इला चीखती हुई अपने कमरे से बाहर भागी और घर के मुख्य द्वार से बाहर चली गई। इससे पहले हम कोई हस्तक्षेप करते वो वापिस अंदर आ गई। इस वक्त सुबह के तकरीबन 9 बजे थे। जब हम एक साथ नाश्ता करने बैठे तब हम उससे जानना चाहते थे कि आखिर उसे हुआ क्या था। उसने बताया कि रात को उसने पर्स से कुछ कागज कूड़े में फेंके थे और अनजाने में गुरूजी का स्वरूप भी उनके साथ कूड़ेदान में फेंका गया। घर का बाकी कूड़ा उस के ऊपर कूड़ेदान में डालकर मेरी पत्नी ने उसे घर के बाहर रख दिया ताकि कूड़ा उठाने वाला कूड़ा ले जा सके।

तीन अनोखी बातें हुईः उस सुबह, कूड़ा उठाने वाला अपने निर्धारित समय सुबह के 8 बजे नहीं आया। जब तक मेरी बेटी को अपनी अनजाने में हुई भूल का आभास नहीं हुआ, वह वहाँ नहीं पहुँचा। हालाँकि उसने कूड़ा कूड़ेदान में सबसे नीचे फेंका था, उसे गुरूजी का स्वरूप सबसे ऊपर मिला। उसे स्वरूप को ढूँढने की जरूरत नहीं पड़ी। और तीसरी बात– जिस वक्त वो कूड़ेदान से स्वरूप उठा रही थी ठीक उसी वक्त कूड़ा उठाने वाला हमारे घर की ओर आ रहा था। कुछ क्षण की देरी होती तो स्वरूप कूड़े के साथ चला गया होता। और अगर ऐसा हो जाता तो हम सब कभी भी खुद को माफ़ नहीं कर पाते। ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि गुरूजी ने ऐसा होने नहीं दिया।

गुरूजी के स्वरूप उनकी मौजूदगी की अभिव्यक्ति हैं। हमें दो बड़े स्वरूप भी मिले जो हम घर ले आए। एक बार मेरठ से मेरे अंकल हमसे मिलने हमारे घर आए। उन्हें गुरूजी के दर्शन हुए थे और वो गुरूजी का एक स्वरूप चाहते थे। मेरी पत्नी ने हमें मिले स्वरूपों में से एक बड़ा स्वरूप अलमारी के एक तख्त पर बिछी अखबार के नीचे रखा था। उसने उसे निकाल कर अंकल को देने का फैसला किया। उस स्वरूप पर एक हल्दी का पीला निशान (पिथया) था।

मेरठ जाकर अंकल ने वो स्वरूप फ्रेम में लगाने के लिए दे दिया। कुछ दिन बाद उन्होंने मुझे फोन करके यह बताया कि जो व्यक्ति फ्रेम बना रहा था उसने स्वरूप खो दिया है। अब हम दोगुना ज्यादा उदास हो गए। एक तो वो स्वरूप जो हमें आशीर्वाद के रूप में मिला था हमने वह दे दिया था और अब ऊपर से वह खो भी गया। हमने अपने आप में ही यह सोचा कि शायद अभी वो वक्त नहीं था जब हमारे अंकल को गुरूजी का वह स्वरूप मिले जो गुरूजी ने खुद हमें दिया था।

काफी महीनों के बाद, हम दीवाली पर पूरे घर की सफाई कर रहे थे। शेल्फ में बिछी अखबार बदलने का वक्त आया। जैसे ही मेरी पत्नी ने अखबार उठाया वो स्वरूप वहीं पर रखा मिला। उस पर वो पीली हल्दी का निशान भी था। मेरी पत्नी भागती हुई मेरे पास मुझे यह बताने के लिए आई। हमने अपने अंकल को फोन किया और उन्हें तसल्ली दी कि स्वरूप हमारे पास वापिस आ गया है।

ऐसी है गुरूजी की कृपा। क्या हमें यह एहसास भी है कि हम किनके बारे में बात कर रहे हैं?

हम एक साधारण इंसान हैं, दोषों ओर कमियों से भरे हुए, हर वक्त गलतियाँ करते हुए। लेकिन गुरूजी अपनी दया से, कभी भी अपने अनुयायी को गिरने नहीं देते। अगर ज़रूरत होगी तो हमारे कान मरोड़ेंगे और कभी-कभी हमें कठिन सबक भी सीखने होंगे, लेकिन यह सब एक माँ के ममता से भरे स्पर्श के साथ ही होगा। हमारी गलतियों को प्यार से, ध्यान से सुधारा जाएगा। **गुरूजी की दुनिया सुधारात्मक है, दंडात्मक नहीं।**

गुरूजी हमारे हैं। वो हर वक्त हमारे साथ हैं। उन्होंने हमारा हाथ थामा है। हमें तो केवल इतना करना है कि उन पर पूर्ण विश्वास करें। अगर हमें विश्वास है कि गुरूजी हमारे हैं तो गुरूजी हमारे हैं। और अगर यह विश्वास नहीं है, तो गुरूजी हमारे नहीं हैं। हमारा गुरूजी के प्रति विश्वास और श्रद्धा ही महाराज से जुड़ने की चाबी है।

उनमें विश्वास रखिए, अपनी प्रार्थना पर विश्वास कीजिए तो बस वो केवल आपके हैं।

गुरू महाराज के द्वारा दिया गया पहला आशीर्वाद से भरा स्वरूप (सत्संग पेज 14 पर)

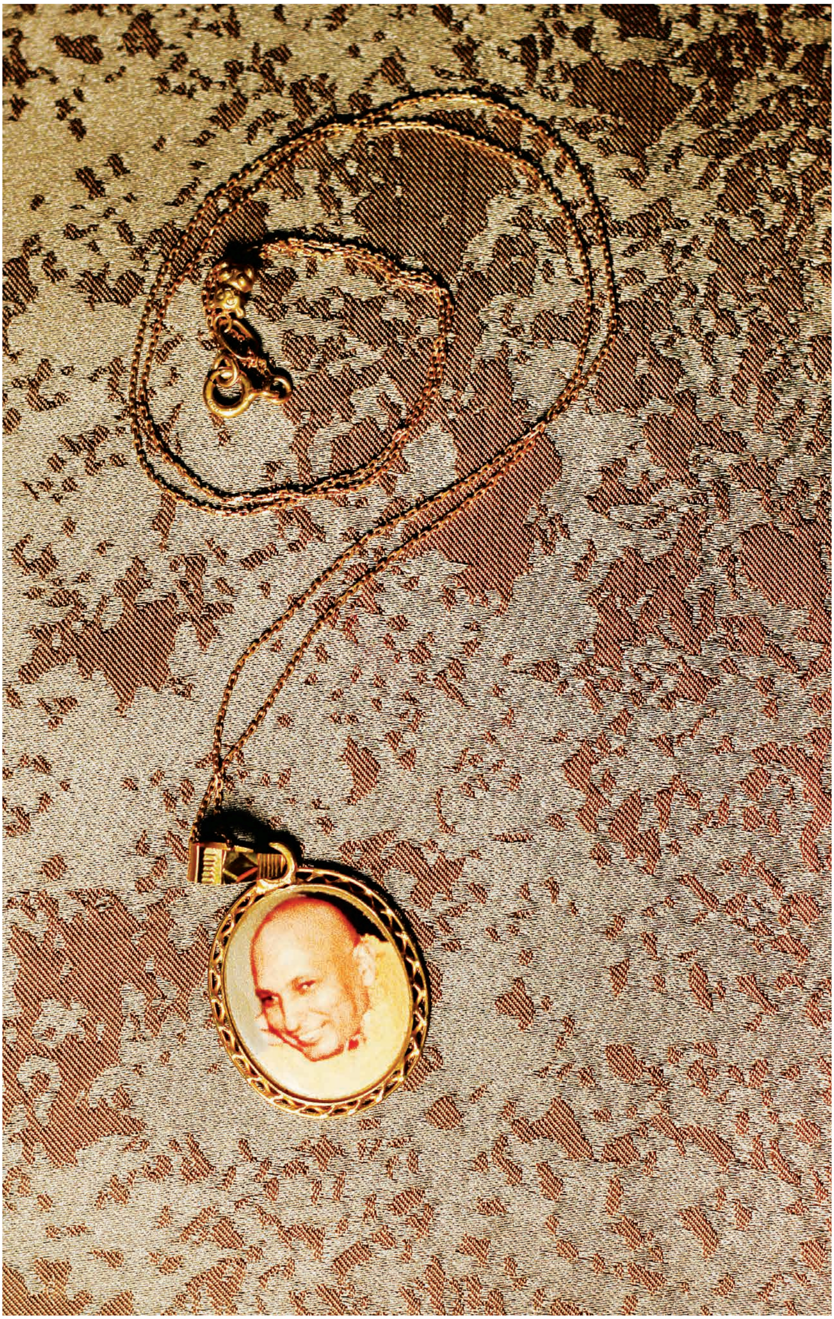

गुरू महाराज द्वारा आशीर्वादित लाकेट (सत्संग पेज 57 पर)

गुरूजी महाराज द्वारा बड़े मंदिर में दिया गया फूलदान (सत्संग पेज 67 पर)

गुड़गाँव सत्संग में गुरूजी महाराज की दिव्य उपस्थिति–28 जनवरी 2006 (सत्संग पेज 68 पर)

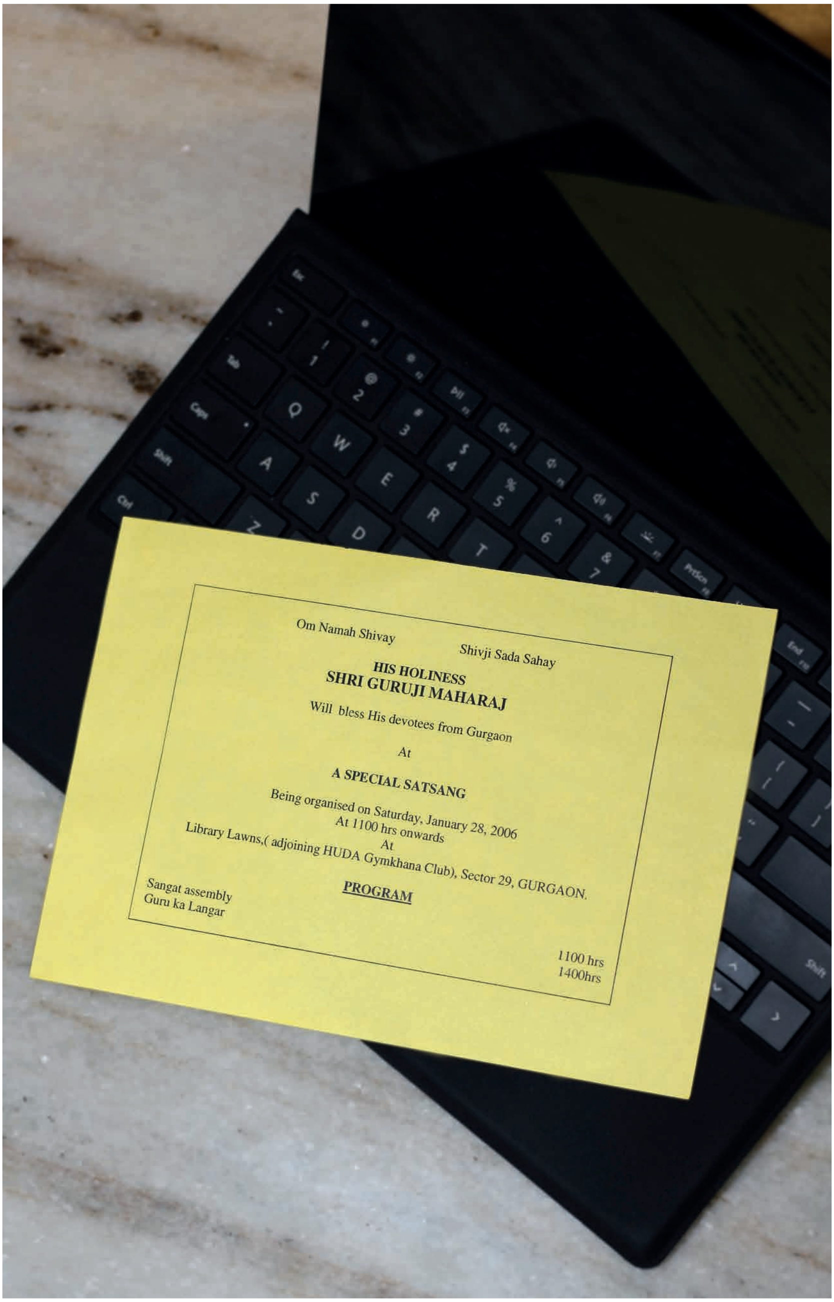

गुरुजी महाराज के गुड़गाँव सत्संग के लिए छपा आमंत्रण पत्र (सत्संग पेज 69 पर)

गुरुजी महाराज के हस्त कमलों द्वारा दिया गया विवाह का निमंत्रण पत्र (सत्संग पेज 76 पर)

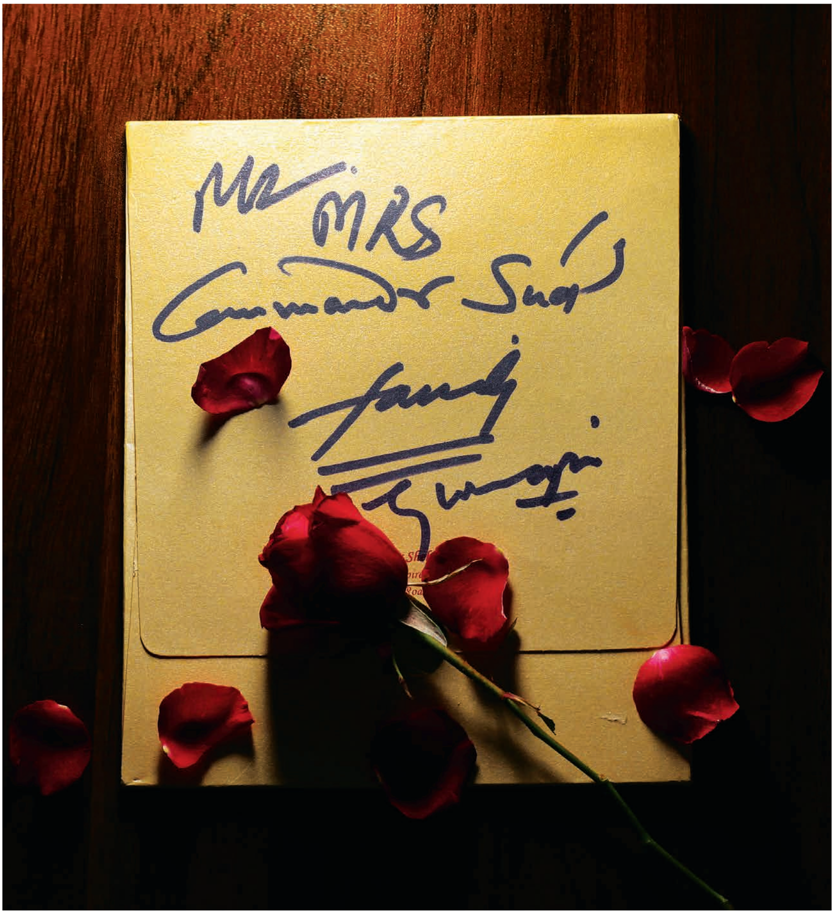

गुरुजी महाराज के हस्त कमलों द्वारा दिया गया विवाह का निमंत्रण पत्र (सत्संग पेज 76 पर)

2007 के कलेंडर से लिया गया गुरुजी महाराज का स्वरूप (सत्संग पेज 115 पर)

महाराज की सेवा – यादगार घटनाएँ

सेवा का मार्ग धीमा मगर नियमित था। नई संगत के रूप में सत्संग के दौरान हमारा काम केवल इतना ही था – कि हम आयें, चाय और हलवा प्रसाद ग्रहण करें, लंगर करे और गुरूजी का आशीर्वाद ले कर उनकी आज्ञानुसार अपने घर को प्रस्थान करें, एक बार फिर आने के लिए।

कुछ संगत को गुरूजी अपनी चरण सेवा करने का दिव्य अवसर भी प्रदान करते थे। मेरी भी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं भी ऐसा कर पाऊं। मैं अक्सर हैरान होकर सोचता भी था कि क्या कभी मुझे ऐसा अवसर मिलेगा। गुरूजी से पूछने या खुद ही से ऐसा करने की हिम्मत तो मुझ में थी ही नहीं। एक दिन, मैंने एक तरीका ढूंढ ही निकाला। आज्ञा लेते समय केवल सर झुकाकर उनके चरण-स्पर्श करने की जगह मैंने सोचा कि मैं उठने से पहले उनके पाँव पकड़ लूँगा और थोड़ी देर को ही सही चरण दबा कर सेवा कर लूँगा। यह एक अच्छी योजना थी। मैंने इस बारे में किसी से कोई बात नहीं की।

अगले शनिवार, मैंने इस भक्तिपूर्ण योजना को लागू कर दिया। मैं जैसे ही आगे झुका, मैंने उनके चरण-कमल पकड़ लिए और आराम से पांच से छः बार पाँव दबाए।

महाराज ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। उन्होंने इसे बस यूँ ही रहने दिया। इस प्रक्रिया से मेरे हाथों में उनकी खुशबू आ गई। उस दिन, संगत मेरे हाथों को सूंघना चाहती थी क्योंकि वे जानते थे कि उनमें गुरूजी की खुशबू है। मैं अपने हाथों को साफ करने और धोने से बचता रहा और यह ध्यान भी रखा कि वो गंदे न हो। जब तक मैं कर सकता था तब तक मैंने किसी से हाथ भी नहीं मिलाया। मेरी खुशी का कोई ठिकाना ही नहीं था। मेरी यह प्लान काम कर गया था।

अपनी अगली मुलाकात पर भी मैंने ऐसा ही किया और गुरूजी ने मुझे रोकने के लिए कुछ नहीं किया तो इस बात से मेरा हौसला बढ़ गया। शुरू-शुरू में मैं तीन या चार बार पाँव दबाता था और यह देखकर कि गुरूजी अप्रत्यक्ष रूप से अनुमति दे रहे हैं मैंने पाँव दबाने की प्रक्रिया दोहरी कर दी। बेशक, वो जानते थे कि क्या हो रहा है, उन्होंने मुझे केवल यह छूट दी थी।

अगले दर्शन के दौरान जब मेरा आज्ञा लेने का वक्त आया तो मैंने फिर से उनके चरण दबाए। इस बार कुछ और लंबे समय तक। उन्होंने मुझे देखा, कुछ खुश और कुछ डांटने के अंदाज से मुझे आगे बढ़ने को बोला। उनके शब्द थे, "ओए, हो गया, चल बस"। मैंने तुरंत अपने हाथ पीछे कर लिए और गायब हो गया क्योंकि मैं कभी भी नहीं चाहता था कि मैं इस चरण-दबाने के आशीर्वाद से वंचित हो जाऊँ।

मेरी अगली मुलाकात के दौरान, महाराज अपने दोनों पांव जमीन पर रख कर बैठे थे जब मेरी बारी आई, मैं आंखें बंद करके आगे झुका और महाराज के चरण ढूंढने लगा तो वो मुझे नहीं मिले। मैंने ऊपर देखा तो पाया कि महाराज ने आसन पर दोनों पाँव मोड़ लिए थे। मुझे देख रहे थे और ऐसा लगा जैसे आगे बढ़ने का इशारा दे रहे हो। अगली बार भी कुछ ऐसा ही हुआ। जब तीसरी बार भी यही हुआ तो लाइन में आते वक्त मैंने गुरूजी से मन ही मन प्रार्थना करते हुए वायदा किया कि अगर मुझे कुछ देर के लिए भी उनके चरण दबाने की इजाज़त मिलेगी तो मैं अनुशासित रहूँगा। मैंने गुरूजी से कहा कि इसके (चरण सेवा के) बिना मैं जिंदा नहीं रह सकता लेकिन अब मैं लालच नहीं करूंगा। महाराज अपने आसन पर पालथी लगा कर बैठे थे। जब मेरी माथा टेकने की बारी आई तो उन्होंने एक चरण नीचे जमीन पर रख दिया ताकि मैं कुछ क्षण के लिए उन्हें पकड़ सकूँ। यह अविश्वसनीय था। उसके बाद, जब भी कभी मुझे मौका मिला, मैं कुछ समय के लिए ही उनके चरण दबाता।

मेरे हाथ हमेशा उनकी ख़ुशबू से सुगंधित होकर ही वापिस आते। महाराज के साथ संगत की बातचीत ऐसे ही होती है और वो इसी तरह से उनकी बातें सुनते हैं। वो मुस्कुराएँगें और आप को अपनी श्रद्धा और भक्ति व्यक्त भी करने देंगे।

इसी तरह, जब हमें हलवा-प्रसाद मिलता, गुरूजी हमारे हाथ से चार या पांच इंच ऊपर से ही प्रसाद देते थे। उनके हाथ, सिर्फ कुछ अवसरों को छोड़कर, कभी भी संगत के हाथों को नहीं छूते थे। मैं दिल से चाहता था कि कभी मेरे हाथ से उनका हाथ छू जाए। एक अवसर पर मन ही मन ये प्रार्थना करते हुए की आज गुरूजी प्रसाद ऊपर से न देकर मेरे हाथ में रख दें, मैंने अपने दोनों हाथ आगे कर दिए। इच्छा पूरी कर दी गई उन्होंने न केवल प्रसाद मेरे हाथ में दिया बल्कि साथ ही साथ अपने हाथ से ऊपर की तरफ से धीरे से मेरे हाथ को नीचे की ओर दबाया भी।

यह बहुत ही अद्‌भुत था कि मेरी प्रार्थना स्वीकार हुई थी। साफ है, महाराज और मेरे बीच एक खूबसूरत मगर सादगी से भरा दो तरफ़ा संबंध था, और आज भी है। समय के साथ, यह 'और' का लालच काफी हद तक चला गया। मैं, मुझे मिले आशीर्वादों और अपने और गुरूजी के इस संबंध से काफी संतुष्ट हूँ। जो भी मिला वो अभूतपूर्व था और हमेशा अपने साथ एक शानदार अनुभव लाया।

सेवा करने की इच्छा एक सच्ची संगत कभी भी नहीं छोड़ती। सेवा से अक्सर तात्पर्य होता है – गुरूजी से संबंधित कुछ भी करने का मौका। वो चाहे फिर मौखिक हो, शारीरिक हो, भावनात्मक हो मानसिक हो, या किसी भी अन्य तरीके से हो, सेवा ही है। महाराज की महिमा के लिए जो कुछ भी किया जाए वो सेवा है। लेकिन सेवा के इन रूपों को समझने की क्षमता वक्त के साथ ही आती है। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि मैं भी सेवा कर पाऊँ। मैं इसके अवसर भी ढूंढता रहता था। बड़े मंदिर में दर्शन के दौरान एक बार जब मैंने एक वरिष्ठ सेवक को सब्जियाँ धोते देखा तो इस इच्छा को हवा मिल गई।

मैंने उन सेवादार अंकल से विनती की कि मुझे भी मदद करने दें पर जवाब में मुझे स्पष्ट 'ना' ही सुनने को मिला। उन्होंने कहा कि जब तक गुरूजी का हुक्म नहीं होगा मैं सेवा नहीं कर सकता। उन्होंने जो कहा बिलकुल सही था पर मैं उदास हो गया। कोने में जाकर रोने लगा। मैंने महाराज से विनती की मैं उनका बच्चा हूँ और क्या मैं सब्जी भी नहीं धो सकता? क्या यह इतनी बड़ी बात है कि मुझे इसकी इजाजत नहीं? दिन तो गुजर गया, पर यह विनती मेरे दिल में रह गई।

अगर आपके पास भक्ति है, गुरूजी आपकी सुनते हैं। महाराज के जन्मदिन के समारोह के दौरान मेरी इस प्रार्थना का जवाब मिला। मैं अपनी पत्नी के साथ बड़े मंदिर थोड़ा जल्दी पहुँच गया। मैं उसको मुख्य हाल में छोड़कर, रसोईघर के बाहर वाले बरामदे में चला गया, सेवा करने का कोई मौका ढूंढते हुए। जाहिर तौर पर, उस वक्त उस जगह पर केवल मैं ही मौजूद था। एक खाना पकाने वाले रसोइए या शायद उनकी मदद करने वाले ने मुझे देखा। उसके हाथ में एक काम चलाऊ चाकू था जिसपर एक तरफ कपड़ा लिपटा हुआ था ताकि वो एक हत्थे की तरह काम कर सके। उसने मुझे अंदर आने को कहा और काटने के लिए रखे टमाटरों के ढेर की ओर इशारा किया। उसने मुझे चाकू दिया और कहा कि यह टमाटर सलाद के लिए काटे जाने हैं और मुझे उन्हें जल्दी जल्दी काटने का एक तरह से हुक्म दिया।

मैं उस सीधे–सीधे हुक्म की तरह कही गई बात सुनकर एकदम हक्का–बक्का रह गया। कहाँ तो मुझे, कुछ समय पहले, यहाँ सब्जियाँ धोने की आज्ञा नहीं मिली थी और कहाँ आज मुझे इतने सारे टमाटर काटने को कहा गया। वक्त बर्बाद किए बिना, मैं काम पर लग गया। काफी देर टमाटर काटता रहा और सच कहूँ हाथ दुखने लगे थे। जब मेरी पत्नी लंगर के लिए बाहर आईं, मैं तब भी टमाटर काट रहा था। उसने मुझे बताया कि जब वो गुरूजी के सामने से गुज़री तो गुरूजी ने उसे एक बड़ी सी मुस्कान दी और वो हैरान थी कि ऐसा क्यूँ हुआ? मैंने कहा कि आज गुरूजी ने मुझसे ढेर सारी सब्जी कटवाई है। मैं अब कभी भी 'सेवा' को लेकर शिकायत नहीं करूँगा।

यह वो पहली सेवा थी जो मुझे बड़े मंदिर में सही रूप में सम्मान की तरह मिली। इसके बाद जो सेवा मुझे मिली वो थी बड़े मंदिर में लंगर के दौरान संगत को सब्जियाँ देने की। ऐसा हुआ कि जब मैंने लंगर–सेवा की व्यवस्था करने वाले अंकल से बात की तो उन्होंने पूछा कि मैं गुरूजी के पास कब से आ रहा हूँ। जब मैंने उत्तर में कहा दो साल से, तो उन्होंने मुझे संगत को सब्जियां देने की आज्ञा दे दी। उस दिन से यह सेवा एक नियमित क्रिया बन गई। उसी वक्त से मैं खुद को एक 'सेवक' के रूप में देख पाया।

मेरी भागीदारी इन कामों में धीरे–धीरे बढ़ती गई, लंगर बांटने से लेकर व्यवस्था के सुचारु नियंत्रण तक। गुरूजी ने मुझे चुना और सेवा के लिए तैयार किया। सेवा करने की अपनी एक अलग सी खुशी थी। बड़े मंदिर में होने वाले एक बड़े समारोह से ठीक पहले गुरूजी ने हम में से करीब आठ सेवादारों को बड़े मंदिर जाकर सफाई करने को कहा। हमने एक कोने से दूसरे कोने तक पूरा मंदिर साफ कर दिया। शाम को हम जैसे ही घर जाने के लिए तैयार हुए, हमें गुरूजी का रात में मंदिर में ही रुकने का आदेश मिला। हम सब वहीं रुके और रात में सत्संग किए, अपने–अपने अनुभव सुनाए और थोड़ा सा सोए भी। अगली सुबह, हमें पता चला जल्दी ही गुरूजी मंदिर आएंगे। मुझे लगा कि जो काम हमने किया है वो उसकी जाँच करेंगे। मुझे थोड़ी–सी घबराहट भी हुई।

गुरूजी सुबह के लगभग 11 बजे मंदिर आए। उन्होंने स्पोर्ट शूज, सफेद रंग की पतलून और आधी–बाँह की टी–शर्ट पहनी थी। महाराज हम सब के लिए परांठे का प्रसाद भी लाए थे। हमारी सेवा से गुरूजी खुश दिख रहे थे और इस बात ने हमारा दिन बना दिया। फिर गुरूजी ने मुख्य दरबार हॉल में रखी चीजें उठाकर हम सेवादारों में बाँटना शुरू कर दिया। एक पीतल का

फूलदान मुझे पसंद आ गया और मन ही मन मैंने गुरूजी से कहा कि मुझे तो वो फूलदान ही चाहिए और कुछ नहीं। गुरूजी मुझे कुछ और न दें इस से बचने के लिए मैं बाहर चला आया और रसोईघर के पास खड़ा हो गया।

मैंने देखा बावा अंकल, वो ही पीतल का फूलदान अपने हाथ में पकड़े, मेरी तरफ चल कर आ रहे हैं। उन्होंने कहा कि यह फूलदान गुरूजी ने मेरे लिए दिया है। ऐसा ही होता है जब आपके पास एक इतना प्यार करने वाले गुरु हो जिन्होंने आपको अपनी शरण में ले रखा हो।

सन् 2004 के दूसरी छमाही में गुरूजी ने जनरल कपूर अंकल को 'क्लेयर फार्म' पर सत्संग आयोजित करने को कहा। जो केवल सैन्य अधिकारियों अर्थात फौजियों के लिए खास आयोजित होगा। गुरूजी ने कहा कि अगर बाकी किसी को बुलाना होगा तो उन्हें वह खुद ही निमंत्रित करेंगे। दिसम्बर 26, 2004 की तारीख तय की गई। जनरल कपूर अंकल ने एक टीम तैयार की जिसमें विजय अंकल, विंग कमांडर अनिल अरोरा अंकल, कमांडर विमल नागपाल अंकल, मैं और कुछ अन्य अनुयायी भी थे। जनरल कपूर अंकल सही मायनों में हर तरह से हमारे लीडर थे और बड़े सराहनीय तरीके से उन्होंने मार्ग-दर्शन किया। पूरा का पूरा सत्संग एक अद्‌भुत अनुभव रहा।

उस सत्संग के दौरान एक पल ऐसा था जो आज भी विशेष रूप से स्मृति-पटल पर जीवित है। यह वो लम्हा है– जब जनरल कपूर अंकल ने गुरूजी से हमारा परिचय कराते हुए उनसे यह कहा कि हम गुरूजी की फौज हैं और हम उनके हर आदेश का पालन पूरी निष्ठा और पूर्णता से करेंगे। गुरूजी मुस्कुराये, हमारी ओर देखा और सहमति में सर हिलाया। मानो हमारा तो दिन ही बन गया।

यह वो ही दिन था जब इंडोनेशिया और थाइलैंड समेत बहुत से पूर्वी राष्ट्रों के तटों पर सुनामी का वार हुआ था। संगत में मौजूद बहुत लोगों ने, सत्संग में आने के कारण, इन देशों में छुट्टियों के लिए जाने का कार्यक्रम रद्द किया था। यह साफ था कि यह तारीख महाराज ने अपने अनुयाइयों को बचाने के लिए ही चुनी थी।

गुरूजी के चरण कमलों ने गुड़गाँव को आशीर्वाद दिया

सन् 2006 में एक ऐतिहासिक पल हमारा इंतज़ार कर रहा था।

यह सन् 2005 के आखिरी महीनों की बात है जब मेरे मन में एक तीव्र इच्छा हुई कि गुरूजी महाराज से गुड़गांव आने और वहाँ की संगत को आशीर्वाद देने के लिए विनती की जाए। उनसे सीधे-सीधे खुलकर विनती करने की हिम्मत तो मुझ में नहीं थीं। इसलिए मैंने सिंगला अंकल से बात की उन्होंने मुझे बताया कि गुरूजी संगत के घर आने का निमंत्रण स्वीकार करते थे और अगर मैं उन्हें आमंत्रित करूँ तो हो सकता है वो आ जाएँ। मैंने सोचा कि गुरूजी 'जलवायु टावर्स' जहां मैं रहता था वहाँ आ सकते हैं। वहाँ पर एक सामाजिक समारोह के लिए हाल था जहाँ हम गुरूजी का स्वागत कर सकते थे। सिंगला अंकल ने मुझे गुरूजी से विनती करने की सलाह दी। मैं काफी ज्यादा घबराया हुआ था। कोई भी गड़बड़ किए बिना विनती करने के लिए मैंने अपने संवादों का बहुत बार पूर्वाभ्यास भी किया। आखिरकार, साहस जुटा कर, मैं महाराज के पास गया और केवल एक ही वाक्य बोल पाया "गुरूजी, कृपया गुड़गाँव में चरण डालो।" उन्होंने हवा में अपना हाथ हिलाकर मना करते हुए लगभग मुझे बर्खास्त ही कर दिया। मैं बहुत निराश हो गया। सिंगला अंकल के पास वापिस जाने पर उन्होंने मुझे कुछ दिनों के बाद फिर से विनती करने को कहा। मैंने वैसा ही किया लेकिन महाराज ने मेरी विनती को बिलकुल ही नज़र-अंदाज कर दिया। पर यह पहले से बेहतर ही था क्योंकि इस बार मुझे भगाया नहीं गया था।

कुछ महीनों के और गुजर जाने के बाद, मैंने फिर से विनती करी। इस बार, गुरूजी ने विनती को स्वीकार किया और कहा, "दसाँ गे"– एक वादा कि वो मुझे इस बारे में बताएंगे। बाद में, गुरूजी ने सिंगला अंकल से बात की और इस विषय पर उनकी राय माँगी। सिंगला अंकल ने अपनी सहमति के रूप में प्रतिक्रिया व्यक्त की। तब गुरु जी ने मेरे लिए पूछा।

क्योंकि उस दिन शनिवार नहीं था इसलिए मैं 'एम्पायर एस्टेट' में नहीं था। जब सिंगला अंकल का फोन आया मैं अपनी पत्नी और बेटियों के साथ क्लब में रात का भोजन कर रहा था। मैंने अंकल को बताया कि मैं कहाँ

था और मुझे गुरूजी के पास पहुंचने के लिए 20 मिनट लगने थे। अंकल ने गुरूजी से पूछ कर बताया कि मुझे आने की जरूरत नहीं थी।

अब मेरी जगह गुरूजी ने जनरल कपूर को इस बारे में बता दिया लेकिन आने की कोई तारीख़ नहीं बताई। तत्पश्चात, जैसे 'क्लेयर फार्म' सत्संग के लिए जनरल कपूर अंकल के नेतृत्व में टीम बनी थी, एक बार फिर से वैसे ही टीम एकत्र हुई और सत्संग के आयोजन की तैयारी शुरू हुई। जो तारीख मिली थी वो थी 28 जनवरी 2006। यह एक सार्वजनिक समारोह होने वाला था। आप मेरी खुशी और उत्साह का अंदाजा लगा सकते हैं।

हमने इस समारोह के आयोजन के लिए बहुत सारी जगह देखीं। आखिर में एक वरिष्ठ अनुयायी, मेहता अंकल ने 'हुडा जिमखाना क्लब' के पास 'लाइब्रेरी पार्क' को इस समारोह के लिए चुना। यह दिल्ली-जयपुर हाईवे के बहुत पास था। गुरूजी ने स्थान के लिए मंजूरी दे दी और निर्देश किया कि सत्संग सुबह 11 बजे शुरू होना चाहिए।

गुरूजी ने मुझे संगत में बाँटे जाने के लिए निमंत्रण-पत्र बनाने को कहा। मैं अपने दफ्तर गया A-4 साइज के पीले रंग के कागजों का बंडल लिया और कंप्यूटर की मदद से निमंत्रण-पत्र छाप दिए। कुछ भड़कीला नहीं, एकदम सादगी वाला। फिर मैं महाराज के पास गया उनको निमंत्रण का प्रारूप दिखाया और उनकी मंजूरी मिल गई। निमंत्रण-पत्र दफ्तर में ही छपे और महाराज के निर्देशों के मुताबिक ही बाँटे गए। मुझे लगा कि उन्हें निमंत्रण-पत्र छापने की योजना पसंद आई। बाद में मुझे लगभग एक महीने के बाद होने वाले महा शिवरात्रि के समारोह के लिए फिर से यह सेवा करने को कहा गया।

मैंने फिर से निमंत्रण-पत्र छापे और उन्हें महाराज के पास ले गया। उन्होंने मंजूरी देते हुए निमंत्रण-पत्रों को देखा, फिर से मेरा नाम पूछा और यह भी पूछा कि मैं क्या करता हूँ। मैंने जो 2001 में यह पूछे जाने पर उनसे कहा था वो ही दोहरा दिया कि मैं नौ-सेना का सेवानिवृत्त कमांडर हूँ।

उन्होंने मुझे देखते हुए कहाः-

"तेनू गुड़गांव दी संगत दा कमान्डर बनाया।
संगत नूँ इकट्ठा कर।"

(मैं तुमको गुड़गाँव संगत का कमांडर बनाता हूँ। संगत को इकट्ठा करो)

मैं अत्यधिक भावुक हो गया। ऐसी है गुरूजी महाराज की कृपा। जब बैसाखी के समारोह का वक्त आया, उन्होंने मुझे फिर से वैसे ही निमंत्रण-पत्र छापने को कहा।

याद है कैसे 2005 में महाराज नहीं चाहते थे कि मैं कोई नौकरी करूँ बल्कि वो चाहते थे कि मैं उनकी सेवा में रहूँ। मेरे ज़िद करने पर उन्होंने मुझे नौकरी दे दी और केवल चार साल ही दिए। फिर दयालु गुरूजी ने 2006 में मुझे संगत का कमांडर बना दिया और संगत को जोड़ने की सेवा उम्रभर के लिए देकर मुझे आशीर्वाद दिया। इस प्रक्रिया से उन्होंने मुझे अपनी सेवा में विस्तारित जीवन का आशीर्वाद भी दिया।

चलिए, एक बार फिर से गुरूजी के गुड़गांव आने की बात करते हैं। गुरूजी ने हमें निमंत्रण-पत्रों के साथ गुड़गाँव की अलग-अलग कई जगहों पर भेजा। कभी-कभी वो अंजान लोग जिनके दरवाज़े पर हम निमंत्रण पत्र के साथ पहुँच जाते थे, हमें बड़ी विस्मय भरी नजरों से देखते थे। हम हर तरह की जगहों पर गए पर उन लोगों में से कोई भी ऐसा नहीं लगा जो समारोह में आएगा। हम अपनी सेवा पूर्ण करने पर ध्यान केन्द्रित रखते और निमंत्रण पत्र देकर आगे बढ़ जाते।

सत्संग का ऐसा कोई भी पहलू नहीं था जो महाराज ने तय न किया हो या सीधे-सीधे नियंत्रित न किया हो। गुरूजी ने हमसे कहा कि यह सत्संग केवल गुड़गांव में रहने वालों के लिए ही आयोजित किया जा रहा है, कोई भी दिल्ली से नहीं आएगा। गुरूजी केवल गुड़गाँव में रहने वाली संगत को ही खासतौर पर आशीर्वाद देने वाले थे। गुड़गांव के बाहर की संगत को गुरूजी खुद बुलाएंगे। गुरूजी ने हमें सत्संग में आने वाली संगत की संख्या पहले से ही बता दी और उसी संख्या के हिसाब से तैयारी करने को कहा। लंगर में क्या बनेगा वो भी गुरूजी ने ही बताया-तंदूरी रोटी, लंगर वाली दाल, आलू-बड़ी, चटनी और गाजर का हलवा।

गुरूजी महाराज की आज्ञा हमें कर्नल जोशी अंकल के माध्यम से मिलती थी। उन्होंने हमें समझाया कि गुरूजी के लिए क्या परोसना है— इसमें नमकीन काजू, बादाम, खुबानी, नारियल पानी और मौसमी का जूस शामिल थे। मैं इस विचार से बहुत ही उत्साहित था कि यह महाराज के लिए मेरी सेवा होगी। मैंने महाराज से इस सेवा के लिए प्रार्थना की थी और ऐसा ही हो रहा था। जोशी अंकल ने सीधे मुझ से बात की और मुझे इन सब चीजों का इंतज़ाम करने को कहा।

यह आसान था। हमने सब सामान खरीद लिया और हम तैयार थे। बस मौसमी के जूस को छोड़कर। सत्संग से एक दिन पहले, हम एक बिजली से चलने वाले जूसर को खरीदने गए। हम जूसर ढूंढ रहे थे पर पूरे गुड़गाँव में एक भी जूसर नहीं मिला। फिर हमने तय किया कि हाथ से चलने वाली जूस निकालने की मशीन ही ले लेते हैं परंतु वो भी नहीं मिली। इतनी सारी दुकानें और किसी के भी पास एक साधारण जूसर नहीं था। देर शाम तक ढूंढते-ढूंढते, हम पूरी तरह थक गए। उस वक्त, कर्नल जोशी का फोन आया मुझे यह बताने के लिए कि जूस हाथ से निकला हुआ ही होना चाहिए। उन्होंने बताया कि गुरूजी को जूसर से निकला जूस पसंद नहीं है। अब बाज़ार से सारे जूसरों का एकदम गायब होना, कोई हैरानी की बात नहीं लग रही थी। मैंने उन्हें समय पर बता देने के लिए धन्यवाद दिया।

मेरी पत्नी ने तय किया कि वो खुद मौसमी को हाथ से निचोड़कर जूस निकालेंगी। एक लीटर जूस निकालना था वो भी हाथ से निचोड़कर। मेरी पत्नी के लिए यह आसान नहीं था, उसकी कोहनी, कलाई और बाँह में बहुत दर्द होने लगा। उसने मन ही मन, गुरूजी से प्रार्थना की "गुरूजी बहुत मेहनत लगी है कृपया सारा पी लेना। जूस को एक किलो बर्फ के साथ फ्रीजर में रखा गया। इसका कारण था गुरूजी को जूस का ना केवल बहुत ठंडा होना पसंद था बल्कि यह लगभग जमने जैसा ठंडा होना चाहिए था। इस पर और बात हम बाद में करेंगे।

गुरूजी से हमको आरती कैसे करनी है इस बात को लेकर विस्तृत निर्देश मिले थे। आरती का दिया, मदान अंकल के घर से आएगा, लेकिन आरती की तैयारी मेरी पत्नी, कमांडर आंटी करेंगी। यह तय करने के लिए कि आरती कौन करेगा, हमने लॉटरी सिस्टम का उपयोग किया। हमने सबसे कहा कि जो कोई भी गुरूजी की आरती करना चाहता है, अपना नाम एक पर्ची पर लिख कर बक्से में डाल दें। एक छोटे बच्चे को फिर नौ पर्चियाँ निकालने को कहा। 'क्लेयर फार्म' के समारोह में मेरी पत्नी आरती करने का मौका नहीं पा सकी थी। वो इस बार इस अवसर को नहीं खोना चाहती थी, पर उसका नाम नौ पर्चियों में भी नहीं आया। मैं उसकी निराशा को महसूस कर सकता था पर उसको कोई विशेषाधिकार नहीं दे सकता था। अपने ही तरीके से उसने मन ही मन चुपचाप महाराज से शिकायत की कि यह ठीक नहीं है।

सत्संग के दिन से बहुत पहले ही एक बाधा आई। जनरल कपूर अंकल को गंभीर रूप से निमोनिया होने के कारण अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। ऐसा होने के कारण समारोह की सारी जिम्मेदारी मुझ पर आ गई और हम सब साथ ही साथ जनरल कपूर की सेहत के लिए भी चिंतित थे। लेकिन गुरूजी ने हमें हर मुश्किल परिस्थिति से निकाल लिया।

उदाहरण के लिए जब हम सब समारोह-आयोजन के लिए चुनी जगह का मैदान देखने गए थे तो हम सब ने जूते पहने हुए थे और हम में से किसी को भी यह पता नहीं था कि वो जगह कांटों से भरी हुई थी। जोड़ा-घर, और सत्संग स्थल में लगभग 100 मीटर का अंतर था। संगत को जूते जमा करके यह दूरी पैदल चल कर पूरी करनी थी'। संगत कांटों से भरी जमीन पर कैसे चल पाती? समारोह से एक दिन पहले, एक अनुयायी ने सलाह दी कि संगत के अंदर आने से लेकर संगत के कालीन से ढके बैठने के स्थान तक हम एक लाल कालीन बिछा दे तो बहुत अच्छा लगेगा। हमने ऐसा किया और संगत कांटो पर नंगे पैर चलने से बच गयी। हमें बिना पता चलाये, गुरूजी ने हमें हर आने वाली बाधा से बचाने का प्रबंध कर रखा था। हम तो केवल 'सेवा' की एक प्रक्रिया से गुज़र रहे थे।

संगत के बैठने की जगह और लंगर हॉल के बीच लगभग एक मीटर का फासला बिना ढके रह गया था। सत्संग वाले दिन जब संगत, बैठने के स्थान से लंगर हाल की तरफ जा रही थी, उस वक्त हमें पता चला कि वहाँ कांटे थे। हमने जल्दी से उस हिस्से को भी कालीन से ढक दिया ताकि संगत दोनों जगह के बीच नंगे पाँव चल सके।

महाराज के आने का समय सुबह 11 बजे का था। हम सब वहाँ पर वक्त पर पहुँच गए थे लेकिन जैसे ही गुरूजी के आने का समय पास आया तो चारों ओर देखकर हमें एहसास हुआ कि अनुयायी बहुत की कम संख्या में आए हुए थे। हम बहुत घबरा गए कि जल्द ही गुरूजी महाराज वहाँ पहुँचने वाले हैं और अपने किए गए प्रयत्नों को दिखाने के नाम पर हमारे पास कुछ नहीं था। हमने कर्नल जोशी से विनती की कि वह 'एम्पायर एस्टेट' से महाराज के निकलने के वक़्त को कुछ देर के लिए टाल दें। उन्होंने मुझे बताया कि गुरूजी तो पहले ही निकल चुके हैं। लेकिन यों कहिए गुरूजी को खबर मिल गई और उन्होंने सत्संग स्थल पहुँचने में कुछ और वक्त लगाया– जबकि सड़क पर कोई खास ट्रैफिक नहीं था। जब गुरूजी पहुंचे तो करीब दो सौ लोग मौजूद थे।

हमने महाराज का स्वागत किया, हम सब इतने खुश थे कि यह खुशी शब्दों से अभिव्यक्त नहीं हो सकती। जनरल कपूर ने साधारण अभिनंदन का नेतृत्व किया। सत्संग के लिए, डाक्टरी सलाह के विरुद्ध, वो अस्पताल के आईसीयू के बिस्तर से उठ कर आ गए थे। जैसे ही गुरूजी अपने आसन पर विराजमान हुए, संगत के आने का तांता ही लग गया। अधिकांश अनुयायियों को हम नहीं पहचानते थे। मैं कुछ सालों से गुड़गांव में हर महीने होने वाले सत्संग आयोजित कर रहा था और 'एम्पायर एस्टेट' भी जाता था लेकिन फिर भी मैंने गुड़गाँव के इन अधिकांश अनुयायियों को नहीं देखा था। हमारे लिए चाहे अंजान थे, पर वो गुरूजी की संगत थे और गुरूजी ने उन्हें अपने ही तरीके से आमंत्रित किया था। पूरा का पूरा पंडाल तुरंत ही भर गया

गुरूजी की कृपा से ही सत्संग चल रहा था, जब हमें अचानक एहसास हुआ कि गर्मी हो रही है, महीना जनवरी का था पर सूरज पूरी तरह से चमक रहा था। हम घबराहट में यहाँ-वहाँ दौड़ रहे थे कि क्या करें क्योंकि हम यह जानते थे कि बाहर खुले में गुरूजी को अवश्य गर्मी लग रही होगी। खुशकिस्मती से विमल नागपाल अंकल ने जल्द ही एक पंखे का इंतजाम कर लिया।

अगला झटका तब लगा जब कर्नल जोशी अंकल ने उस जगह के बारे में पूछा जहाँ गुरूजी एकांत में बैठकर लंगर करने वाले थे। मेरी धड़कनें थम गईं क्योंकि हमने ऐसी किसी जगह की व्यवस्था ही नहीं की थी। मैंने कहा कि हमसे भूल हो गई। हमें किसी ने कुछ कहा नहीं था पर हमें खुद यह सोचना चाहिए था। कर्नल जोशी अंकल गुरूजी के पास गए और उन्हें इस बारे में बताया। जरा सोचिए, महाराज ने क्या किया। उन्होंने वहीं खुले में, अपनी संगत के सामने लंगर खाने का निर्णय लिया। वास्तव में उन्होंने अपने आसन पर बैठे-बैठे ही लंगर खाया। साधारणतः वो मुश्किल से ही कुछ खाते थे मगर उस दिन, मुझे आज भी याद है, महाराज ने छोटी प्लेट पकड़ी थी और गाज़र के हलवे तक पूरा लंगर उन्होंने खाया। वो इतने दयालु और विनम्र हैं।

जो कुछ भी उन्हें प्यार के साथ परोसा गया उन्होंने स्वीकार किया। वो क्या है, कितना है या किस तरह परोसा गया है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ा।

आरती की बात करें तो जिन को गुरूजी की आरती करनी थी वो महाराज के बाईं तरफ मंच के पास लाइन में खड़े थे। कुछ महिला अनुयायी, जिनमें मेरी पत्नी भी थी, थोड़ी दूरी से देख रही थीं। उनके नाम लाटरी में

नहीं निकले थे। जितनी भी महिलाएँ मंच के ऊपर थीं उन सब ने अपनी-अपनी बारी की आरती जल्द ही खत्म कर ली और गुरूजी ने दूर खड़ी महिला अनुयायियों को इशारे से बुलाकर आरती करने को कहा। कमांडर आंटी और कुछ अन्य महिलाएँ, जिन्होंने लाटरी में मौका खो दिया था, मंच पर आ गई। उन सब ने आभार के साथ अपने-अपने प्यार के दियों के साथ महाराज की आरती की। उन सब की प्रार्थनाओं का जवाब मिल गया था। हमेशा की तरह, गुरूजी ने उन सब की हार्दिक भावनाओं को स्वीकार कर लिया था जो उनसे प्यार करते थे।

ऐसा ही कुछ मौसमी के जूस के साथ भी हुआ। मेरी पत्नी, गुरूजी के जूस पीने तक उसे संभाल कर रखे थी। आमतौर पर महाराज एक गिलास से ज़्यादा नहीं लेते थे उस दिन उन्होंने वो पूरा जूस पी लिया। सर्वव्यापी गुरूजी मेरी पत्नी की दिल से की गयी अरदास जानते थे। उनका प्यार ऐसा है कि गुरूजी 'ना' कह ही नहीं सकते थे। वो मेरी पत्नी का दिल नहीं तोड़ने वाले थे। उन्होंने लगभग सारा जूस पी लिया, बस आखिरी गिलास में थोड़ा बचाकर जनरल कपूर अंकल को दे दिया। जैसी प्रार्थना कमांडर आंटी ने की थी, जूस आखिरी बूंद तक खत्म कर दिया गया। वो फ्लास्क जिसमें हमने जूस रखा था, उसमें आज भी उस खुशबू का संकेत मौजूद है जो सन् 2006 में थी। असल में, जब हम गुड़गाँव का सालाना सत्संग आयोजित करते हैं तो उस बेहद अद्भुत अवसर के सम्मान में हम सब खुद को यह याद दिलाने के लिए कि हम सब कितने भाग्यशाली रहे हैं, उस फ्लास्क से सेवादारों को कम से कम एक बार चाय प्रसाद जरूर परोसते हैं।

आप फ्लास्क में कुछ भी डालें कोई फर्क नहीं पड़ता, उसका वो मूल-स्वाद हमेशा ज्यों का त्यों रहता है।

सत्संग के दिन, गुरूजी बहुत खुश थे। उन्होंने जनरल कपूर से कहा कि उन्होंने गुड़गांव और गुड़गाँव की संगत को आशीर्वाद दिया है। अंकल ने गुरूजी की बात सुनकर सहमति में अपना सर हिलाया पर गुरूजी ने उनसे कहा कि वो ये बात सबको सार्वजनिक तौर पर बताएँ। जनरल कपूर अंकल ने माइक की सहायता से घोषणा करते हुए गुरूजी का आशीर्वाद, उनकी आशीष उनकी प्यारी संगत तक पहुंचाईः–

गुरूजी ने, उन सब को जो उन्हें देख सकते हैं और जो उन्हें नहीं देख सकते हैं, उन सब को जो यहाँ मौजूद हैं और जो यहाँ मौजूद नहीं हैं, हर एक को अपना आशीर्वाद दे दिया है।"

आखिरकार, महाराज के जाने का वक्त आया और हम सब को जनरल कपूर अंकल के नेतृत्व में खड़ा होने का मौका मिला। हम सब ने उनको माथा टेका। वो जैसे ही जाने के लिए उठे मैं उनके पीछे-पीछे चल दिया। आसन से कार तक उनके साथ-साथ मैं नहीं चल पाया क्योंकि मैं बहुत भावुक हो कर रोने लगा था। मैं चाहता ही नहीं था कि गुरूजी वहाँ से जाएँ।

उस भाग्यशाली दिन में मेरे लिए एक और भी भावुक पल था। मैंने अपनी माँ को 1999 में खो दिया था। उस दिन गुड़गाँव में मैंने मेरी माँ जैसी दिखने वाली एक महिला को देखा। मैं उनसे आशीर्वाद लेने के लिए तरस रहा था परंतु मैं सीधा उनके पास नहीं जा सकता था। खुशकिस्मती से, एक अन्य बुजुर्ग महिला अनुयायी आईं, जो संगत से थी और जिन्हें मैं अच्छी तरह से जानता था, और उन महिला के साथ बैठ गईं। अब मुझे बहाना मिल गया। जैसे ही मैं बुजुर्ग महिला संगत के पांव छूने के लिए झुका, मेरी माँ के जैसे दिखने वाली महिला ने अपने-आप बिना कुछ कहे अपने दोनों हाथ मेरे सर पर रख दिए। और मैंने चुपचाप दूसरे हाथ से उनके पाँव छुए, उठा और चला गया। मेरा विश्वास है कि गुरूजी ने बड़ी ही सादगी से बिना किसी को कुछ भी ख़बर हुए मुझे मेरी माँ से मिलवा दिया।

सन् 2008 से, महाराज के इस गुड़गांव दौरे के सम्मान में और गुरूजी की आशीषों के नवीकरण के लिए गुड़गाँव में हर साल सत्संग होता है। हम में से जो इस गुड़गाँव के सालाना सत्संग का 25 दिसम्बर को आयोजन करते हैं, वो गुरूजी की दिव्य सुरक्षा के अनेकों उदाहरण दे सकते हैं। 28 जनवरी 2006 का वो भाग्यशाली दिन वहाँ मौजूद हर एक संगत के स्मृति-पटल पर हमेशा के लिए अंकित है।

वास्तव में एक चिर स्मरणीय दिवस।

"संबंध"

गुरूजी के आशीर्वाद के योग्य बनने की प्रक्रिया को अगले स्तर पर ले जाना मानों एक अलग ही रास्ता तय करना है।

संगत गुरूजी को अपने जीवन के प्रमुख अवसरों पर निमंत्रित करती थी ताकि वो अवसर गुरूजी की दिव्य मौजूदगी से सौभाग्यशाली हो जाएँ और गुरूजी के साथ आई सारी शुभता उनमें समा जाए। जब उनके बच्चों की शादियाँ होतीं तो भगत पहला निमंत्रण महाराज को देते और कुछ अतिरिक्त निमंत्रण-पत्र भी महाराज को देते ताकि गुरूजी अपनी मर्जी से उन्हें संगत में बाँट सकें।

गुरूजी महाराज के हाथों मुझे अपने पहला निमंत्रण मिलने में थोड़ा वक्त लगा। मुझे एक अलग तरह की यात्रा करने का निमंत्रण मिला– यात्रा थी होशियारपुर, पंजाब जाकर एक अनुयायी के घर विवाह-समारोह में शामिल होने की। मैं उत्साहित था। मैंने सोचा कि पहले मैं विवाह में सम्मिलित होऊँगा, फिर जालन्धर मंदिर जाकर, माथा टेकूँगा, रात को वहीं रुक कर अगले दिन दिल्ली लौट आऊँगा।

मैंने जालंधर मंदिर के बारे में सुना था कि महाराज के दरबार में दाखिला पूरा होने के लिए जालंधर के मंदिर में एक बार मत्था टेकना आवश्यक था।

निमंत्रण-पत्र अवश्य ही बहुत सारी संगत को दिए गए थे पर विवाह स्थल पर पहुँचने वाला मैं पहली संगत था। मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ क्योंकि वहाँ उपस्थित लोग मुझे बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे। जैसे ही उन्हें पता चला कि मैं दिल्ली से आया हूँ और मुझे महाराज ने भेजा है, वो सब कहने लगे कि गुरूजी आ गए हैं। मैंने सब तरफ देखा कि क्या महाराज सच में आ गए हैं, पर नहीं, ऐसा नहीं था। वो सब इसी बात से आनंदित थे की गुरूजी ने अपनी संगत को भेजा था। वो मुझे गले लगा रहे थे और मेरे साथ एकदम शाही मेहमान जैसा व्यवहार कर रहे थे। सब कुछ पहले मेरे लिए परोस रहे थे। मेरा ऐसा शानदार स्वागत हुआ जैसा न पहले कभी हुआ था और न ही बाद में कभी हुआ।

तब मुझे समझ में आया कि मैं गुरूजी की संगत का हिस्सा हूँ और उस समारोह में मैं अपने गुरु का प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ। दिल्ली से आयी अकेली संगत होने के कारण वहां मेरा उत्तरदायित्व और भी बढ़ गया था।

कुछ समय के पश्चात मैंने दिल्ली से आए एक अन्य संगत, शिव अंकल को देखा। वो अपनी बेटी के साथ वहाँ आए थे। हमने अपने-अपने सत्संग सबको सुनाने शुरू किए और गुरूजी की बातों में बाकी सब कुछ भूल गए। शिव अंकल, होशियारपुर से दिन के 2 बजे तक निकलना चाहते थे ताकि बस से लुधियाना जाकर वहाँ से ट्रेन पकड़ कर दिल्ली जा सके।

शिव अंकल सत्संग करने में इतना खो गए कि एक वक्त मुझे लगने लगा कि शायद उनकी ट्रेन छूट जाएगी। मैंने शिव अंकल को याद भी कराया कि उनकी 2 बजे वाली बस छूट सकती है। जवाब में उन्होंने विश्वास से भरी एक बात कही– दिल्ली पहुँचाना उनकी नहीं बल्कि गुरूजी की जिम्मेदारी है। वो गुरूजी ही हैं जो सुनिश्चित करेंगे कि वो ट्रेन पर चढ़ जाएँ। इसलिए वो अपना पूरा सत्संग सुना कर ही जाएंगे। गुरूजी में संगत का इस तरह का इतना विश्वास मैं पहली बार देख रहा था।

शिव-अंकल विवाह स्थल से निकलते समय ही निर्धारित समय से 15 मिनट पीछे थे। मैंने उन्हें सुझाव दिया कि वो मेरे साथ जालन्धर चलें जहाँ मेरा कमरा बुक करवाया हुआ था और अगले दिन हम साथ साथ दिल्ली वापिस जा सकते हैं। उन्होंने यह कहकर कि वो उसी दिन वापिस जाएंगे, मुझे मना कर दिया।

जैसा तय था, मैं जालन्धर गया, मंदिर में मत्था टेका और अगले दिन गुड़गाँव लौट आया।

जब मैं अगली बार शिव-अंकल से मिला तो मैंने उनसे उनकी वापसी की यात्रा के बारे में पूछा। उन्होंने मुझे बताया कि होशियारपुर से लौटते हुए उनकी बस का टायर पंचर हो गया था जिसकी वजह से उनको लुधियाना के लिए और भी देर हो गई।

बस चालक ने दो बार टायर को जाँचा, हल्का-सा दबा कर देखा और टायर को बदले बिना धीरे-धीरे बस चलाकर जाने का फैसला किया। बस वाले ने उन्हें लुधियाना रेलवे स्टेशन से कुछ किलोमीटर दूर ही उतार दिया जिसके फलस्वरूप उन्हें एक ऑटो लेकर स्टेशन जाना पड़ा।

अब तक ट्रेन छुटने के निर्धारित समय से अंकल काफी लेट थे। शिव अंकल ने अपनी बेटी को गोद में उठाया और प्लेटफार्म की तरफ भागे। उन्होंने ट्रेन को दिल्ली की ओर जाते देखा। अचानक ही ट्रेन इस तरह रुकी कि उनकी बोगी ठीक उनके सामने थी। वो अपनी बोगी में चढ़े और बस

मुश्किल से अपनी सीट पर बैठे ही थे कि ट्रेन एक तेज़ झटके के साथ आगे चल पड़ी। ऐसा लग रहा था मानो ट्रेन स्वयं नही रुकी थी, किसी बाहरी ताकत ने इंजन को जबरदस्ती रोका हुआ था और जैसे ही शिव-अंकल अपनी सीट पर बैठे इंजन को छोड़ दिया गया हो। ट्रेन के एक राकेट की तरह चलने से अपनी छाती पर पड़ने वाले दबाव का अहसास शिव अंकल को आज भी याद है।

पूछने पर पता चला कि ट्रेन काफ़ी समय से आउटर सिग्नल पर खड़ी थी। क्या यह केवल एक संयोग था? बिलकुल नहीं। ट्रेन शिव अंकल के बिना जा ही नहीं सकती थी। महाराज उसे बिना उनके भक्त के जाने ही नहीं देते।

जो विश्वास शिव-अंकल ने उस दिन गुरूजी में दिखाया, उससे मुझे एक बड़ी सीख मिली– मुझे एहसास हुआ कि अगर मैं सब कुछ गुरूजी के हाथ में सौंप दूं तो गुरूजी सब कुछ संभाल लेंगे। अगर मैं सौंपूंगा ही नहीं तो वो नहीं संभालेंगे। यह इतनी साधारण-सी बात है। इसलिए विश्वास कीजिए और छोड़ दीजिए।

यह सीख, थोड़े समय के बाद एक बार फिर से दोहराई गई। मेरे पिताजी को प्रोस्टेट के बढ़ जाने की समस्या थी जिसकी वजह से उनको पेशाब करने में दिक्कत होती थी। डाक्टरों को प्रोस्टेट कैंसर होने का शक था। पहली बार मैंने उनसे गुरूजी महाराज के पास चलने की विनती करी। इस से पहले मैंने उन्हें ऐसा कभी भी नहीं कहा था क्योंकि मैं नहीं जानता था कि वो मानेंगे या नहीं। मुझे इस बात का भी डर था कि कहीं वो कुछ बुरा-भला ही न कह दें। मैंने हाथ जोड़कर उनसे विनती करी कि वो मेरे साथ गुरूजी के पास चलें और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करें। मुझे गुरूजी के आशीर्वाद में पूरा भरोसा था।

वो मान गए और मैं उनको अपने साथ गुरूजी के पास ले गया। गुरूजी ने उनसे बात भी की। उन्होंने लंगर खाया। बाद में कुछ और बार जब वो गुरूजी के पास गए तब भी उन्होंने लंगर खाया। गुरूजी ने उनको आशीर्वाद दिया और बिना किसी शक उनकी रिपोर्ट बिलकुल ठीक निकली। कोई कैंसर नहीं था। प्रोस्टेट के बढ़े होने का आपरेशन हुआ और सब ठीक हो गया।

कुछ समय बाद, गाजियाबाद में एक महात्मा आए और मुझे बिना बताए मेरे पिताजी उनसे भी उनका आशीर्वाद लेने के लिए मिलने चले गए। जल्द ही, वो समस्या फिर से लौट आई। उन्होंने जब मुझे इस बारे में बताया तो मैं काफी परेशान हुआ पर मैं मजबूर था। जब पिताजी पहले ही गुरूजी के पास

चले गए थे और उनका आशीर्वाद भी प्राप्त कर लिया था तो फिर कहीं और जाने की ज़रूरत ही कहाँ थी? इस बार उनकी रिपोर्ट में कैंसर निकल आया। मेरा मानना है कि गुरूजी ने कैंसर के बढ़ने का रास्ता ही रोक दिया था, पर गुरूजी को छोड़कर कहीं और जाने से वह रास्ता खुल गया और कैंसर लौट आया। मेरे पिताजी का आपरेशन करना पड़ा जिसके कारण उनको स्वास्थ्य संबंधित अनेक समस्याएँ भी हुई। उन्होंने काफी समय तक इन समस्याओं और तकलीफों का सामना भी किया पर आखिरकार उनका देहांत हो गया। और मैं केवल यह प्रश्न करता रह गया आखिर क्यों?

आप को जिस किसी पर भी विश्वास करना है, अपने आप को केवल उस एक के सुपुर्द कर दो। सब अच्छा ही होगा। यही कारण है कि गुरूजी ने कहा कि दिव्यता के किसी एक रूप में ही विश्वास रखो। लेकिन इस एक का चुनाव बहुत ध्यान से करो क्योंकि आपका यही एक चुनाव तय करेगा कि आप आगे कहाँ जाएंगे। जहाँ आपके गुरु आपको लेकर जाएंगे आप वहाँ ही तो जाएंगे।

इसी बात पर भगवद् गीता में भी जोर दिया गया है। यह भगवान कृष्ण और उनके शिष्य अर्जुन के बीच हुए वार्तालाप की बात है। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं "तुम जिसकी आराधना करोगे उसी को प्राप्त हो जाओगे। जो मेरी आराधना करते हैं वो मेरे पास ही आ जाते हैं। लेकिन जो बहुत सारे देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, वो कहीं नहीं जा पाते।[7]

---

[7] भगवद् गीता – नौवों अध्याय – 22 से 25 छंद

9:22 अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

अर्थात– अगर तुम मेरा सहारा लेते हो तो तुम्हारा ख्याल रखना मेरा कर्तव्य हो जाता है। मैं तुम्हारी सारी जरूरतें पूरी करूँगा और इस बात का भी ख्याल रखूँगा कि जो तुम्हें प्राप्त हुआ है वो सुरक्षित रहे। यह एक करुणा से भरी बात है। हमें न सिर्फ जो हमें चाहिए वो मिलेगा बल्कि जो मिलेगा उसकी सुरक्षा भी होगी।

9:23 येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।

अर्थात– उनका क्या जो बहुत सारे भगवानों की पूजा करते हैं? फल तो उनको भी प्राप्त होगा लेकिन उस फल का एक आरम्भ और एक अंत भी होगा। वो सब अनजाने में परमात्मा की ही पूजा करते हैं फिर वो पूजा चाहे किसी देवी-देवता की सीमित अवधारणाओं के जरिए ही क्यों न हो। वो जानते ही नहीं कि वो असल में किसकी पूजा कर रहे हैं।

9:24 अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।।

आप समझदारी से चुनें। पर एक बार चुन लिया तो फिर आँख बंद कर के विश्वास करें। उसका कोई फायदा नहीं कि आप किसी को चुनने के बाद सोचते रहें कि क्या आपने सही चुनाव किया है या क्या आपको एक दूसरी राय की ज़रूरत है। जो लोग यहाँ वहाँ सब जगह जाते हैं उन्हें कोई सहारा नहीं मिलता। ये वो सीख थी जो मैंने अपने पिताजी के मामले से एक बड़ी ही मुश्किल से गुज़र कर सीखी।

अगले अवसर पर, मुझे पंजाब में हो रहे एक विवाह-समारोह का निमंत्रण मिला। मुझे हमेशा ही निमंत्रण-पत्र मिलने का उत्सुकता से इंतज़ार रहता था। इस बार मैं अकेला नहीं था, हम चार लोग – विंग कमांडर अनिल अरोरा, कमांडर विमल नागपाल, विजय पुष्करना और मैं – साथ में पंजाब गए।

ऐसी यात्रा में ही अधिकांश वक्त सड़क पर ही निकल जाता था। और समारोह के लिए मुश्किल से दो या तीन घंटे का समय ही रहता था। इसलिए रात के 10 बजे निकलने की समय-सीमा तय थी। चूँकि इस गुट में मैं उम्र में सबसे बड़ा था इसलिए निर्धारित समय-सीमा पर मैं ही निगरानी रखता था। इस 10 बजे निकलने की व्यवस्था ने, केवल एक अवसर को छोड़कर, हर अवसर पर सुचारु रूप से काम किया था। इस विषय पर विस्तारपूर्वक बात बाद में करेंगे।

पंजाब के इस दौरे के दौरान हमने तय किया कि हम पहले हलवारा में एयर-फोर्स स्टेशन को संभाल रहे एयर मार्शल अनिल चोपड़ा अंकल (उस वक्त एयर कमोडोर) को मिलने जाएंगे। वो गुरूजी के एक अत्यंत भाग्यशाली अनुयायी थे। गुरूजी की कृपा से चोपड़ा अंकल एक गंभीर स्तर पर पहुँचे हैपेटाइटस रोग से कुछ ही समय में ठीक हो गए थे। बाद में चोपड़ा अंकल

अर्थात्– मैं ही बलिदानों के फल का स्वामी हूँ, इन बलिदानों के रूप में जो कुछ भी अर्पित किया जाता है उसे मैं ही ग्रहण करता हूँ। मैं ही इन बलिदानों के प्रदर्शन को प्रेरित करता हूँ लेकिन लोग यह बात नहीं जानते कि वो ही हूँ।

9:25 यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।

अथार्त– अगर आप इंद्र, वरुण, मित्र आदि देवताओं की पूजा करते हैं तो आप उनके पास जाएंगे। अगर आप पूर्वजों की पितरों की पूजा करते हैं तो आप उनके पास जाएंगे। अगर आप राक्षसों की पूजा करते हो तो राक्षसों के पास जाओगे। जो सच में मेरी पूजा करता हैं– सच में– न कि जैसा मैं दिखता हूँ बल्कि जैसा मैं वास्तव में खुद में मौजूद हूँ। अगर कोई, जैसा में हूँ, वैसा ही मानकर मेरा चिंतन करता है, शाश्वत प्रमुख मानकर, किसी भी नश्वर नाम या आकार से परे, अगर कोई मुझे इस प्रकार पूज सकते है तो वो वास्तव में भाग्यशाली हैं और वो जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

ने गुरूजी से अपनी तत्काल हुई रोग निवृत्ति और पूरी तरह से स्वस्थ हो जाने का कारण भी पूछा था। वहाँ पर ऐसे बहुत से लोग थे जो एक लंबे समय से गुरूजी के पास आ रहे थे पर अब भी उनकी कृपा का इंतज़ार कर रहे थे। गुरूजी ने बड़ी सादगी से जवाब दिया— मैंने जब तुम्हें देखा, तो मुझे तुरंत पता चल गया कि तुम आशीर्वाद प्राप्ति के लिए तैयार हो। इसलिए मैं तुम्हें तुरंत ही आशीर्वाद दे सका।

गुरूजी अपने सारे अनुयायियों से प्यार करते हैं और सब पर समान रूप से अपने आशीर्वाद बरसाते हैं। ये हमारा 'आशीर्वाद प्राप्ति के लिए तैयार होने' का स्तर है जो तय करता है कि हम कितना और कितनी जल्दी उसको ग्रहण कर पाते हैं।

चोपड़ा अंकल के पास गुरूजी ने अपनी अद्भुत खुशबू के जरिए अपनी मौजूदगी से हमें आशीर्वाद दिया।

हलवारा से हमने गुरूजी के जन्म-स्थान डुगरी जाने का सोचा। इसमें एक अड़चन थी। संगत में से कोई भी गुरूजी की पहले से ही दी हुई स्पष्ट अनुमति के बिना डुगरी नहीं जा सकता था और हमारे पास कोई अनुमति नहीं थी। हमने अपने हाथ जोड़े, आँखें बंद करी और कहा "महाराज, हम डुगरी जाना चाहते हैं कृपया हमें आज्ञा दें"।

आज्ञा मांग कर, हम डुगरी की ओर निकल पड़े। यह डुगरी की हमारी पहली यात्रा थी इसलिए हम वहाँ किसी को भी नहीं जानते थे। फिर भी, हमारे पहुंचने पर, अश्विनी अंकल ने हमारा स्वागत किया। वो वहाँ पर महाराज के निर्देश पर ही हमारे स्वागत के लिए चंडीगढ़ से आए थे। उन्हें हमें आस-पास घुमाने के लिए कहा गया था। वास्तव में गुरूजी ने हमारी डुगरी की इस 'योजित' यात्रा के लिए अश्विनी अंकल को एक पूरा कार्यक्रम बना कर दिया था। हमने गुरूजी से केवल एक घंटा पहले प्रार्थना की थी पर गुरूजी ने अश्विनी अंकल को ये सारे निर्देश पहले से ही दे दिए थे। तो ये डुगरी जाने का विचार हमारे दिमाग में किसने डाला? इस में कोई शक ही नहीं, खुद महाराज ने।

अश्विनी अंकल चंडीगढ़ से डुगरी आए थे और हमने गुरूजी की पवित्र जन्मभूमि पर उनकी कार्यक्रम सूची का अनुसरण किया। डुगरी-मंदिर निर्माणाधीन था। हम गाँव के बड़े-बुजुगों से मिले और महाराज के बचपन के बारे में बहुत कुछ जाना। हमने वो जगह भी देखी जहाँ महाराज ने तपस्या की थी और वो जगह भी देखी जहाँ वो पैदा हुए थे। पहली बार हमेशा ही

एक खास एहसास होता है। हमने कुछ अनमोल तस्वीरें भी लीं। फिर हम मलेरकोटला गए, लंगर खाया और विवाह समारोह के लिए वापिस चल पड़े।

हम सब साथ में यात्रा पहली बार कर रहे थे। ये बात बहुत महत्वपूर्ण थी कि कार से गुड़गाँव लौटने की आठ घंटों की यात्रा के लिए हम वहाँ से सही समय पर निकल जाएं। सबसे बड़ा होने के कारण मैं इसे अपनी जिम्मेदारी समझता था। मैंने सबको विवाह-स्थल से 10 बजे निकलने का सुझाव दिया लेकिन 10 बजे वहाँ से निकलने के लिए मेरे अलावा कोई और तैयार नहीं था। 10 बजने से कुछ ही मिनट पहले मैं अपनी कार के पास वापिस आ गया और कार के सहारे खड़े होकर मैंने गुरूजी से प्रार्थना करी, "गुरूजी हमको 10 बजे निकल जाना चाहिए ताकि सुबह के 6 बजे तक हम वापिस पहुँच जाए"। मेरी प्रार्थना पूरी भी नहीं हुई थी की एक घोषणा हुई– गुरूजी का हुक्म है कि दिल्ली की संगत 10 बजे तक दिल्ली के लिए प्रस्थान करे। गुरूजी का हुक्म पवित्र था और उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती थी और हम 10 बजे निकल गए। उसके बाद संगत के हर समारोह से हम हमेशा 10 बजे चले जाते थे।

आप क्या सोच रहे हो, महाराज को पता चल जाता है। आप उसके बाद क्या सोचोगे वो यह भी जानते हैं। अब मुझे पूरा यकीन है कि डुगरी जाने का विचार हमारे मन में महाराज ने ही डाला था। वो चाहते थे कि हम वहाँ जाएँ। वापिस आने के बाद मैं शनिवार को महाराज के आगे माथा टेककर खड़ा हुआ तो गुरूजी मुस्कुराए और पूछा **"पिंड गया सी?"** (तुम गाँव गए थे।) मैं आभार में केवल सिर हिलाकर ही हाँ कह पाया। वो पहले से ही सब जानते थे। उन्होंने ही हमारे लिए यह योजना बनाई थी। हम खुद को बहुत भाग्यशाली महसूस कर रहे थे।

गुरूजी महाराज से मिले कुछ आखिरी निमंत्रणों में से एक निमंत्रण जुलाई 2007 का था। महाराज ने हमें अपनी-अपनी पत्नियों को साथ लेकर जाने के लिए खासतौर पर कहा था। उस से पहले हम उस समारोह का हिस्सा बन पाते, महाराज ने महासमाधि ले ली।

पहले के सभी अवसरों पर हम अपनी पत्नियों के बिना ही गए थे। हम सब अभी तक गुरूजी के यूँ अचानक चले जाने के सच से समझौता नहीं कर पाए थे। मैंने खुद से वादा किया कि अगर हमारे प्रस्थान की 10 बजे की समय सीमा का उल्लंघन भी हुआ तो भी मैं चुप ही रहूँगा।

इसमें कोई भी शक की गुंजाइश नहीं, कि गुरूजी अब भी उत्तरदायित्व संभाले थे। मुझे आश्चर्यचकित करते हुए, हमारी मेजबान ने 10 बजने से 10 मिनट पहले ही घोषणा की कि दिल्ली की संगत 10 बजे तक चली जाए। यह बात एकदम चकित करने वाली थी। ये केवल हमारी जिंदगी से जुड़ी महत्वपूर्ण बड़ी–बड़ी बातों का ही प्रश्न नहीं है, गुरूजी बड़े प्यार से हमारी जिंदगी की हर छोटी–छोटी बातों को भी नियंत्रित करते हैं।

मैं हमेशा जिस स्थिर प्रसंग की ओर लौटता रहता हूँ वो यह है कि हम सब गुरूजी के ख्यालों से कभी भी दूर नहीं हैं। वो हमेशा ही हमारे बारे में सोचते रहते है और हमारी जिंदगी को बेहतरीन बनाने के रास्ते बनाते रहते है। **"गुरु जैसा नाही को देव"** (गुरु के समान कोई अन्य देवता नहीं)। हाँ, यह ज़रूर है, उनके आशीर्वाद तभी फलते हैं जब संगत का उनसे संबंध सीधा हो, सिर्फ उनसे हो और केवल उन दोनों के बीच हो। ऐसा होते ही आप गुरूजी के आशीर्वाद के लिए तैयार हो जाते हो।

और आप गुरूजी के अपने बन जाएंगे

"इक तक्या भरोसा तेरे चरणां दा, होर सब्बे ढाईयाँ ढेरियाँ"

मैं केवल आप पर विश्वास करता हूँ, मैंने बाकी सारे सहारे, आधार, विश्वास, सिद्धांत और प्रणालियों को मिटा दिया है। मैं केवल आपकी पूजा करता हूँ।

इस शबद् ने मेरे मस्तिष्क में अपना विशेष स्थान बना लिया और ये पक्का कर दिया कि मैं भी बस एक को चुनूँ– गुरूजी को। आप एक का चुनाव कीजिए और फिर उसी की पूजा कीजिए। जैसा कि गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, जो भगवान और भक्त के बीच हुए वार्तालाप का शुद्धतम रूप है, **'आप वो हो जाते हो जिसकी आप पूजा करते हो'**

यह एक अद्‌भुत धारणा है– अगर हम अच्छी तरह से पूजा करें तो हम भी उसी क्षेत्र में पहुँच जाते हैं जहाँ वो भगवान होते हैं, जिनकी हमने पूजा की थी। इसका अर्थ है कि वो सारे गुण हम में भी आ जाते हैं जो हमारे आराध्य में होते हैं। जब अर्जुन (भक्त) श्रीकृष्ण (आराध्य) का ही विस्तारित रूप बन जाता है और उसका अस्तित्व अपने ही आराध्य में घुल जाता है, तब उन दोनों में कोई फर्क नहीं रह जाता।

मंदिर में चलने वाले कुछ शबदों में अस्थिर चित्त से की हुई पूजा के परिणाम साफ–साफ बताए गए थे। अगर हम बहुत से देवी–देवताओं की पूजा करते हैं तो या तो हम कुछ नहीं रहते या कहीं के नहीं रहते। महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारी निष्ठा के साथ भी समझौता हो जाता है और यह शक के दायरे में आ जाती है। हम वास्तव में किस पर पूर्ण निष्ठा और विश्वास रखते हैं? हम सच में किस से प्यार करते हैं?

एक शबद् समझाता है कि गाय का बछड़ा हमेशा अपनी ही माँ के पास जाता है, जो उसका पालन करती है और सुरक्षा भी करती है। अगर यह छोटा और कमज़ोर बछड़ा अपनी माँ समझ कर किसी और गाय के पास जाता है, तो उसे केवल जोर से एक लात ही पड़ती है। वो पोषण और सुरक्षा से वंचित ही रहता है। उसे अपना प्रबंध अपने आप ही करना पड़ता है। ठीक इसी तरह, अगर हम एक गुरु, हमारे गुरूजी, के साथ टिककर नहीं रहते, तो

हम भी उनकी दी हुई पूर्ण सुरक्षा और आध्यात्मिक मार्गदर्शन से वंचित रह जाते हैं। दिशाहीन होने जैसी भावना हमें सदा उलझा कर ही रखेगी। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, अगर हमें मुम्बई जाना है, तो हमें मुम्बई जाने वाली ट्रेन पर ही चढ़ना होगा। केवल ट्रेन में बैठना काफ़ी नहीं होगा। अगर हम अलग-अलग दिशाओं में जाने वाली अलग-अलग ट्रेनों पर चढ़ते रहेंगे तो हम कहाँ पहुंचेंगे? हमारे साथ कुछ वैसा ही होगा जैसा 'ऐलिस इन वंडर लैंड' की कहानी में ऐलिस के साथ हुआ अर्थात एक ऐसी विचित्र अनजानी जगह में घूमते ही रहेंगे। बिना कहीं भी पहुँचे। गलत चुनाव के काफी बुरे परिणाम और गंभीर जोखिम होते हैं।

हम अपने गुरु का चुनाव कैसे करें? हमें कैसे पता चलेगा कि हमारे लिए सही गुरु कौन हैं? यहाँ पर 'आकर्षण का सिद्धांत' काम आता है। जो गुरु हमारे लिए हैं हम उन्हें आकर्षित करेंगे और हमारे लिए मनोनीत गुरु हमें आकर्षित करेंगे। बहुत हद तक, यह अपने-आप ही, स्वाभाविक तरीके से हो जाता है। अगर हम हमारे मनोनीत गुरु के रास्ते में रुकावट न बनें तो गुरु हमें आसानी से अपना लेंगे। हमें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। हमें इसे बस यों ही रहने देना है, किसी एक विशेष को चुनने का कोई प्रयत्न नहीं करना है। आखिर में, हम अपने आप ही सही गुरु के पास पहुंच जाएंगे।

जितना हम गुरु को तलाश रहे हैं उतनी ही तात्कालिकता से हमारे लिए मनोनीत गुरु भी हमें तलाश रहे हैं। जब तक हम कुछ बहुत मूर्खता पूर्ण नहीं करते, हम अपनी नियति में सुनिश्चित अपने गुरु तक पहुँच ही जायेंगे और यह हमारे साथ होने वाली सबसे बेहतरीन बात है। हमारी नियति ऐसा कर ही देगी। पर हम कुछ भी कैसे न करें? पहले तो ये पक्का तय कर लें कि हम अपना दिमाग नहीं लगायेंगे। जैसा संगत जानती है, गुरूजी कहते हैं, "अपनी अक्ल को अपने जूतों के साथ बाहर ही जोड़ाघर में छोड़ कर आया करो"। बुद्धि, दिव्यता से जुड़ने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। दिव्यता हमारी बुद्धि की सोचने की क्षमता से बहुत ऊपर है। अगर हम लगातार हर पल अपनी बुद्धि का प्रयोग करते रहेंगे तो गुरूजी से जुड़ने में हमें बहुत मुश्किल होगी।

हमारे मस्तिष्क की एक विशेषता है। यह हमें फर्क करना सिखाता है और हमारी अपनी-अपनी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के आधार पर मूल्यांकन करना भी सिखाता है।

वास्तव में, हमारी बुद्धि अपनी खास मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों से, जिन्हें हम

संस्कार कहते हैं, एक पहचान बनाती है और फिर बाहरी दुनिया को उस ही पहचान से देखती और समझती है। बुद्धि का प्रमुख काम तुलना करना है। 'तुलना' हमारी बुद्धि के प्रयोग का ही परिणाम है।

टी.वी. पर एक कपड़े धोने के पाउडर का पुराना विज्ञापन इसी गहरी जड़ों वाली मानसिकता पर आधारित था। उनका प्रचार– वाक्य था– "भला उसकी कमीज मेरी कमीज़ से सफेद कैसे?" इस प्रक्रिया के तहत हमारा मन तुलना करता है और हम अपने कपड़े धोने के पाउडर को बदलना चाहते हैं।

यह जो अपना दिमाग इस्तेमाल करने का रोग है, भक्त के गुरूजी के पास आ जाने पर भी नहीं छूटता। अनुयायियों को आपस में संगत से बातचीत करने की इच्छा होती है ताकि वो अपने-अपने प्राप्त हुए आशीर्वादों की तुलना कर सके। जब उन्हें किसी संगत के द्वारा, एक विशेष आशीष को प्राप्त करने के लिए की हुई प्रक्रिया का पता चलता है, तो तुरंत ही उनका मस्तिष्क भी तर्क करने लगता है और वो उस प्रक्रिया की नकल इस विश्वास के साथ करने लगते हैं कि अगर इस प्रक्रिया ने इसके लिए काम कर दिया है तो मेरे लिए भी जरूर काम करेगी। अनुयायी के दिमाग ने ज़ोर दिया कि वो कुछ पहल करे और उसने एक अन्य अनुयायी के अनुभव के आधार पर गुरूजी से अपने संबंध को परिभाषित करने की गलती कर ली।

यह बात साफ़ है कि उसका ध्यान गुरूजी पर केंद्रित नहीं है, उसका ध्यान तो दूसरों द्वारा अनुसरण की हुई प्रक्रियाओं पर ही केंद्रित है। उसके लिए, हमेशा ही, एक परिणाम देने वाली प्रक्रिया आशीर्वाद प्राप्ति के लिए तैयार होने के अंतहीन इंतजार से बेहतर है और उसे ज्यादा पसंद है। वो आध्यात्मिकता के फव्वारे के स्रोत से मोल-तोल करने लगता है और निःसंदेह अपने ही विश्वास के पाँव काट देता है। उसका दिमाग, खुद को विकसित होने के लिए गुरूजी से अपना संबंध बनाने के बजाए तुलना करता है और अन्य संगत के पद चिन्हों पर चलने को ही कहता है।

मस्तिष्क काम ही कुछ इस तरह करता है। यह तुलना करता है। वो अलग-अलग गुरुओं की भी तुलना करता है और उस गुरु के पास जाना चाहता है जो उसकी सोच के हिसाब से, उसकी इच्छाओं की पूर्ति जल्दी कर देगा, जल्द ही प्रतिक्रिया भी देगा और कुल मिलाकर उसके अहम् के लिए बेहतर होगा। ये ऐसा है जैसे एक स्वास्थ्य संबंधित गंभीर समस्या के दौरान आप डॉक्टर और इलाज की प्रणाली को बदलते रहे। जिसका अंत में परिणाम रोगी के स्वास्थ्य को अत्यधिक हानि पहुंचना ही होगा और उसकी हालत

पहले से भी खराब हो जायेगी।

तुलना का कोई अंत नहीं है। अगर हम सावधान नहीं रहेंगे तो एक अनुयायी के रूप में हम भँवर में गोल-गोल घूमते रह जाएंगे। हमारा मस्तिष्क हमें गुरुओं और रस्मों-रिवाजों में ही भटकाता रहेगा। संभावना है कि ऐसा अनुयायी अंधविश्वासी और भयभीत बन जाए। वो शायद एक संकीर्ण सोच वाला बन जाए या चिल्ला-चिल्ला कर ढिंढोरा पीटने वाला आस्तिक बन जाए लेकिन उसकी बुद्धि उसे कभी भी अपने गुरु में सच्चा विश्वास उत्पन्न नहीं करने देगी।

एक और चीज़ जो भक्त को यहाँ वहाँ जाने को प्रेरित करती है वो है– उसका डर। जो उसके पास नहीं है उसे पाने की इच्छा और जो उसके पास है उसे खो देने का डर। इन दोनों ही बातों में कुछ खास अंतर नहीं है। हर डर, मरने के डर का ही उपांतरण हैं। आप हमेशा के लिए जिन्दा रहना चाहते हैं जबकि आप यह भली-भांति जानते हैं कि इस पूरे संसार में हर कोई अंत में मृत्यु को ही प्राप्त होता है। मृत्यु अस्तित्व का मौलिक सत्य है। हर कोई मरता हैं। सबसे बहादुर, सबसे बड़ा, सबसे ताकतवर, संत, बहुत अच्छे कर्म करने वाला, बुरे कर्म करने वाला, पशु, कीट-पतंगे, पेड़-पौधे, सबको मरना है। जैसा कि बौद्ध-धर्म में लिखित स्वतः सिद्ध सच हैं[8]:–

"संचय का अंत, बाँटना है, बनाने का अंत नष्ट होना है,
मिलने का अंत बिछड़ना हैं, "जन्म का अंत मृत्यु हैं।"

विभिन्न प्रतिक्रियाओं में प्रकट होने वाले डर एक ही हैं। फिर चाहे वो अपनी धन-दौलत को खो देने का डर हो, बीमार पड़ जाने का डर हो, रिश्तों को खोने का डर हो, इज्जत खो देने का डर हो, प्यार को खो देने का डर हो या कोई और डर हो। यही डर हमारी मानसिक बकबक को बहुत बढ़ावा देता है। सरल-भाषा में कहें तो, हम में से अधिकांश को जो कुछ भी हमारे पास है हमें पसंद नहीं है। हमें वो चाहिए जो दूसरों के पास है लेकिन हम, जो हमारे पास है, उसको भी नहीं छोड़ना चाहते। यही इच्छा हमें लगातार प्रेरित करती है और यह ही हमारा सोचने का स्वाभाविक तरीका बन जाता है। हमेशा जी नहीं सकते तो अपनी पहचान को ही अमर बनाना चाहते हैं। इसलिए हम

---

[8] वेक अप टू युअर लाइफः डिस्कवरिंग द बुद्धिस्ट पाथ ऑफ़ अटैन्शन– पन्ना-104, कैन मैक्लायद।

अपने स्वामित्व और पहचान के विस्तार के रास्ते ढूँढना चाहते हैं। जल्दी ही हमारे पास हमारी इच्छाओं द्वारा बनाई गई जरूरतों की लंबी लिस्ट तैयार हो जाती है।

जैसे ही हम किसी गुरु से मिलते हैं, तुरंत हमारा दिमाग अत्यधिक सक्रिय हो जाता है। पहले तो वो गुरु का मूल्यांकन करता है। फिर बाद में अपनी जरूरतों और इच्छाओं की एक लंबी कभी न खत्म होने वाली सूची गुरु के पास जमा करा देता है। समस्या की जड़ यही है। जो भी भक्त मांगे गुरु वो उसे दे सकते है बशर्ते वो उसके लिए फायदेमंद हो। सच तो यह है, जब हम दिव्यता को गुरु के रूप में मिलते हैं तो वो हमसे सिर्फ इतना ही कहते हैं "मुझसे कुछ मांगो मत, मैं जैसा हूँ मुझे स्वीकार कर लो और तुम जैसे हो वैसे ही मैं तुम्हें स्वीकार कर लूंगा"। जैसा गुरूजी महाराज ने कहा "गुरु कोलों मंगो ना, गुरु नूँ मन्नो।" (गुरु से माँगो नहीं, गुरु को मानो)।

लेकिन यह करने से कहना आसान है। अधिकांश लोग गुरूजी के पास भी अपनी समस्याओं का हल ढूंढने ही आते हैं। उनके आने का यह ही प्रमुख कारण है। जब उनसे कहा जाता है कि उन्हें गुरूजी को अपनी समस्याएँ बताने की ज़रूरत नहीं है तो उनके लिए यह विश्वास करना मुश्किल होता है। बहुत सारे लोग तो बस वहाँ से चले ही जाते हैं, उस गुरु की तलाश में जो उनकी समस्याएँ सुने और जैसा वो चाहते है वैसा कर दें।

लेकिन वो लोग भाग्यशाली हैं जो वहाँ तब तक रुकते हैं जब तक वो समझ नहीं जाते कि गुरूजी महाराज – महा शिव, ब्रह्म के साथ – केवल एक होकर रहने की आवश्यकता है, बातचीत करने की नहीं। हमें केवल उनके संपर्क में रहना है शेष सब अपने आप ही हो जाएगा। जो उनके साथ रहकर एकाकार हो जाते हैं, उन से एक आंतरिक संबंध बना लेते हैं, वो उनकी संगत बन जाते हैं, उनके भक्त बन जाते हैं और बाकी सब भीड़ का हिस्सा बनकर रह जाते हैं।

हमारे गुरूजी महाराज की संगत को बहुत ही जल्द यह समझ आ जाता है कि गुरूजी बदले में उनसे कुछ भी नहीं चाहते। वो किसी भी तरह के फायदे की तलाश नहीं कर रहे हैं। यह कोई व्यापार नहीं है। वरना गुरूजी भी उनसे उनकी समस्याएँ पूछ कर, उपाय बताकर, जल्द ही सीधे-सीधे लाभ कमा कर उन्हें उनके रास्तों पर छोड़ सकते हैं। लेकिन गुरूजी उनसे कुछ नहीं मांग रहे हैं। क्योंकि, यही एक अत्यंत महत्वपूर्ण फर्क है– गुरूजी इंसान

के रूप में भगवान हैं। वो इस भौतिक संसार की मोह–माया से परे हैं। सच तो यह है, इस मोह–माया के रचयिता भी गुरूजी ही हैं। गुरूजी को कुछ भी बताने की ज़रूरत नहीं है। वो जानते हैं कि उनकी संगत के लिए क्या अच्छा है और उनके कर्मों के चक्र से प्रभावित हुए बिना उन्हें कब और कैसे देना है। जब वो अपनी संगत को आशीर्वाद के रूप में कुछ देते हैं तो यह संगत की तपस्या या गतिविधियों का परिणाम नहीं होता, यह तो केवल गुरूजी अपनी ही दयालुता और वैभव के कारण देते हैं। उदाहरण के लिए, अगर गुरूजी किसी को एक बेहतर तनख्वाह देने वाली नौकरी दिलाते हैं तो यह आशीर्वाद गुरूजी के द्वारा की गई भक्त के नाम वसीयत के समान है। ये कोई उधार नहीं है, जिसको कर्मों के ऋणों की भांति चुकाना पड़े। इसके बदले में भी कुछ नहीं करना होता। गुरूजी का आशीर्वाद कर्मों के ऋण का पुनर्गठन भी नहीं होता।

अगर, वो कोई बीमारी ठीक कर रहे हैं तो ऐसा नहीं है कि वो बीमारी कुछ सालों के बाद या अगले जन्म में लौट आएगी। अगर वो ठीक करते हैं तो वो उसे हमेशा के लिए ठीक कर देते हैं। ऐसा होने के लिए, अनुयायी को एक साधारण नियम का पालन करना है – गुरूजी को बिना किसी भी शर्त के अपना लिया जाए।

जो आप चाहते हैं उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी धार्मिक प्रक्रिया की जरूरत नहीं है। बस सब गुरूजी पर छोड़ दें और एक साक्षी (गवाह) की तरह केवल देखें कि गुरूजी उनके जीवन के साथ क्या करते हैं।

हमारे गुरूजी ने हमसे यह वादा किया है कि अगर हम अपनी जिंदगी के घोड़ों की लगाम उनके हाथों में दे दें तो वो उसे सीधा ही हाँकेंगे। जब महाभारत की लड़ाई में श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने थे उन्होंने अपने शिष्य की जिंदगी का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया था। हमारे पास भी एक रथ है, हम उस रथ में रहते हैं। हमारा शरीर, इन्द्रियाँ, हमारी समझ, हमारा अहम् और अन्य मनोवैज्ञानिक आवरण मिलकर यह रथ बनाते हैं।[9] इस रथ को सही मार्ग से सही जगह तक ले जाना आवश्यक है। पर यह हमारे बस की बात नहीं है।

---

[9] योगियों के हिसाब से, मनुष्य केवल देह रूपक नहीं है। अपितु पाँच आवरणों या कोषों की परतों से बना है। यह है स्थूल से सूक्ष्म ऊर्जाओं के हिसाब से अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय!

–स्वामी शिवानंदा के लेख से

इसके लिए गुरूजी चाहेंगे कि हम अपने रथ का नियंत्रण उनको सौंप दे।

इसके लिए गुरूजी पर विश्वास करना होगा। और यह कितना मुश्किल हो सकता है? गुरूजी पर इतना विश्वास कि हम अपने जीवन का नियंत्रण उनके हाथ में सौंप सकें। इस विश्वास के लिए क्या चीज़ ज़रूरी है? इसमें क्या कुछ लगेगा कि हम सरलता से गुरूजी से बस यह कह पाएँ, "गुरूजी, यह जिंदगी मेरी नहीं है, यह अब आपकी हुई। आपके मन में जो आए, जैसा आपको ठीक लगे अब आप इसके साथ वैसा ही कीजिए।"

खुशकिस्मती से हमारे गुरूजी आध्यात्मिक दुनिया के सिद्धांतों पर कोई प्रवचन नहीं देते वो तो एक वास्तविक क्रियात्मक गुरु हैं। वो हमें केवल उन भक्तों के अनुभव सुनवाते हैं जिन्होंने सफलतापूर्वक अपनी जिंदगी की बागडोर गुरूजी के हाथों में सौंप दी हैं, या सौंपने की प्रक्रिया में हैं। सिर्फ इस ही उद्देश्य से, गुरूजी ने संगत के अपने अनुभव संगत से साझा करने का एक रिवाज-सा बनाया। हम जितना सुनते हैं उतना ही ज्यादा विश्वास करते हैं; जितना ज्यादा विश्वास करते हैं उतना ही ज्यादा नियंत्रण गुरूजी को सौंप देते हैं। जितना ज्यादा नियंत्रण सौंप देते हैं उतनी ही जल्दी हम आशीर्वाद प्राप्ति के लिए तैयार हो जाते हैं। जितनी जल्दी हम आशीर्वाद-प्राप्ति के लिए तैयार हो जाते हैं उतनी सी जल्दी हमें आशीर्वाद प्राप्त होता है। हमें जितना ज्यादा आशीर्वाद प्राप्त होता है हम उतना ही ज्यादा विश्वास करते हैं। यह अंततः हमें गुरूजी को पूर्णतः नियंत्रण सौंप देने के मार्ग पर ले जाता है। एक संपूर्ण समर्पण की स्थिति। इस स्थिति में हम, आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए तैयार होते हैं। गुरूजी के साथ रहकर एकाकार हो जाते हैं, गुरूजी से कोई भी बात-चीत की जरूरत ही महसूस नहीं होती है। अंत में होता यह है कि एक समर्पित आत्मा गुरूजी के अंदर ही बस जाती है और गुरूजी उस आत्मा के अंदर बस जाते हैं।

याद रखने लायक केवल एक ही पहलू है कि शर्तों के साथ किया गया समर्पण वास्तव में समर्पण है ही नहीं। आंशिक समर्पण भी समर्पण नहीं कहलाता। या तो समर्पण पूर्ण है या फिर समर्पण है ही नहीं। महाभारत में श्रीकृष्ण के द्वारा द्रोपदी की रक्षा किए जाने की घटना से यह साबित होता है।

कहानी को संक्षिप्त में बताता हूँ। पाँच पांडवों की एक पत्नी थी द्रोपदी, जिसे पांडव एक षड्यंत्र में रचित पाँसो के खेल में कौरवों को हार गए थे। सौ

कौरव उनके चचेरे भाई थे। एक कौरव ने द्रोपदी की साड़ी खींचकर उसको वस्त्रहीन करना शुरू किया। द्रोपदी ने भगवान श्रीकृष्ण से उसे बचाने की प्रार्थना की।

श्रीकृष्ण अपनी पत्नी रुक्मणी के साथ यह सारा दृश्य दूर से देख रहे थे। उनकी पत्नी ने उनसे विनती की "आपकी बहन आपको मदद के लिए पुकार रही है, वो वहाँ अकेली है, आप उसकी मदद क्यूँ नहीं कर रहे"? श्रीकृष्ण ने अपनी पत्नी को थोड़ा और ध्यान से सारा दृश्य देखने को कहा और इशारा करके बताया, "द्रोपदी ने अभी तक दोनों हाथों से अपनी साड़ी पकड़ी हुई है। वो मुझे एक अतिरिक्त वैकल्पिक साधन की तरह पुकार रही है। उसने मुझे पूर्ण समर्पण नहीं किया है। उसे अब तक लगता है कि वो संभाल लेगी"। जिस समय साड़ी के आखिरी लिपटे हुए भाग को खींचा गया, द्रोपदी ने साड़ी छोड़, हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण से प्रार्थना करके कहा, "अगर आप चाहते हो, कि आप की बहन वस्त्र-हीन हो जाए और वो शर्मिंदा हो तो आपकी मर्जी, हो जाने दीजिए"। इसी क्षण उसका समर्पण पूर्ण था और उसने पूरा नियंत्रण श्रीकृष्ण के हाथों में सौंप दिया था। इसी क्षण वो आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए तैयार हो गयी थी। उस ही पल, उसकी साड़ी बेहिसाब लम्बी होती चली गई और उसके मान की रक्षा हुई।

हम भी अपने जीवन रूपी रथों पर दोहरा नियंत्रण नहीं रख सकते। शुरुआत में जैसा द्रोपदी ने किया वैसा व्यवहार करके हम यह शिकायत करें कि गुरूजी ने मदद नहीं की तो इसका कोई फायदा नहीं। आप पहले सब छोड़ दीजिए फिर गौर से देखिए।

अब एक अन्य प्रश्न उत्पन्न होता है; हमें कैसे पता चलेगा कि हमने सब छोड़ दिया है? कि हमने पूर्ण समर्पण कर दिया है? कि हम गुरूजी पर पूर्ण विश्वास करने लगे हैं? प्रकृति का एक नियम है– कि हम एक ही समय में दो विपरीत किनारों पर नहीं हो सकते।

इसी प्रकार हम एक ही समय पर मानने वाले और माँगने वाले, दोनों नहीं हो सकते। या तो हम माँग सकते हैं या फिर हम समर्पण कर सकते हैं। यह वो यात्रा है जो शायद मांगने वाला बनकर शुरू हो पर उसका गंतव्य अवश्य ही मानने वाला बनना होना चाहिए।

हमें ना माँगने की कोशिश से शुरुआत करनी चाहिए। हमें कोशिश– करनी चाहिए कि हम अपने माँगने के प्रलोभन को ना जीतने दे। अगर

ज़रूरत हो तो अंदर ही अंदर अपने अहम् से लड़ लेना चाहिए। जो मांगते है वैसे बनने से इनकार कर दें। हम धीरे-धीरे अंततः विश्वास और पूर्ण समर्पण के किनारे की ओर बढ़ जाएंगे। हम आशीर्वाद प्राप्ति के लिए तैयार होने के मार्ग पर कुछ तरक्की कर लेंगे।

गुरूजी को पूर्ण-समर्पण करना, परिस्थितियों को स्वीकार कर लेना, और गुरूजी के वादों पर विश्वास, ये सब मिलकर एक अनुयायी को आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए तैयार करते हैं। पर ये कैसे पता चलेगा?

इस पर मैं अपने विचार बताता हूँ। पहला, अपने आप को इच्छा करने और शिकायत करने का हक ही ना दें। अन्य संगत के सत्संग सुनें। उम्मीद करें कि जैसे उन संगत को आशीर्वाद प्राप्त हुआ है, गुरूजी की कृपा आपके पास भी आ रही है। पर माँगिये नहीं। इस प्रलोभन से बचें। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। आप के पास शायद विश्वास ना हो पर उम्मीद होगी। विपत्तियों का सामना करते हुए भी उम्मीद रखें। वक्त के साथ, गुरूजी आप का ख्याल रखेंगे जैसे वो लाखों करोड़ों का ख्याल रखते हैं। हो सकता है, आप को कुछ मुश्किलों का सामना करना पड़े, जीवन में कुछ उथल-पुथल हो, पर न मांगने से, आप स्वाभाविक तरीके से धीरे-धीरे गुरूजी को नियंत्रण दे देंगे। वक्त के साथ-साथ यह एहसास खुद ही हो जाएगा।

आप को जैसे ही यह एहसास हो जाएगा कि गुरूजी सब जानते हैं तो यह मांगने का मसला हमेशा के लिए सुलझ जाएगा। यह एहसास आप को गुरूजी को स्वीकार करने की स्थिति के थोड़ा और करीब ले जाएगा। और कुछ न माँगना बहुत ही आसान हो जाएगा।

धीरे-धीरे आप तरक्की करेंगे—

> ***'मैं नहीं माँगूँगा' से 'मुझे माँगने की जरूरत नहीं है' तक।***
> ***'मुझे मांगने की ज़रूरत नहीं है' से 'जो भी गुरूजी देंगे उससे खुश हूँ' तक।***
> ***'जो भी गुरूजी देंगे उससे खुश हूँ' से 'मैं गुरूजी को पाकर खुश हूँ' तक।***

और इस मोड़ पर समर्पण, पूर्ण समर्पण बन जाएगा। संक्षिप्त में कहें तो आखिरकार आप को यह एहसास हो जाता है कि आपको जो हमेशा से चाहिए था वो गुरूजी ही हैं। आप को यह एहसास भी हो जाता है कि गुरूजी

जो कुछ भी आपके लिए करते हैं वो केवल आपके प्रति अपने प्यार की वजह से करते हैं। यह सब शुरू कैसे हुआ? आपके गुरूजी से कुछ भी ना माँगने से।

मेरी जिंदगी में यह दिव्य गुरु हैं और मुझे क्या चाहिए? जैसे ही यह भावना जागृत होती है, सब कुछ बहुत ही आसान हो जाता है। उनके पास नियंत्रण है। आपकी जिंदगी कभी भी बिखरेगी नहीं क्योंकि लगाम उनके हाथों में है। आप एक बेहतर रास्ते पर चलेंगे क्योंकि वो आपको रास्ता दिखा रहे हैं। आप अपनी मंजिल पर अवश्य पहुँच जाएंगे। जैसे ही आप माँगना बंद कर देंगे, आशीर्वादों की बाढ़-सी आ जाएगी क्योंकि अब आप आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए तैयार हो गए हैं।

"जो हरि जपे सो हरि होई"। जो ईश्वर की पूजा करते हैं वो ईश्वर ही बन जाते हैं। और जो ईश्वर बन जाते हैं उन्हें माँगने की ज़रूरत नहीं रहती। वो इस स्थिति में आ जाते हैं कि उन्हें सिर्फ इच्छा करनी है कि ऐसा हो जाए और वैसा हो जाता हैं। क्योंकि उसकी इच्छा ईश्वर की इच्छा बन जाती है।

जैसा की यह शबद् बताता है– **"जो माँगे ठाकुर अपने से, सोई-सोई देवे"।** मैं जो कुछ भी अपने गुरु से माँगता हूँ, वो दे देता है। शबद् 'अपने से' महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ है, कि यह अनुयायी गुरु के अपना होने का दावा करता है। उसने गुरु के साथ अपना सदा रहने वाला सीधा संबंध बना लिया है।

शबद् की दूसरी लाइन, और भी ज्यादा अद्भुत हैं **"नानक दास मुख ते जो बोले, इहाँ उहाँ सच होवे"** – एक बार जब ऐसा रिश्ता बन गया तब अनुयायी जो कुछ भी भविष्यवाणी करता है तो सच हो जाता है। इसका मतलब है कि अपने गुरु को स्वीकार करने से, अपने गुरु से जुड़ जाने से, अपने गुरु को समर्पण कर देने से और अपने गुरु की पूजा करने से आप उनके ही अस्तित्व का हिस्सा बन जाने की राह पर चल पड़ते हैं।

आप अपनी झूठी और अस्थाई पहचान खो देते हैं और उनके दर पर भिखारी बनकर आए व्यक्ति से आप सच में खुद ही महान-दाता बन जाते हैं। इसलिए जब गुरूजी कहते हैं, माँगो नहीं मानो, तो उनके कहने का तात्पर्य है कि अगर तुम मुझे बिना किसी शर्त के अपना लेते हो तो तुम्हें कभी माँगने की ज़रूरत ही नहीं रहेगी।

अनुयायी अब खुद को न केवल गुरु को सौंपता है बल्कि वो अब प्रार्थना

से भी परे हो जाता है। अनुयायी गुरु से अपने साथ रहने की प्रार्थना कर सकता है पर वो अनुयायी जिसको गुरु के साथ अपने एक होने का एहसास हो जाता है वो यह मानता है कि गुरु हर वक्त उसके साथ हैं; **"गुरु अंग-संग सदा है नाले" ।** ऐसा भक्त गुरु को कोई विकल्प नहीं देता क्योंकि वो सच्चाई के दृष्टिकोण को जानता है। गुरु ही सच हैं। तो फिर ऐसे अनुयायी को कैसे इनकार किया जा सकता है।

जब भगवान श्रीकृष्ण कहते है, जो मेरी पूजा करते हैं वो मेरे पास आ जाते है, तो इसमें पूजा करना शामिल है। यहाँ एक पुजारी है और एक है जिसकी पूजा की जाती है। अर्जुन, जो शिष्य है, भगवान श्रीकृष्ण से उनसे जुड़ने का और उनके आशीर्वाद पाने का बेहतरीन तरीका पूछता है। जवाब को अगर हमारे संदर्भ में देखें तो वो है: वो सब जो रीति-रिवाजों का पालन करते हैं और अपना समय भगवान के तरीकों को समझने में व्यतीत करते हैं और जो किसी भी धार्मिक प्रक्रिया में शामिल हो वो भी कभी-कभी मुझे पा लेते हैं। पर जो अपने रोजमर्रा की जिंदगी के सब काम करते हुए भी मुझे हर पल याद करते हैं उनके लिए मुझे पाना आसान होता है। वो मुझे बिना किसी मुश्किल के पा लेते है।[10]

गुरूजी चाहते हैं कि हम बीच के रास्ते पर चलें। हमें न तो घर-बार छोड़कर सन्यासी ही बनना है और न ही दुनिया के विषय-विकारों की दलदल में फंसा इंसान। हमें संतुलित रहना है और 'रसिक-बैरागी' बनना है। रसिक-बैरागी वो व्यक्ति जो दुनिया में रहते हुए, अपनी सब जिम्मेदारियों

---

[10] गीता अध्याय 8 श्लोक 7:-

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।।

अथार्त- इसीलिए मैं तुमसे कहता हूँ, हर पल हर दिन मुझे लगातार समर्पित रहो और अपनी जिम्मेदारियों को निभाते रहो। शब्द 'युद्ध' का यहाँ इस्तेमाल किया गया है, जिसका मतलब है लड़ो। महाभारत के एक ऐतिहासिक संदर्भ में निर्देश था - खुद को मेरे सहारे छोड़ दो, खुद को मुझे समर्पित कर दो, पूरी तरह मुझ पर निर्भर रहो और फिर लड़ो। यह किसी भी तरह की लड़ाई पर लागू होता है। जिंदगी में हम जो भी टकराव महसूस करते हैं, जिन-जिन भी विरोधों का हम सामना करते हैं, जो भी जिम्मेदारियाँ हमें निभानी हैं जो भी दायित्व हमारे हम पर निर्भर रहने वालों के हैं- यही असली युद्ध है- वो लड़ाई जिसमें हम भगवान के बनाये इस बड़े से युद्धस्थल में उलझे हुए हैं। "खुद को पूरी तरह मेरे सहारे छोड़ दो और अपने आप को इस जिम्मेदारी में व्यस्त करो जो आपको दी गई है।

भगवद् गीता पर की हुई
-स्वामी कृष्णानंदा की टिप्पणी।।

को निभाते हुए भी दुनिया के मोह-बंधन से दूर रहता है। रसिक-बैरागी बनने के लिए गुरूजी ने एक पूरे परिवार के इर्द-गिर्द ही दिशा-निर्देश दिए हैं– जहाँ पति पत्नी की देखभाल करता है, पत्नी पति की देखभाल करती है और दोनों मिलकर अपने बच्चों की देखभाल करते हैं। वो एक-दूसरे से प्यार करते हैं, एक दूसरे की इज्जत करते हैं और एक-दूसरे पर विश्वास करते हुए एक-दूसरे के प्रति आपस में जिम्मेदार रहते हैं। इन सब से गुरूजी का आपके परिवार के साथ रहना और उनको आशीर्वाद देना आसान हो जाता है।

गुरूजी की सेवा का सबसे बेहतर तरीका है जिंदगी में व्यस्त रहते हुए भगवान को याद करते रहना। जैसा कि 'आटोबायोग्राफी आफ योगी' में कहा गया है– सच्चा इंसान वो है जो अपने साथियों के साथ धार्मिकता में रहता है जो व्यापार करता है, खरीदता बेचता है लेकिन फिर भी कभी एक पल के लिए भी भगवान को नहीं भूलता है।

गुरूजी – अद्‌भुत शिव

गुरूजी ने, स्वयं भगवान शिव होते हुए भी अपनी संगत के साथ अपने संबंध को हमेशा सादगी से ही भरा रखा।

एक तरह से यह अच्छा ही था क्योंकि अगर वो हमसे हमारे स्तर पर आकर इंसानों की तरह बातचीत नहीं करते तो शायद हम सब के लिए उनसे संपर्क कर पाना इतना आसान नहीं होता। अगर गुरूजी हमें यह जान लेने देते कि वो वास्तव में कौन हैं तो मेरे जैसे तुच्छ और नश्वर मनुष्य के लिए उनसे रिश्ता असंभव हो जाता। वो हमारे गुरु थे, हमारे पिता भी थे, हमारे परिवार के मुखिया भी और हमेशा प्यार करने वाली माँ थे। हम गुरूजी के सामने जाकर रो सकते थे, हँस सकते थे, वो मजाक करते तो हम उनके मज़ाक का आनंद भी ले सकते थे। वो जब नाराज दिखते तो हम डर जाते थे। उन्होंने हमारे स्तर पर नीचे उतरकर हमारे लिए उनसे संबंध स्थापित करना मुमकिन कर दिया। अब हम बेहतर जानते हैं और इसका मुख्य कारण है कि नई संगत ने हमें दिखाया और सिखाया है कि इस पूरे वक्त भगवान शिव खुद इस आसन पर विराजमान थे।

गुरूजी कौन हैं? निःसंदेह इस बात के कुछ संकेत मौजूद थे। एक बार एक अनुयायी, जो गुरूजी के बचपन के मित्र थे, उन्होंने एक शाम मेरे साथ गुज़ारी। गुरूजी के विद्यार्थी जीवन के प्रारंभिक वर्षों के बारे में मुझे एक आश्चर्यजनक घटना सुनाई।

वो कक्षा में गुरूजी के साथ बैठकर परीक्षा दे रहे थे। एक लड़के के फाउन्टेन पैन की स्याही खत्म हो गई और वो इस कारण से लिख नहीं पा रहा था। गुरूजी जो उस समय काफी छोटे थे, उन्होंने उस लड़के को देखा। उसका पैन माँगा और फूंक मार कर उसका पैन लौटा दिया। अब वो पैन चलने लगा।

अध्यापक ने यह सब देखा और उसे लगा कि शायद ये दोनों बात करके नकल कर रहे हैं। अध्यापक ने गुरूजी से पूछा कि वो क्या बात कर रहे थे? गुरूजी ने अध्यापक को सब ज्यों का त्यों बता दिया। अध्यापक गुरूजी को सीधे प्रधानाचार्य के पास ले गए। प्रधानाचार्य ने गुरूजी को एक और नया पैन दिया और उसमें फूंक मार कर स्याही भरने को कहा। गुरूजी ने वैसा ही कर दिया – प्रधानाचार्य को काफी हैरानी हुई।

इससे जो मैं समझा वो यह कि हमारे गुरूजी ने किसी साधना या तपस्या से यह क्षमताएं हासिल नहीं की थीं। वे तो पैदा ही दिव्य हुए थे। वे एक अवतार थे। वे देवत्व का इंसानी चोले में अवतरण थे। उन्हें संसार में आकर कोई ज्ञान-प्राप्ति या आत्मबोध नहीं हुआ था। वे तो सदाशिव हैं। उनकी दिव्यता की कुछ व्यक्तिगत घटनाएँ मेरे और मेरी पत्नी के साथ भी हुई। इन घटनाओं को हम केवल अलौकिक घटनाएँ ही कह सकते हैं जो मनुष्य की बुद्धि की सीमा से काफी ऊपर है। हम ऐसी घटनाओं से वाकिफ हैं जो सांसारिक नियमों को मूर्खता पूर्ण सिद्ध करती हैं और जो स्थान और समय के ज्ञात सिद्धांतों की भी अवहेलना करती हैं। ऐसी घटनाएँ जिन्होंने सारे प्राकृतिक नियमों, जैसे कि प्रभाव से पहले कारण आना चाहिए, के आधार को ही मजाक बना दिया। जैसे-जैसे वक्त बीतता गया भक्तों को यह मालूम हो गया कि गुरूजी संगत के लिए प्रसाद सचखंड – दिव्यता के उच्चतम आवास से भी ले आते हैं। मैं ऐसी संगत से मिला हूँ जो इतने खुशकिस्मत थे कि उन्हें यह दिव्य प्रसाद पाने का मौका मिला था और उन्होंने सत्संग में हमें अपने यह अनुभव सुनाए थे। मैं अक्सर अपने लिए गुरूजी महाराज से ऐसे आशीर्वाद की गहरी इच्छा रखता था।

एक रात जब मैं सो रहा था, मुझे महाराज के दर्शन हुए। उन्होंने मुझे एक मिठाई, बर्फी के जैसा कुछ, दिया। वो एक कुर्सी पर बैठे थे और उनके सामने एक मेज़ रखी थी। उन्होंने मुझसे बर्फी लेने को कहा लेकिन उसको पूरा खत्म न करके कुछ बाद के लिए रखने को भी कहा। उन्होंने वो प्रसाद कब इस्तेमाल होगा इसके बारे में भी निर्देश दिए।

अगला दिन शनिवार नहीं था, मैंने फिर भी उस दिन 'एम्पायर-एस्टेट' जाकर गुरूजी के दर्शन करने का निर्णय लिया। मेरी पत्नी अपने शनिवार के नियम से संतुष्ट थी और उसने मेरे साथ न जाना तय किया। कुछ अन्य संगत मेरे साथ जाने को तैयार हो गईं। सब मंदिर में थे। चलते हुए शबद् को बीच में ही बंद कर दिया गया। किसी ने फुसफुसाकर मेरे कान में कहा कि महाराज दिव्य प्रसाद बॉटने जा रहे हैं। मेरे रोंगटे खड़े हो गए। मेरा सपना सच होने जा रहा था। गुरूजी के हाथ जुड़े हुए थे और उनके माथे से थोड़ा ऊपर थे और फिर न जाने कहाँ से उनके हाथों में मिठाई आ गई। यह एक छोटा-सा पेड़ा था। उस दिन लगभग 250 संगत वहाँ मौजूद थी। कर्नल जोशी अंकल ने पीछे बैठी संगत को, जिसमें मैं भी था, पहली मंजिल पर

जाकर इंतज़ार करने को कहा। बहुत ही बे मन से मैं ऊपरी मंजिल की ओर यह सोचता हुआ चला गया कि इतनी कम मात्रा का प्रसाद तो मेरी बारी आने से पहले ही खत्म हो जाएगा।

इस विचार ने मुझे उदास कर दिया। मैं वहीं नीचे रुकना चाहता था। मुझे वो दिव्य-प्रसाद चाहिए था। एक रात पहले का सपना मेरी स्मृति में एकदम तरो-ताज़ा था। खैर, मैं ऊपर जाकर बैठ गया, मेरे साथ ग्रेवाल अंकल बैठे थे। मैंने अपनी आशंका का उनसे जिक्र किया कि मैं इतना खुशकिस्मत हूँ कि जब दिव्य प्रसाद प्रकट किया गया तो मैं वहाँ मौजूद हूँ पर मेरी बारी आने से पहले ही वो खत्म हो जाएगा। यह तो ठीक नहीं है। उन्होंने मेरा कंधा दबाते हुए मुझसे कहा कि इस वक्त चाहे पूरी दिल्ली ही क्यों न आ जाए प्रसाद खत्म नहीं होगा। मुझे प्रसाद मिल जाएगा। उन्होंने लगभग घोषणा के अंदाज में यह मुझसे कहा।

कुछ मिनटों के बाद, पहली मंजिल पर बैठी संगत को नीचे बुलाया गया और हम लाइन में खड़े हो गए। मैंने एक पुरानी संगत को गुरूजी के पास अपने हाथ पर बिछे एक सफेद रुमाल पर बड़े ध्यान से दिव्य प्रसाद को पकड़े देखा। जब मेरी बारी आई, महाराज ने मुझे एक संतोष जनक मात्रा में प्रसाद दिया। मुझे यकीन है कि अगर सारी संगत को उतनी मात्रा में प्रसाद मिलता तो यह प्रसाद पहले की 25 संगत में बंटकर खत्म हो जाता। लेकिन सारी संगत को वो प्रसाद मिल गया था और फिर भी आधा अभी शेष था। वो बचा हुआ दिव्य प्रसाद जिन संगत ने अपने हाथों में पकड़ा हुआ था उनको ही मिल गया। उनसे उस प्रसाद को अपने आशीर्वाद के रूप में घर ले जाने को कहा गया।

उस सच खंड के प्रसाद को ग्रहण करना किसी भी अन्य वस्तु के खाने जैसा नहीं था। मैंने जैसे ही उसे अपने मुंह में रखा, उसी क्षण उसने मेरे पूरे शरीर पर प्रभाव दिखा कर उसे एकदम शांत कर दिया। वह दिव्य प्रसाद खुशबू से भरा हुआ था। जैसा ग्रेवाल अंकल ने समझाया, मैंने थोड़ा खा लिया और बाकी घर ले गया। मुझे मेरा स्वप्न याद था, थोड़ा प्रसाद मैंने अपने परिवार में बाँटा और निर्देशानुसार बाकी का रख दिया। इतने सालों के बीत जाने पर भी, हमारे घर पर रखा वो प्रसाद हमारे लिए आज भी सबसे कीमती और महत्वपूर्ण आशीर्वाद है। अब उस रखे हुए प्रसाद का कब और क्या करना है, इस संदर्भ में मैं महाराज के निर्देश का इंतजार कर रहा हूँ।

संगत के लिए यह एक अटल सत्य है कि जिसको भी महाराज का दिव्य प्रसाद मिलता है वो भाग्यशाली है। अगर मेरा कोई संदेह था भी तो उसे ग्रेवाल अंकल ने दूर कर दिया। उन दिनों में जब पुरानी संगत पहली मंजिल पर बैठती थी और नई संगत को महाराज के सामने बैठने का अवसर मिलता था, मैं और ग्रेवाल अंकल पहली मंजिल पर अक्सर साथ ही बैठे मिलते थे।

एक अवसर पर जब हम दोनों एक के पीछे एक 'एम्पायर एस्टेट' पहुँचे तो महाराज अपने अनौपचारिक कपड़ों में रसोईघर के पास वाली कैबिनेट पर बैठे थे। मैंने माथा टेका, उनका आशीर्वाद प्राप्त किया और पहली मंजिल पर अपने स्थान पर जाकर बैठ गया। ग्रेवाल अंकल भी ऊपर आए और मेरे साथ बैठ गए। ग्रेवाल अंकल ने मुझसे कहा, "कमांडर गुरूजी ने तुमको आशीर्वाद दिया है"।

उन्होंने मुझे बताया कि अभी-अभी नीचे क्या हुआ। गुरूजी ने उनसे कहा था **"तेरे दोस्त का कल्याण कर दित्ता।"** उनको समझ नहीं आया कि गुरूजी ने 'दोस्त' किसे कहा, तो उन्होंने गुरूजी से पूछा, **"केड़ा दोस्त, गुरूजी"?** (कौन-सा दोस्त, गुरूजी)। गुरूजी ने कहा– **"ओ तेरा दोस्त-कमांडर"।** क्या मेरे लिए इस से बड़ा कोई आशीर्वाद हो सकता है? उनके हर वक्त बने रहने वाले आशीर्वादों के माध्यम से मैं हर मुमकिन तरीके से पहले के अपने स्वरूप से बेहतर और उन्नत बन गया हूँ। मैं जो हूँ और जो मैं करता हूँ उनका श्रेय मैं नहीं ले सकता। हम संगत, गुरूजी के आशीर्वादों का चलता-फिरता स्वरूप हैं। अपने आप में हम कुछ भी नहीं है किसी भी लायक नहीं हैं।

ऐसा परिवर्तन लाना उनके लिए इसीलिए संभव है क्योंकि वो शिव हैं। वो भगवान जो किस्मत को पुनः लिख सकते हैं।

सच खंड के प्रसाद को प्रकट करना केवल उनकी दिव्यता का एक उदाहरण मात्र है। एक अन्य अवसर पर बड़े मंदिर में जो अनुभव मेरी पत्नी को हुआ वो अपने आप में एक बेहद अद्भुत और बाहरी दुनिया के अनुभव के समान है। उसके अनुभव को उस क्षण में, जब यह हुआ, समझ पाना मुश्किल था। यह अनुभव साफ-साफ दिखाता है कि कैसे गुरूजी की दिव्यता सब जगह मौजूद है और कई आयामों और कई परिमंडलों में एक साथ काम कर रही है।

कोई भी व्यक्ति बिना कष्टों का सामना किए आध्यात्मिक रूप से जागृत नहीं हो सकता। यह आवश्यक है। अगर हम कष्टों का सामना नहीं कर रहे हैं तो हम अध्यात्म के मार्ग पर कहीं नहीं जा रहे। जब हम जिंदगी का आनंद उठा रहे हैं, जब हम इस दुनिया की भौतिक वस्तुओं का आनंद ले रहे हैं तो हम वास्तव में अपने कर्मों के बैंक खाते से खर्च कर रहे हैं। लेकिन जब हम कष्ट झेलते हैं तो हम अपने इसी खाते में जमा कर रहे हैं। इसीलिए केवल एक गरीब, कमजोर और बीमार व्यक्ति ही दूसरों को आशीर्वाद देने की स्थिति में होता हैं। इसी तरह वो बुजुर्ग, जो उम्र के साथ आई शारीरिक दुर्बलता के कारण कष्ट सहते हैं, उनको भी आशीर्वाद देने की शक्ति मिल जाती है। जब हम उनकी देखभाल करते हैं, हमें उनसे आशीर्वाद प्राप्त होते हैं। हमारे माता-पिता, हमारे बड़े बुज़ुर्ग भी हमें आशीर्वाद दे सकते हैं क्योंकि उन सब ने भी कष्ट सहन किए हैं। जो सम्रद्ध लोग सुख भोग रहें हैं, वो हमें आशीर्वाद नहीं दे सकते। याद रखें, आशीष वो चीज हैं जो कोई तब ही दे सकता हैं जब उसके पास हो। कष्ट हमें ताकतवर बनाते हैं। कष्टों के सहन करने से हमारा कर्मों का खाता बढ़ता है और वो हम दूसरों के साथ बाँट सकते हैं। कभी-भी कष्टों को अवांछित न समझें।

कभी-कभी ये वर्तमान में चल रहे कष्ट या जल्द ही आने वाले कष्ट ही हमारे लिए गुरूजी के दरबार का दरवाजा खोल देते हैं। अगर गुरूजी की संगत के रूप में भी हमें कष्टों का सामना करना पड़ रहा है तो इस बात पर यकीन रखिए कि यह गुरूजी की ही बनाई योजना का हिस्सा है। यह हमें हमारे कर्मों के बोझ से मुक्ति दिलाने के लिए और हमें योग्य संगत बनाने के लिए ही है। गुरूजी और हम, दोनों एक साथ इस प्रक्रिया का हिस्सा हैं। हम अपने दुष्कर्मों के फलों का केवल लेशमात्र भाग ही भोगते हैं जबकि गुरूजी हमारे हिस्से के कष्टों का बड़ा भाग अपने ऊपर ले लेते हैं। और इस सब के दौरान, इसके लिए चाहे गुरूजी को कुछ भी करना पड़े, कितना भी कष्ट उठाना पड़े और चाहे कितना भी वक्त लगे, वो हमारा हाथ नहीं छोड़ेंगे और हमें आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए तैयार कर देंगे।

कुछ संगत के लिए यह सारी प्रक्रिया शायद केवल एक मिनट का ही समय ले और अन्य कुछ लोगों को शायद कई जन्म लग जाएँ। पर यह होकर रहेगा। और इस यात्रा के दौरान इस जीवन में और इस जीवन के बाद भी, गुरूजी सदा हाथ थामे रहेंगे। मेरी पत्नी के अनुभव, जो मैं लिखने जा रहा हूँ, उस से यह बात और भी स्पष्ट हो जाएंगी।

यह 2004 में गुरूजी के जन्मोत्सव की बात है। मेरी पत्नी अंदर मुख्य हाल में बैठी थीं और मैं रसोईघर के सामने, अपनी सेवा में कार्यरत था। हाल के अंदर से लगभग 50 अनुयायियों को एक वक्त पर बाहर लंगर के लिए लाया जा रहा था ताकि गुरूजी के सामने कुछ और संगत को ला कर बिठाया जा सके। अचानक ही, कुछ समय के लिए रसोईघर से लंगर का परोसना रुक गया। उसी वक्त ही एक बड़ी संख्या में पंजाब से संगत आई और हाल में प्रवेश कर गई।

संगत की इस भीड़ के कारण, मेरी पत्नी ने खुद को गुरूजी के एकदम सामने पाया, वो दाएँ-बाएँ किसी भी दिशा में नहीं जा सकती थी। सेवादारों ने संगत को, जो जहाँ था वहीं बैठ जाने का निर्देश दिया। मेरी पत्नी गुरूजी महाराज के एकदम साथ बैठने की हिम्मत नहीं कर पा रही थी। गुरूजी ने उसको देखा और उसे वहीं बैठ जाने को कहा। गुरूजी ने स्वयं अपनी जुत्ती उतार दी और आसन पर चौकड़ी लगा कर बैठ गए ताकि कुछ और जगह बन जाए और मेरी पत्नी आराम से बैठ जाए। वो जैसे बैठी, पीछे की संगत के धक्के के कारण वो गुरूजी के थोड़ा और भी करीब खिसक गई। वो महाराज के इतने पास बैठी थी की गुरूजी की पवित्र जुत्तियाँ उसके दाहिने घुटने को छू गईं। बहुत बड़ा आशीर्वाद! जैसे ही रसोईघर से कुछ देर के बाद फिर से लंगर परोसना शुरू हुआ, उसको उठ कर बाहर आना था। उठते समय उसको अपने दाहिने घुटने में, वहीं जहाँ उसे जुत्तियों ने छुआ था, बड़ी तीव्र पीड़ा का अनुभव हुआ।

उसने मुझे बाद में बताया कि वो उसकी जिंदगी में अनुभव की हुई सबसे कष्टदायक पीड़ा थी। उसने जो प्रसव के समय पीड़ा अनुभव की थी उससे भी कहीं अधिक थी वो पीड़ा।

हर कोई यह ही सोचेगा कि वो गुरूजी के इतने पास बैठी थी और अनजाने में गुरूजी की जुत्तियों को छू लिया था तो इस से बड़ा कोई और आशीर्वाद क्या होगा। और ये सच भी है। जैसे ही वे मुख्य हाल से लंगर के लिए बाहर निकलीं, उन्होंने खुद को दूसरी ही दुनिया में पाया। वहाँ लंगर नहीं परोसा जा रहा था। लंबी-लंबी दाड़ी वाली संगत जिन्होंने सफेद कपड़े पहने हुए थे आपस में बातें करते हुए, खुशी में अपनी ही धुन में गाते हुए बस हवा में मानो तैर रहे थे। मेरी पत्नी दर्द के कारण हताश थीं, अत्यधिक पसीने में लथपथ थी और रो रही थी।

अपना सर दीवार के सहारे टिका कर मेरी पत्नी ने मुझे ढूंढना शुरू किया। एक संगत से, जो उसे कुछ जानी-पहचानी लगी, उन्होंने मुझे ढूंढ कर यह बताने को कहा कि उसकी तबीयत ठीक नहीं है और उसे तुरंत ही चिकित्सक की मदद की जरूरत है। वो चाहती थी कि मैं उन्हें तुरंत ही घर वापिस ले जाऊँ। इस संगत ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और उसे नज़र-अंदाज कर दिया। मेरी पत्नी ने फिर एक अन्य संगत को संपर्क किया पर उस संगत ने भी उसे नज़र अंदाज कर दिया। मेरी पत्नी ने हाथ पकड़कर उन्हें रोकने की कोशिश की पर उसका हाथ उस संगत के आर-पार हो गया मानो जैसे वो संगत धुएँ से बनी हो। वो उनको छू या पकड़ नहीं सकी। पूरी तरह से निराश होकर, मेरी पत्नी ने खुद को रसोईघर के साथ वाली दीवार तक घसीटा और वहाँ खड़ी होकर रोने लगी।

उसने सोचा कि उनकी मृत्यु हो गई है। क्योंकि जो लोग उसे दिखे वो काल्पनिक से लगे। अब वो फिर से रोने लगी क्योंकि उसे एहसास हुआ कि उसने अपने बच्चों से विदा भी नहीं ली और अब वो वापिस नहीं जा सकती। वो मुझसे बहुत गुस्सा थी क्योंकि जिस वक्त उसे मेरी सबसे ज्यादा जरूरत थी, मैं उसकी मदद के लिए उसके आस-पास नहीं था।

मैं जब भी सेवा में रहता हूँ तो बीच-बीच में जाकर देखता रहता हूँ कि वो ठीक है। उस दिन भी, मैंने यही कोशिश की पर मैं उसको कहीं भी देख नहीं पाया। मैंने कुछ संगत से भी उसके बारे में पूछा पर कोई भी यह नहीं बता पाया कि वो कहाँ है, ऐसा लगा मानो वह हवा में कहीं गायब हो गई। यह हमने बाद में समझा कि मैं और मेरी पत्नी एक साथ एक ही समय में रसोईघर के सामने ही थे लेकिन वह एक अलग दुनिया में थीं।

मेरी पत्नी ने देखा कि एक सफेद दाड़ी वाले व्यक्ति ने उसे कुछ लंगर खाने को दिया। उसने उस व्यक्ति के केवल दाड़ी और पाँव ही देखे, उसके पाँव देखकर उसे गुरूजी के चरण याद आ गए। उसने विरोध किया कि उसे बहुत दर्द हो रहा है और वो कुछ भी नहीं खाना चाहती परंतु फिर भी उसके हाथ में थाली आ गई। उसने ध्यान दिया कि थाली में लंगर, जैसा खाना हम खाते है वैसा नहीं था बल्कि एक कोयले जैसा काला पदार्थ था। वो व्यक्ति उसे थाली देकर गायब हो गया। यह एहसास करके कि उसके पाँव गुरूजी के चरणों जैसे थे, उसने अपने आप को किसी तरह उस लंगर को खा लेने के लिए राजी कर लिया। लंगर खाते ही वो थाली उसके हाथ से गायब हो गई।

अब उसको ऐसा महसूस हो रहा था कि उसको उल्टी हो जाएगी और वो वहाँ रसोईघर के सामने उल्टी नहीं करना चाहती थी। उसने बाथरूम जाने का सोचा पर वो चल ही नहीं पा रही थी फिर भी जैसे ही उसने बाथरूम जाने का सोचा वो वैसे ही वहाँ पहुँच गई। वहाँ उसने उसी काले-पदार्थ की उल्टी कर दी। गुरूजी ही जाने वो क्या था।

उल्टी करने के फौरन बाद, उसने खुद को वापिस सामान्य परिस्थिति में पाया। बाथरूम वैसा ही था जैसा हुआ करता था। वो जगह, जहाँ उसको ये अनुभव हुआ था, जो पूरी की पूरी एकदम सफेद थी, जहाँ सब ने सफेद कपड़े पहने थे, वह जगह अब गायब हो चुकी थी और मेरी पत्नी वापिस मंदिर में थी।

जब वो बाथरूम से निकली तो उसका दर्द जा चुका था वो पैदल चल पाई। सर से पाँव तक वो पसीने से भीगी हुई थी और मुझे ढूंढते ढूंढते मुख्य दरबार हाल की ओर जाने वाली सीढ़ियों पर आकर बैठ गईं। लगभग सुबह के 2 बजे होंगे, जब आखिरकार वो मुझे वहीं पर बैठी मिल गईं। वो काफी बीमार और दुखी लग रहीं थी। मैं बहुत डर गया। उस वक्त वो केवल घर लौटना चाहती थी। मैंने उसे समझाया कि मैं बिना गुरूजी की आज्ञा लिए उसे घर नहीं ले जा सकता। बाकी संगत की तरह, मुझे भी पूरी आस्था थी कि हम मंदिर के अंदर हमेशा सुरक्षित हैं। उसने विरोध किया पर मैंने अपनी बात दोहराई कि हम गुरूजी की आज्ञा मिलने पर ही घर जाएंगे। मैं नहीं जानता था कि उस पर क्या गुजरी है पर मैं ये यकीनन जानता था कि मंदिर के अंदर गुरूजी के साथ वो सुरक्षित है। उसने फिर विरोध किया और कहा कि गुरूजी मुझे फिर से एक घंटे के लिए रोक लेंगे और उसे वहाँ कष्ट ही रहेगा। पर मैं अंदर गया और गुरूजी से आज्ञा भी तुरंत ही मिल गई। ये स्पष्ट था कि महाराज जानते थे।

हम गाड़ी चलाकर घर लौट आए। अगली सुबह मेरी पत्नी ने मुझे चाय का प्याला देते हुए जगाया और मैंने प्रतिक्रिया में उसको आराम करने को कहा। उसने कहा उसे कुछ नहीं हुआ वो ठीक थी और अब कोई दर्द भी नहीं था। उसने मुझे पूरी बात बताई कि उसके साथ क्या हुआ था लेकिन मुझे कुछ ज्यादा समझ नहीं आया।

हम अक्सर हैरानी से सोचते थे कि इस अनुभव का क्या मतलब था। यह तो हमें पता था कि गुरूजी ने कहा है कि उनकी दूसरी दुनिया सफेद है

इसलिए मेरा मानना है कि मेरी पत्नी गुरूजी की मृत्योपरांत वाली दुनिया में गई थी और लौट आई।

इस अनुभव को हम तब थोड़ा-बहुत समझ पाए जब हमने एक भक्तिपूर्ण शबद् सुना जिसमें सत्संग क्यों महत्वपूर्ण है इस बारे में बताया गया है। उस शबद् की प्रमुख पंक्ति है **"ऐसी लाल तुझ बिन कौन करे; गरीब-निवाज गुसईयाँ मेरा माथे छत्तर धरे"।**

इस शबद् की व्याख्या हमें बताती है कि कैसे मंडी का राजा श्री गुरु अरजन देव जी का अनुयायी बन गया और उनके सत्संग और दर्शनों को जाने लगा। एक दिन उस राजा ने गुरु महाराज के शिविर में एक अनुयायी को एक छंद गाते हुए सुना जिसमें कहा गया था कि जो लिखा जा चुका है वो मिटाकर पुनः नहीं लिखा जा सकता। राजा ने गुरु महाराज से पूछा क्या किस्मत में कोई परिवर्तन किया जा सकता है या कुछ सुधार हो सकता है? अगर हमें अपने कर्मों का फल भुगतना ही है तो फिर सत्संग जाने का क्या फायदा? गुरु महाराज ने उस दिन उसे जवाब देना टाल दिया और राजा अपने महल को वापिस चला गया।

उस रात, राजा को एक सपना आया। उसने देखा कि वो अपने अगले जन्म में एक सफाई कर्मी बन गया है और अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर वो गरीबी की अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया है। अगले दिन गुरु महाराज राजा को अपने साथ घोड़े पर बैठाकर एक गाँव में ले गए।

गाँव वाले राजा को देखकर आश्चर्यचकित हो गए और कुछ नफरत भरी नाराजगी से उसको देखने लगे। एक सफाई कर्मी, जो एकदम राजा की ही तरह दिखता था और उसी की ही उम्र का था, एक दिन पहले मृत्यु को प्राप्त हो गया था। वो सब गाँव वाले उससे इसलिए नाराज़ थे कि वो (सफाई कर्मी) अपने परिवार की देखभाल करने की जगह अब राजसी वस्त्र पहनकर घूम फिर रहा था। उसकी पत्नी और बच्चे भी उसको राजा के रूप में स्वीकार नहीं कर पाए। वे भी उसे सफाई कर्मी ही मानते रहे।

राजा को उस परिवार की हालत देखकर दुख हुआ, पर उसने कहा कि वो सफाई कर्मी नहीं बल्कि मंडी का राजा है। गाँव वाले ज़ोर देते रहे कि वो सफाई कर्मी है जिसकी अभी-अभी मृत्यु हो गई थी। गुरूजी दूर खड़े मुस्कुराते रहे और जब समस्या का हल ढूंढने के लिए सबको उनके सामने लाया गया तो गुरूजी ने गाँव वालों से उस सफाई कर्मी की कब्र को खोदने के लिए बोला।

अगर कब्र में मृत शरीर मिल जाएगा तो यह बात साबित हो जाएगी कि सफाई कर्मी मर चुका है और यह कोई वेष धारी नहीं है। ऐसा ही किया गया। सफाई कर्मी का मृत शरीर कब्र से मिल गया था।

जब गुरु महाराज और राजा घोड़े पर सवार होकर वापिस जा रहे थे, राजा ने फिर से जानना चाहा कि सत्संग जाने का क्या फायदा है। गुरु महाराज ने कहा कि उसने अभी-अभी सत्संग के फायदे का प्रत्यक्ष अनुभव किया है। गुरु महाराज ने समझाया कि अगले जन्म में राजा को एक सफाई कर्मी के रूप में जन्म लेना था, जो शादी करता, बच्चे होते और 35 वर्ष की उम्र में वो गरीबी में मृत्यु को प्राप्त हो जाता। लेकिन क्योंकि वो सतगुरु या पूर्ण गुरु की शरण में आ गया था इसीलिए उसके दुष्कर्मों के प्रभाव से जो उसको एक अत्यंत कष्ट पूर्ण जीवन जीना था, वो सिर्फ एक सपने में ही कट गया। कर्मों के फल तो भुगतने ही पड़ते हैं लेकिन सतगुरु की परम कृपा से उन फलों को ऐसे आयाम में भुगतवा दिया जाता है जहाँ पर कष्ट केवल अवास्तविक ही बना रहता है।

जैसा गुरूजी भी कहा करते थे, **"शूल को सुई बना दिया"**; अर्थात– अत्यधिक भयानक कष्टों को कम करके केवल सुई की चुभन जितना दर्द बना दिया।

हम समझ गए कि मेरी पत्नी को भी एक अन्य आयाम में ले जाकर गुरूजी ने उसके कष्टों को कुछ घंटों की दर्द में परिवर्तित करके छोटा भी कर दिया और उसको गुरूजी मृत्यु का अनुभव करा के वापस भी ले आये।

ऐसे हैं हमारे गुरूजी! उनसे ऊपर कुछ नहीं है और न ही कभी होगा। शिव होते हुए वो स्वयं पूर्ण स्वतंत्रता का आनंद लेते हैं। ऐसा कोई भी नहीं है जो उनकी इच्छा विफल कर दे। वो किसी भी रीति-रिवाज या आचरण से जुड़ी मानव-बाध्यता का पालन नहीं करते। वो इन्हें केवल इसलिए अपना लेते हैं ताकि अपनी संगत को खुश कर सकें और उन्हें आशीर्वाद दे सकें। भगवान शिव के माँ पार्वती से विवाह का स्मरण करें तो पाएंगे कि वहाँ भगवान शिव ने तपस्वी की वेश-भूषा त्याग कर दूल्हे का रूप अपनाया था। उसी प्रकार गुरूजी ने भी, संतों की वेष-भूषा से जुड़े पारम्परिक मापदंड का अनुसरण नहीं किया।

छोटी-छोटी घटनाएँ भी सारे लोकों और सम्पूर्ण ब्रह्माडों पर गुरूजी की प्रभुता को सिद्ध करती हैं। बड़े मंदिर में एक बड़े समारोह के दौरान, अचानक

ही बहुत सारी संगत का प्रवेश हुआ जिसके कारण कुछ और मात्रा में लंगर की व्यवस्था करने की जरूरत पड़ी। मुझ से जाकर आटा लाने के लिए कहा गया। रात के लगभग 1 बजे का समय था, सब दुकानें बंद हो चुकी थीं। मेरे साथ एक अन्य वरिष्ठ सेवादार भी थे हम दोनों आटा तलाशने लगे।

जब गुरु कोई सेवा देते हैं तो गुरु स्वयं ही ऐसी व्यवस्था करते हैं कि सेवा वास्तव में पूरी हो सके। यही विश्वास की खूबसूरती है। हम एक छोटे से घर के सामने, जहाँ एक बुजुर्ग महिला बाहर ही चारपाई पर सो रही थी, रुके। हाथ जोड़कर हमने उन्हें दादी बुलाते हुए सादगी से आटा मांगा। उन्होंने हमें अपने घर के अंदर से दो बोरे उठा लेने को कहा। हम उनके लिए बिलकुल अनजान थे और उस वक्त उन्हें देने के लिए हमारे पास पैसे भी नहीं थे। हमने उनसे कहा कि हम कल आकर पैसे चुका देंगे और वो मान भी गई। हम 10 मिनट में आटा लेकर सत्संग के लिए वापिस पहुँच गए।

सोचें तो पहली नज़र में यह एक मामूली बात लगे लेकिन सेवा के सफलतापूर्वक पूर्ण होने के पीछे गुरूजी की बड़ी और प्रभावशाली उपस्थिति स्पष्ट है। इस बात का हमेशा स्मरण कराते हुए कि गुरूजी हमारे साथ ही हैं। हमें हमारी जिंदगी में किसी और की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल गुरूजी ही हैं जिनकी हमें जरूरत है। हमें तो केवल इतना करना है कि बस उनपर पूर्ण विश्वास करें। उस बेवक्त पर हमें आटा नहीं मिलेगा, यह प्रश्न हमारे दिमाग में आया ही नहीं। मुझे यकीन है कि उन दादी माँ को भी उस दिन गुरूजी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

इसी तरह, 'एम्पायर-एस्टेट' में एक दिवाली की रात गुरूजी महाराज ने तय किया कि वो संगत में प्रसाद के रूप में मिठाई बांटेंगे। उन्होंने सेवादारों से कुछ मिठाई लाने को कहा। जो सेवादार गुरूजी के कहने पर यह काम करने गए उन्हें देर रात में एक ही दुकान खुली मिली और वो वहाँ से सारी मिठाइयाँ खरीद कर ले आये। उस वक्त मैं उन सेवादारों के साथ नहीं गया था।

मुझे याद है, सब को हर तरह का प्रसाद ज़रूर मिल जाए इसके लिए गुरूजी ने अपने हाथों से सारी मिठाइयों को मिला दिया। सबको सब तरह की मिठाई मिल गई और वो भी पर्याप्त मात्रा में। यह गुरूजी की असीम उदारता का प्रमाण था। महाराज हमेशा ही हमें ढेर सारा खाने को देते। और एक अन्य चीज जो वो हमें ढेर सारी मात्रा में देते वो थी उनकी कृपा।

अब यह स्पष्ट है कि गुरूजी महा शिव हैं। भगवान शिव की प्रमुख विशेषताओं में से एक है उनकी दया। उनका प्यार ऐसा है कि वो भक्तों के कष्ट अपने ऊपर ले लेते हैं। इसका इससे बेहतर उदाहरण और क्या होगा कि भगवान शिव ने समुद्र-मंथन के दौरान निकले विष को खुद पी लिया, इससे पहले वो सृष्टि का विनाश करता। सभी देवताओं ने अमृत पान किया अमर होने के लिए। उच्चतम योगी होने के कारण वो विष को अपने कंठ में रखते हैं, नीचे अपने उदर-भाग तक नहीं जाने देते, जहाँ समूचे बह्मांड बसते हैं। तभी से वो नीलकंठ, नीले गले वाले, के नाम से जाने जाते हैं। सभी शिव लिंगों के ऊपर एक बर्तन होता है जिसमें से पानी की बूँदें गिरती रहती हैं ताकि विष के प्रभाव को समाप्त करने के लिए भगवान शिव के द्वारा किए गये तप की ऊष्मा को शांत किया जा सके।

जिस तत्परता और सहजता से गुरूजी अपनी संगत के कष्ट और समस्याएँ अपने ऊपर ले लेते थे वो बहुत ही प्रसिद्ध है। जिस तरह भगवान शिव ने विष पिया था, महाराज ने उसी तरह हमारी जिंदगी के सभी जहरों को निकाल कर स्वयं धारण कर लिया था। यह केवल सैद्धांतिक या दार्शनिक स्थिति नहीं थी। हर रोज महाराज, संगत के कष्टों को अपने ऊपर लेने के कारण, खुद कष्ट भोगते थे। एक अनुयायी ने एक बार उनसे पूछा कि गुरूजी आप क्यों कष्ट उठाते हैं? जवाब में गुरूजी ने उस संगत से एक सवाल किया कि वो स्वयं क्या करती हैं? वो महिला एक राजनीतिज्ञ थी। उन्होंने कहा कि वो अपने क्षेत्र के लोगों की देखभाल करती हैं। यह उनका काम है।

गुरूजी ने उनसे कहा कि अपनी संगत की देखभाल करना उनका काम है। यह शिव भगवान का काम है। यह गुरु का काम है कि वो अपनी संगत के दर्द, कष्ट, और समस्याओं का समाधान करें। वास्तव में संगत भी शिव-तत्व को धारण कर लेती है जब वो करुणामय बन जाती है और दूसरों की मदद को तैयार रहती है या उनके कष्ट का निवारण करने की कोशिश करती है।

गुरूजी और भगवान शिव में एक और समानता है। शिव एक पूर्ण योगी हैं वो संसार में होते हुए भी समाधिस्थ रहते हैं। उन्हें ध्यान पूर्ण होने के लिए किसी अलग समय या आयाम की जरूरत नहीं। परिणाम स्वरूप उनका शरीर एक शुद्ध रोशनी से बना है और ऊष्मा का उत्पादन भी करता है। संगत को यह पता होना चाहिए, कि रसोईघर के बाहर कैबिनेट, जिस पर गुरूजी अनौपचारिक रूप में बैठ जाते थे, ऐसे ही प्रभावित हुई। गुरु जी के आभा की

तीव्र गर्मी से कैबिनेट पर की गई वार्निश काली पड़ गयी थी, और यह सब देख सकते थे।

दिव्य गुरु का एक और इशारा– मौसम चाहे कोई भी हो, कैसा भी हो, गुरूजी एकदम ठंडा मौसमी का जूस पीते थे। जैसा कि 'जनवरी' में उनके गुड़गाँव आने' के विषय वाले अध्याय में बताया है।

एक बार माँ पार्वती ने भगवान शिव से पूछा कि उन्हें कैसे प्रसन्न किया जा सकता है? उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें यज्ञों, रीति-रिवाजों और बाहरी क्रियाओं के द्वारा जल्दी प्रसन्न नहीं किया जा सकता। वो तो केवल प्यार और भक्ति ही चाहते हैं। आप उन्हें ये दे दीजिए और बस भोलेनाथ भक्तों के प्रियतम बन जाते हैं। गुरूजी के साथ भी कुछ ऐसा ही हैं। वो अपनी संगत में पाखंड से दूर, केवल कर्मों में ईमानदारी और भक्ति के लिए लालसा ही चाहते है। शिव भगवान की तरह, गुरूजी अपनी संगत की कमियों को नजर अंदाज कर देते हैं और हर वक्त उनके साथ रहते हैं। वो सबको आशीर्वाद देते हैं। वो कौन है और उसकी हैसियत क्या है इससे गुरूजी को कोई फर्क नहीं पड़ता। वो संगत में से कभी भी छाँटते नहीं, वो उन्हें अपने चरणों में शरण देते हैं। इसके लिए केवल एक ही प्रधान योग्यता चाहिए वो हैं गुरूजी के प्रति आपका प्यार।

उनकी कहानियाँ अनंत हैं, वे खुद भी अनंत हैं, जैसा हमारे शास्त्र कहते हैं – **"हरि अनंत-हरि कथा अनंता"।** गुरूजी को समझने की कोशिश मत कीजिए, बस खुश रहिए की आपकी जिंदगी में गुरूजी हैं। आप को दूसरों की किस्मत से अपनी किस्मत की तुलना करने की ज़रूरत भी नहीं है। जहाँ तक संगत की बात है वो यहाँ भी गुरूजी के साथ हैं और हमेशा गुरूजी के साथ ही रहेंगे। गुरूजी कहा करते थे कि मेरी संगत इस दुनिया में यहाँ मेरे साथ है और मृत्यु के बाद भी मेरे ही साथ ही रहेगी।" ऐसा भरोसा हमें भगवान शिव के सिवा दूसरा कौन दे सकता है? हम कभी-भी खो नहीं सकते। हम सदा ही हमारे प्यारे गुरूजी के साथ रहेंगे। मेरी प्रार्थना है कि हम सब हमेशा ही महाराज के साथ उनके आशीर्वाद की छत्र-छाया में रहें।

हमेशा के लिए आशीर्वाद – मैं अपनी संगत को नहीं छोड़ रहा

31 मई 2007 की वो एक सामान्य सुबह थी। सुबह के 6 बजे से कुछ समय पहले मैं गोल्फ खेलने के लिए जा रहा था, जब मुझे सिंगला अंकल का फ़ोन आया। उन्होंने मुझे बताया कि गुरूजी अस्वस्थ हैं और गुड़गाँव की संगत को उनके लिए प्रार्थना करनी है।

बहुत सारे विचारों ने मेरे मन को विचलित कर दिया, "गुरूजी हमारे भगवान और स्वामी हैं। वो हम सब का ख्याल रखते हैं। हमारा वजूद भी उनकी वजह से है। वो अस्वस्थ हैं और हमें उनके लिए प्रार्थना करनी चाहिए?"। इन सब बातों का कोई तथ्य या मायने समझ ही नहीं आ रहा था। इस परिस्थिति में जब अपना मत परिवर्तित करके सोचा तो लगा कि शायद यह गुरूजी की हम सबको दी हुई कोई परीक्षा है।

मैं घर आया और गुड़गाँव संगत को SMS के द्वारा संदेश भेज दिया। हर संगत ने चुपचाप से मंत्र-जाप करना शुरू कर दिया, यह मुझे बाद में पता चला। यह जाप लगभग 30 से 45 मिनट तक चला। मुझे एक अन्य फोन आया और मुझे बताया गया कि अब जाप करने की ज़रूरत नहीं है। मैंने सोचा शायद परीक्षा समाप्त हुई। अब मैंने संगत को संदेश भेजा "सब ठीक है कृपया प्रार्थना रोक दीजिए"। थोड़ी देर बाद मेरे एक घनिष्ठ मित्र का, जो संगत भी हैं, फोन आया। उन्होंने कहा, "भाई जी गुरूजी चले गए"। इस से पहले मैं उनकी कही बात का अर्थ समझ पाता उन्होंने कहा कि गुरूजी अब नहीं रहे। मैं अपनी पत्नी के साथ रसोईघर के पास खड़ा था, मैंने उसकी तरफ मुड़ कर वो ही शब्द दोहरा दिए। वो मेरी ओर भागी और मुझे कस कर गले लगाकर बोली, "अब हमारा क्या होगा?" एकदम स्तब्ध अवस्था में मैं केवल धीरे-से इतना ही बोल पाया "मुझे कुछ नहीं पता।"

यह हमारी जिंदगी का सबसे बुरा क्षण था। सब कुछ खो गया था। जो मुझसे कहा गया था उस के साथ मैं समझौता नहीं कर पा रहा था। फिर मुझे कुछ और सूचना देता हुआ एक संदेश मिला कि महाराज एम्स अस्पताल में हैं। मैं वहाँ जाने के लिए फ़ौरन निकल गया। खबर फैल चुकी थी और संगत

अस्पताल में इकट्ठा होने लगी थी। किसी से कुछ पूछने की जरूरत नहीं थी, उनके चेहरे सब बयान कर रहे थे। मुझे याद है, गुरूजी की संगत रोती हुई बाहर सब जगह फैली हुई थी। अभी–अभी जो भी हुआ था सब उस खबर को स्वीकार करने की पूरी–पूरी कोशिश कर रहे थे। अस्पताल का पूरा प्रांगण गुरूजी की खुशबू से भरा हुआ था। न सिर्फ कमरा और बरामदा, बल्कि पूरा अस्पताल परिसर उनकी खुशबू से भरा हुआ था।

बेहोशी की सी हालत में, मैं ICU की तरफ चला गया। वहाँ कोई नहीं था और मैं खोया हुआ सा जब वहां खड़ा था– एक अंकल ICU से बाहर निकले और मुझसे पूछा कि क्या मैं गुरूजी के अंतिम दर्शन करना चाहूँगा। मैं अंदर चला गया। गुरूजी अस्पताल के पलंग पर लेटे थे। मैंने दोनों हाथों से उनके पाँव, जिनमें जुराबें नहीं थी, पकड़ लिए और एक आखिरी बार अपना सर उन चरणों पर रख दिया।

'एम्पायर एस्टेट' में गुरूजी हमेशा जुराब पहने रहते थे और मैंने कई बार सोचा था कि क्या मुझे कभी उनके चरणों को छूने का मौका मिलेगा जब उनके चरणों में जुराबें नहीं होंगी। मुझे लगता था कि ऐसा भाग्यशाली पल कभी नहीं आएगा। आखिरी क्षणों में महाराज ने यह दिल की तमन्ना भी पूरी कर दी। पर ये पल अपने साथ बहुत बड़ा दुख लेकर आया था। हम सब उम्मीद कर रहे थे कि गुरूजी अभी उठ खड़े होंगे और यह सब सिर्फ उनकी एक लीला है। हमने सोचा था कि गुरूजी अपनी संगत को इतना प्यार करते हैं कि वो उन्हें छोड़कर जा ही नहीं सकते। पलट कर सोचें तो... वो छोड़ कर कभी गए ही नहीं।

मैंने उनके मानव अवतार में आखिरी दर्शन 26 मई 2007 को किए थे, 31 मई से पहले आए शनिवार को। संगत घर जाने के लिए आज्ञा ले रही थी और मैं शायद पंक्ति में आठवें या नौवें स्थान पर खड़ा था, मेरे पीछे भी लगभग उतने ही लोग थे। गुरूजी बाईं ओर झुके और मुझे देखते हुए बोले, "कमांडर घर जाओ।" मैं उनके चरण छूना चाहता था पर उनकी आज्ञा के कारण वहीं दूर से मैंने माथा टेका, उनको देखा भी नहीं और चला आया। महाराज ने अपने लिए और अपनी संगत के लिए क्या सोच रखा था इसका कोई भी अंदेशा नहीं था।

पिछले कई महीनों से कई बार हम गुरूजी के जाने के फैसले के बारे में सुन चुके थे। वास्तव में मई 2007 में उन्होंने काफी संगत को कहा कि वो

यहाँ पर केवल इसी महीने के आखिर तक ही हैं। मैं भी, अधिकांश संगत की तरह, यही समझा कि शायद गुरूजी पंजाब चले जाएंगे, जहाँ वो काफी खुश और निश्चिंत रहते थे। जब गुरूजी दिल्ली में होते तो ऐसा नहीं होता था। मैंने अपनी पत्नी के साथ यह बात भी की कि शायद अब हम गुरूजी से हर शनिवार को न मिल पाएँ लेकिन हम महीने में एक बार उनसे मिलने पंजाब जाया करेंगे। मेरी पत्नी मेरी इस बात से सहमत हो गई थी।

मुझे याद है, गुरूजी ने एक दंपति को, जो उनसे मई के आखिरी दिनों में मिलने आए थे, कैसी प्रतिक्रिया दी थी। गुरूजी ने उनसे पूछा था कि क्या वो वहाँ पहली बार आए हैं और उस दंपति ने जवाब में 'हाँ' कहा था। गुरूजी ने घोषणा करते हुए कहा कि उन्होंने उनके पास आने में देर कर दी। वो जा रहे हैं। उनके आस-पास बैठी संगत ने उनसे पूछा कि वो कहाँ जा रहे हैं, लेकिन गुरूजी ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। बाद में यह सब समझ आने लगा।

वो यादें, जब गुरूजी ने एक तरफ झुककर मुझे देखते हुए घर जाने का आदेश दिया था, आज भी मेरे स्मृति-पटल पर अमिट छाप की तरह अंकित है। मुझे अफसोस है कि मैं उस दिन उनके चरण नहीं छू पाया और जैसा होता था उनके चरण दबा भी नहीं पाया, पर मैं खुश था कि उन्होंने मेरा नाम पुकारा था। अब, मैं अपने आप से सवाल करता हूँ कि मैंने ऊपर क्यों नहीं देखा, उस एक पल के लिए जब गुरूजी की आँखों से संपर्क हो पाता और जो अब हमारी साथ में बिताई गयी आखिरी घड़ी होती। आँखें नीचे रखने और महाराज को न देखने की मेरी आदत यूँ कहें तो मुझे बहुत महंगी पड़ी। यह और आखिरी बार अपना सर उनके चरणों में न रख पाना, दोनों विचार, आज भी मुझे बहुत सताते है। मैं गुरूजी से पूछता रहता हूँ कि क्यों उन्होंने मुझे इसकी इजाज़त नहीं दी। मैं खुद को साथ ही साथ सांत्वना भी देता हूँ इस विचार से कि गुरूजी ने मुझे 'कमांडर' कहकर तो पुकारा।

बहुत लम्बे समय तक संगत शोक में डूबी रही। मेरी पत्नी के स्वप्न में गुरूजी 30 मई 2007 को आए थे। उसने देखा गुरूजी हाल के बीचो-बीच बैठे हैं, अपने आसन पर नहीं और उन्होंने वो ही कपड़े पहने हुए थे जो आखिरी दिन यानी 31 मई को पहने हुए थे। वो गुरूजी के पास बैठना चाहती थी पर गुरूजी ने उसे बाहर जाने को कहा।

वो इस बात से खुश नहीं थी जब गुरूजी ने उसे आदेश दिया, "तुम बाहर जाओ और सेवा करो। जो लोग यहाँ मेरे पास बैठे हैं वो बीमार हैं।" मेरी पत्नी न चाहते हुए भी बाहर चली गई।

महाराज चले गए– वो भी बिना किसी चेतावनी के। अपने दुख के गहरे अंधेरे में हमें एक बड़ा सा खालीपन महसूस होता रहता था। हमारा पूरा संसार ही वास्तव में टूट कर बिखर गया था।

एक अनकही–सी भावना थी मन में कि यह गुरूजी के साथ हमारे खूबसूरत से रिश्ते का अंत था। धीरे–धीरे हमारी यह धारणा बदलने लगी क्योंकि उनकी खुशबू कभी हमें छोड़ कर नहीं गई और मंदिर में, बाहर लॉन में और आस–पास के वातावरण में, सब जगह पहले से भी कहीं ज्यादा यह खुशबू महसूस होती। हवा का हर झोंका उस खुशबू को लौटा लाता, हमें यह भरोसा दिलाने के लिए कि गुरूजी मौजूद हैं। यह अविस्मरणीय है। बड़े मंदिर में मेरी पत्नी एक महिला संगत, पॉल आंटी, से मिली। उन्होंने उसे कस के पकड़ा और ज़ोर से गले लगाकर रोने लगी और पूछने लगी अब जब गुरूजी चले गए हैं तो उनके परिवार का क्या होगा। हम सब छोटे बच्चों की तरह थे जिनकी माँ उन्हें अचानक ही बेसहारा छोड़कर चली गई थी।

उस रात मेरी पत्नी ने स्वप्न में देखा कि वह एक सत्संग में गई हैं। गुरूजी, अपने पास के पर्दे के पीछे से निकल कर सामने आ गए। मेरी पत्नी ने उनको देखा और चौंक कर बोली, "गुरूजी, आप यहाँ हो?" गुरूजी ने कहा, और क्या? तुम सब सोच रहे हो मैं चला गया? मैं यहीं हूँ। मैं कहीं नहीं गया। वो पॉल आँटी जो रो रहीं थी उसको नहीं पता कि मैं यहाँ हूँ। तुम जाओ और उसको बताओ कि मैं यहाँ हूँ। मैं कहीं नहीं जा रहा। **मैं अपनी संगत को नहीं छोड़ रहा।**" काफी समय के बाद मेरी पत्नी पॉल आंटी से मिलीं और उनको जो गुरूजी ने कहा था वो बताया।

बीतते समय के साथ, संगत को एहसास हुआ कि महाराज उनको छोड़ कर नहीं गए हैं। हाँ, अब वो पहले की तरह दिखाई नहीं देते लेकिन उनकी मौजूदगी की दिव्यता और उनसे जुड़ी हर बात कई गुणा मात्रा में बढ़ गई थी। धीरे–धीरे संगत को फिर से सामान्य महसूस होने लगा। अधिकांश, संगत को स्वप्न में उनके दर्शन भी हुए।

जो अनुयायी बाद में संगत में जुड़े उनको असाधारण रूप से जल्दी ही आशीर्वाद प्राप्त होने लगे। कुछ मेरे जैसी पुरानी संगत हैरान हो गई थी कि

हम क्यों नहीं इनकी तरह से फौरन ही विश्वास कर पाए और गुरूजी से संबंध इतनी जल्दी और इतने गहरे बना पाए।

व्यक्तिगत बात-चीत के दौरान, नई संगत अक्सर हम से कहती है कि हम, पुरानी संगत, बहुत ही खुशकिस्मत हैं कि हमें गुरूजी के मानव स्वरूप के दर्शन हुए। यह वास्तव में सच ही है। लेकिन पुरानी संगत, जो गुरूजी के उनके मानव-रूप से जुड़ी, उनके शारीरिक रूप से ज़्यादा ही जुड़ गई थी। जब हमने उनकी मौजूदगी को खोया, तो ये ऐसा था जैसे हमने अपने माता-पिता को खो दिया हो। उनकी शारीरिक उपस्थिति की वास्तविकता ऐसी कोई चीज नहीं है जिसके लिए कुछ किया जा सके जब तक हम इस शरीर के माध्यम से ही जुड़ रहे हैं। उन के साथ उसी एक कमरे में होना, जिस हवा में वो साँस ले रहे हैं उसी हवा में साँस लेना, उनके चरण छू पाना, उनकी आवाज को सुन पाना, उनको अपनी प्यार और कृपा भरी दृष्टि से संगत को देखते हुए देखना, ये सब भुला पाना बहुत ही मुश्किल है। एक तरीके से, हम पुरानी संगत, इस नुकसान की भावना के साथ ही जीते हैं। नई संगत को गुरूजी के रूप में, भगवान शिव के साथ दिव्य संबंध बनाने में ऐसी किन्हीं भी यादों से जूझना नहीं पड़ता।

उनका यह दूसरी दुनिया में चला जाना बेशक हमें चौंका गया, पर बीती बातों को याद करें तो यह स्पष्ट है कि गुरूजी ने अपना जाना पहले से ही तय किया हुआ था।

पहला संकेत– सन् 2005 के लगभग आया जब मैं उनसे आज्ञा ले रहा था। महाराज ने मुझसे मेरा सत्संग लिखकर लाने और सुमित जेथड़ा अंकल को देने को कहा। मैं नहीं जानता था कि वे इसका क्या करेंगे पर आज्ञा का पालन करते हुए मैंने वैसा किया। जल्द ही, हमें एहसास हुआ कि इन सत्संगों को संकलित करके एक ग्रंथ बन रहा है जिसमें गुरूजी की चुनी हुई संगत के अनुभव संकलित होंगे। ये सारे सत्संग एक पुस्तक में संकलित हुए जिसका शीर्षक था, "लॉइट ऑफ डिविनिटी", जो 2007 में गुरूजी के जन्मदिन पर प्रकाशित की गई। ये उनका हम सब के लिए और आने वाले अनुयायियों की पीढ़ी के लिए एक चिरकाल तक रहने वाला आशीर्वाद है। परंतु यह बहुत असामान्य था क्योंकि तब तक गुरूजी महाराज के बारे में प्रिन्ट और इलैक्ट्रानिक मीडिया में बात करने की इजाजत नहीं थी।

दूसरा संकेत– गुरूजी का हमें नई संगत को उनके पास लाने के लिए प्रोत्साहित करना ताकि वो उन्हें आशीर्वाद दे सकें। इसका अपना ही महत्व था। एक घोषणा की गई थी कि गुरूजी ज़्यादा से ज्यादा संगत को आशीर्वाद देना चाहते हैं और हमें नई संगत गुरूजी के पास लानी चाहिए। हमें सत्संग करने चाहिए और लोगों को महाराज के पास लाना चाहिए ताकि वो उन्हें आशीर्वाद दे सकें। गुरूजी ज़्यादा से ज्यादा संगत को आशीर्वाद देना चाहते थे। पुरानी संगत के रूप में, हमें लगता था कि 'एम्पायर एस्टेट' में अब अनुयायियों की भीड़ होने लगी थी और हम दर–किनार हो रहे थे। नई संगत को नीचे की मंजिल के हाल में बिठाया जाता, जहाँ गुरूजी बैठते थे और पुरानी संगत को पहली मंजिल पर ऊपर भेज दिया जाता। मानों पुरानी संगत को गुरूजी के दर्शनों से वंचित कर दिया हो। ऊपर से हमारे रोज़–रोज़ आने पर भी रोक लगा दी। जैसे–जैसे और लोग आने लगे पुरानी संगत को जैसे बाहर कर दिया गया। उन्हें एक प्रलोभन दिया गया कि अगर वो नई संगत अपने साथ ला रहे हैं तो वो दर्शनों के लिए एक–बार से ज्यादा आ सकते हैं। हम लोगों को अपना सत्संग सुनाकर गुरूजी के पास लाने का प्रयास करते, बहुत ही बढ़िया स्वादिष्ट लंगर प्रसाद का लालच देकर भी उन्हें आने को कहते।

तीसरा संकेत– उस साल पहली बार संगत में कैलेन्डर वितरित हुआ। रश्मि सिंह आंटी सन् 2002 से हर साल गुरूजी महाराज से विनती कर रही थी कि संगत के लिए उन्हें कैलेन्डर छापने की आज्ञा दे दी जाए। गुरूजी ने इतने सालों तक कभी भी अपनी आज्ञा नहीं दी। साल 2007 के शुरू में एक दिन एम्पायर एस्टेट में वो गुरूजी के चार एक जैसे स्वरूप लाईं और महाराज से विनती करी कि वो उन सब पर हस्ताक्षर कर दें। गुरूजी ने खुशी–खुशी ऐसा कर दिया, सब पर ब्लैसिंग्स आलवेज, गुरूजी' लिखकर। रश्मि आंटी ने उन चार स्वरूपों में से एक स्वरूप अपने व्यक्तिगत इस्तेमाल के लिए और दो कैलेन्डर छपवाने में इस्तेमाल किये और उन दो कैलेन्डर को महाराज के पास उनके आशीर्वाद के लिए लाईं।

गुरूजी महाराज, उन कैलेंडरों का जो प्रतिरूप निकल कर आया, उसे देखकर बहुत खुश हुए। फिर उन्होंने रश्मि सिंह आंटी से संगत में बांटने के लिए एक बड़ी मात्रा में कैलेण्डर छपवाने पर उनका सुझाव मांगा। यह बिलकुल वो बात थी, जिसके लिए पिछले पाँच साल से आंटी विफलता पूर्वक

विनती कर रहीं थी। उन्होंने कैलेण्डर छपवाए और शिवरात्रि वाले दिन पहली बार संगत में वो कैलेंडर बाँटे गए, हर परिवार को केवल एक कैलेंडर के कड़े नियम के साथ। और यही नहीं कैलेंडर वितरण का काम शायद अप्रैल 2007 तक चलता रहा। हम अब जानते हैं कि महाराज का निर्णय– बदलाव कोई संयोग नहीं था। उन्होंने यह तय किया हुआ था। व्यापक रूप से इस्तेमाल हो रहे एक प्रतीक के समान हस्ताक्षर 'ब्लैसिंग्स ऑलवेज, गुरूजी' जो आजकल संगत में काफी प्रसिद्ध हैं, सन् 2007 के उसी कैलेंडर से लिए गए हैं।

एक तरफ तो, आज गुरूजी मानव–चोले में हमारे साथ नहीं हैं, दूसरी तरफ हमें हर समय, हर वक्त अपने आस–पास उनकी मौजूदगी का एहसास रहता है। यही नहीं, हमारे पास उनकी संगत भी तो है। उनकी खूबसूरत यादें हैं और अपने वो गुरूजी के साथ बिताए दिव्य पलों की दास्ताँ सुनाने की सेवा, उनको जो गुरूजी की शरण में बाद में आए।

गुरूजी अब भी यहीं हैं। उनकी दिव्य ज्योति यहाँ है, उनके आशीर्वाद यहाँ है। वो कहीं नहीं गए हैं। गुरूजी ने हमारा हाथ छोड़ देने के लिए नहीं पकड़ा था। एक बार जब हमें यह एहसास हो गया तो दर्द धीरे-धीरे खत्म होने लगा। बहुत वक्त लगा, पर दर्द खत्म हो गया।

उनकी शारीरिक मौजूदगी चली गई, परंतु वो आज भी हमारे दिलों में रहते हैं और हमारे रथों की लगाम अपने दिव्य हाथों में थामे हुए हैं। यह भाव ही हमें सही राह पर चलते रहने को प्रेरित करता रहता है। वास्तव में यह एक बड़ा आशीर्वाद है, और बस यही है जो महत्वपूर्ण है।

महाभारत का एक घटनाक्रम इसका बेहतरीन उदाहरण है। जब महाभारत का युद्ध खत्म हो गया, पांडव विजयी हुए तो श्री कृष्ण ने अर्जुन को रथ से पहले उतरने को कहा। अर्जुन को अज्ञानतावश लगा कि आखिरकार उसने युद्ध जीता है तो नियम के अनुसार उसके सारथी को पहले उतरना चाहिए और फिर विजयी योद्धा को रथ से उतरने में मदद करनी चाहिए। उसने यही बात श्रीकृष्ण से कह दी। भगवान ने उत्तर दिया कि यह एक विशेष स्थिति है इसलिए आज अर्जुन को पहले उतरना पड़ेगा।

अर्जुन ने ना चाहते हुए भी बात मान ली और उतर गया और फिर श्रीकृष्ण रथ से उतरे। उनके उतरते ही रथ जल कर तुरंत ही राख का ढेर बन गया। श्रीकृष्ण ने तब अर्जुन को समझाया कि अर्जुन का रथ तो बहुत समय पहले ही राख हो गया था क्योंकि उस पर हुए आक्रमण अत्यंत घातक

थे। जिन शस्त्रों ने इस पर आक्रमण किया था वो दुर्जेय थे। जब तक वह स्वयं उस पर बैठे थे, वो रथ बना रहा। श्रीकृष्ण ने समझाया, अगर वो रथ से पहले उतर जाते तो अर्जुन का भी वो ही हाल होता जो रथ का हुआ।[11]

ये कहानी हमारे सामने आईना रखती है। हमारा शरीर रथ है और हम इसमें रहते हैं। जब तक गुरूजी भी इस रथ में रहते हैं यह रथ बना रहेगा। जो कठिनाइयाँ हमने देखी हैं उन्होंने हमें कब का मिटा दिया होता लेकिन चूँकि हमारा रथ गुरूजी नियंत्रित कर रहे हैं, मार्गदर्शन कर रहे हैं और सुरक्षित कर रहे हैं, यह रथ सामान्य रूप से व्यवहार कर रहा हैं और सही पथ पर है। बस गुरूजी को अपने रथ से न उतरने दें और आप ठीक रहेंगे। वो परम सर्वोच्च शक्ति यहाँ आपके साथ हैं।

मेरा मानना है कि गुरूजी महाराज ने अपना चोला सिर्फ इसीलिए छोड़ा ताकि वो सदा के लिए हमारे दिलों में वास कर सकें। इस तरह से यह पक्का करते हुए कि वो कभी भी एक क्षण के लिए भी अपनी संगत से दूर नहीं होंगे। हमारे रथ की लगाम सदा अपने हाथों में थामे रहेंगे।

हम सब इतने भाग्यशाली हैं। मेरी पत्नी और मैं अक्सर ही खुद से पूछते हैं कि जब से हमने गुरूजी के चरण कमलों में शरण ली तब से हमारी जिंदगियाँ कितनी बदल गईं। कैसे हमारा जीवन स्तर, हमारी सोच से भी बेहतर हो गया, कैसे खुशियां हमारे दरवाज़े तक आ गईं, कैसे हम इतने

---

[11] संजय ने धृतराष्ट्र से कहा – केशव ने गांडीव धनुर्धारी से कहा, अपना गांडीव और बचे हुए दो तीर लेकर तुम उतर जाओ। मैं तुम्हारे बाद उतरूंगा। भरत वंश में श्रेष्ठ, पाप रहित, तुम नीचे उतर जाओ क्योंकि यह तुम्हारे लिए ही अच्छा है। पांडू के शूरवीर पुत्र धनंजय ने जैसा उसे निर्देश दिया गया वैसा ही किया। समझदार श्रीकृष्ण ने घोड़ों की लगाम छोड़ दी और फिर रथ से उतर गए। सभी प्राणियों के परमात्मा के रथ से उतर जाने के पश्चात, अर्जुन के रथ की पताका पर विराजमान, दिव्य वानर, भगवान हनुमान भी गायब हो गए। रथ के ऊपर का भाग जो द्रोणाचार्य और कर्ण के दिव्य अस्त्रों के कारण जल गया था, फिर से प्रज्वलित हो गया और रथ राख का ढेर बन गया। हे राजन– यह सब जब हुआ तब आस-पास कोई भी अग्नि प्रज्वलित नहीं दिख रही थी। वास्तव में धनंजय का रथ अपने तीव्र गति वाले घोड़ों, घोड़ों को जोतने वाले दंड और कड़ी सब नीचे गिर गए। बर्बाद हुए रथ को देखकर, हे राजन, पांडू के पुत्र को बहुत हैरानी हुई और अर्जुन ने, हे राजन, श्री कृष्ण को नमस्कार करके, माथा टेका और हाथ जोड़कर कहा– "हे गोविन्द, हे दिव्यात्मा किस कारणवश मेरा रथ यूँ जल कर राख हो गया? ये जो हमारी आँखों के सामने हुआ, ताकतवर शस्त्रों के स्वामी, अगर आप ठीक समझे कि मैं बिना किसी हानि के यह सुन सकता हूँ तो कृपया मुझे यह सब बताइए"। वासुदेव ने कहा– "हे अर्जुन, वो रथ विभिन्न अस्त्रों-शस्त्रों के हमले से नष्ट हो चुका था, लेकिन क्यूँकि मैं स्वयं युद्ध के दौरान उस पर सवार था, इसके टुकड़े नहीं हुए। हे शत्रु पर विजय पाने वाले, बह्मास्त्र की ऊर्जा से ही पहले ही नष्ट हो चुका यह रथ तुम्हारे युद्ध जीतने के उपरांत, मेरे नीचे उतरते ही राख हो गया"।

महाभारत – **कृष्णद्वैपायन वेदव्यास**
अनुवादित – केसरी मोहन गांगुली

समृद्ध और स्वस्थ हो गए। समाज में इतनी इज्जत बढ़ गई, हमारे बच्चे भी अपनी जिंदगी में अच्छा कर रहे हैं। और यह सब कुछ सिर्फ और सिर्फ गुरूजी की कृपा की वजह से संभव हुआ है। अगर हम उनके द्वार पर नहीं आते, हमारी जिंदगियाँ मुरझाई हुई, बासी और उदास, स्वयं दुखी और दूसरों को दुख देती हुई किसी अंधेरे कोने में खोई हुई होती। हर एक बार जब हम अपने आप से यह प्रश्न करते हैं, हम उस क्षण, अपनी जिंदगी के किसी भी मोड़ पर क्यूँ न हो, हमेशा गुरूजी का आशीर्वाद महसूस करते हैं। उनकी खुशबू हमेशा साथ रहती है। हमें यह भरोसा दिलाते हुए "मेरे बच्चों, मैं यहीं हूँ, तुम्हारे पास।"

गुरूजी ही हैं जो हमें निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। क्या इसका अर्थ है कि हमें कोई समस्या नहीं है या ऐसा कोई विषय नहीं है जिसको सुलझाने की जरूरत नहीं है? ऐसा बिलकुल नहीं है। हम हर रोज किसी न किसी समस्या से जूझते हैं और अपना रास्ता इन मुश्किलों से लड़ कर तय करते रहते हैं। यह कहते हुए भी मैं यही कहूँगा कि पहले और अब में फर्क है। अब हमारे पास हमारे साथ हमारे भीतर महाराज की सदा आश्वस्त करने वाली पवित्र उपस्थिति है। जो हमें किस्मत की दी हुई हर चुनौती का विश्वास से सामना करने का साहस देती है।

कैसे उनकी कृपा कर्मों का बोझ कम करती है

संगत के लिए यह एक सिद्ध सत्यवाद है कि गुरूजी उनके 90 प्रतिशत कर्म अपने ऊपर ले लेते हैं और केवल 10 प्रतिशत कर्म ही हमको काटने पड़ते हैं। हम को वो 10 प्रतिशत कर्म काटने भी बहुत मुश्किल लगते हैं। गुरूजी उन 10 प्रतिशत कर्मों का बोझ भी हमारे लिए सहनीय बना देते हैं। सोचिए, आप की किस्मत में है कि आपको एक किलो लाल मिर्च खानी पड़ेगी। सज़ा तो काटनी ही पड़ेगी। अब अगर आप के गुरु आप के साथ हैं तो वो एक चम्मच मिर्च रोज आपके खाने में 'चिली पनीर' नामक सब्जी में डाल देते हैं और आपको उसे नान के साथ खिला देते हैं। इस तरह गुरूजी आपके कर्मों को सहन करने लायक बना देते हैं।

भक्तों को लगता है कि जब वो भगवान के हाथ की कठपुतली हैं तो फिर कर्मों का बोझ कैसे बढ़ जाता है, वो कर्म कैसे इकट्ठा हो जाते हैं? हम कैसे उन कर्मों के लिए जिम्मेदार हो जाते हैं। जो भगवान के ही कहने (मर्जी) से शुरू होते हैं, उन्हीं के द्वारा नियंत्रित होते हैं और उन्हीं के द्वारा सम्पन्न भी होते हैं? संत तुलसी दास जी ने– रामचरितमानस में ऐसा ही लिखा है–

"होइहि सोइ जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावै साखा।

अर्थात् – सब कुछ रामजी की इच्छानुसार ही होता है। इस बारे में विचार विमर्श करने से कुछ हासिल नहीं होगा।

हमेशा की तरह, गुरूजी सदा ही जटिल मामलों को सरल बना देते हैं। एक बार देर रात में, जनरल कपूर से बातचीत के दौरान, गुरूजी ने उनसे पूछा कि वो विभिन्न धर्मों के बारे में क्या जानते हैं? जनरल कपूर ने कहा कि वो एक फौजी है इसलिए धर्मों के बारे में ज्यादा कुछ नहीं जानते।

गुरूजी ने उन्हें आश्वस्त किया और जल्दी-जल्दी मुख्य-मुख्य धर्मों से लिए हुए दिव्य सिद्धांतों का उच्चारण करने लगे और फिर जनरल कपूर से पूछा कि वो क्या समझे। जब जनरल कपूर ने विवशता में केवल अपने कंधे उचका दिए तो गुरूजी ने उनसे कहा कि वो चिंता न करें अगर उन्हें कुछ भी जानकारी नहीं है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर गुरूजी ने जरूरी और महत्वपूर्ण बातों को सारांश में बताया कि सारे धर्म एक ही हैं, एक समान हैं। भगवान एक ही हैं और सब उनके बच्चे हैं।

इसलिए, अगर हम किसी का कुछ भी भला कर सकते हैं, तो हमें आगे बढ़कर कर देना चाहिए। और अगर हम नहीं कर सकते तो भी कोई बात नहीं, यह भी स्वीकार्य है। बस ये सुनिश्चित कीजिए कि आप किसी का नुकसान नहीं करें और किसी को चोट न पहुँचाएँ, किसी के दुख का कारण न बने। हम किसी के आँसू, दर्द या कष्टों के लिए जिम्मेदार न बनें। जब तक व्यक्ति, जहाँ तक मुमकिन हो दूसरों की मदद करे और किसी को हानि न पहुँचाए तो बस धर्म के बारे में इतना जानना काफी है।[12] बेशक हमें दिव्यता / परमात्मा से प्राप्त हुए हर आशीर्वाद का आभार करने के लिए और परमात्मा से जुड़ने के लिए थोड़ा वक्त अवश्य निकालना चाहिए।

गीता में दिए गए कर्मों के विषय में प्रवचन (तर्क) से बेहतर तर्क कहीं नहीं है। गीता, दो भाइयों के परिवार की कहानी है– पाँच पांडव और उनके सौ चचेरे भाई कौरव, जिनका नेतृत्व राज्य की लड़ाई में दुर्योधन कर रहा था। इसे अच्छाई और बुराई के बीच हुए युद्ध की नज़र से भी देख सकते हैं। भगवान श्रीकृष्ण अच्छाई की तरफ पांडवों के साथ खड़े हैं। उनकी सेना कौरवों के साथ है। युद्ध संग्राम के शुरुआत में ही अर्जुन युद्ध से इनकार कर देता है। इस घटना से 'गीता के ज्ञान' का मार्ग बनता हैं जिसे अर्जुन का विषाद योग कहते हैं।

जब अर्जुन युद्धक्षेत्र में अपने सामने अपने ही चचेरे भाइयों को देखता है तो वो विचलित होकर युद्ध का विरोध करने के लिए इस युद्ध में अपने सारथी का महत्वपूर्ण पात्र अदा कर रहे श्रीकृष्ण की और मुख कर के उनसे कहता है, कि वो अपने भाइयों, काका, पितामह और गुरुओं का वध नहीं करना चाहता। जिनसे उसका खून का रिश्ता है वह उनके साथ युद्ध नहीं करेगा। और ऐसा कहते हुए, अर्जुन, अपने प्रसिद्ध धनुष गांडीव को नीचे रखकर रथ में निराशा पूर्वक बैठ जाता है। अब श्रीकृष्ण को अपने अनिच्छुक और निरुत्साहित शिष्य अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार करना है। यह लड़ाई केवल अर्जुन की ही नहीं है, यह हम सब की जिंदगी का संघर्ष भी है।

श्रीकृष्ण के पास बहुत सारे कूटनीतिक जवाब तैयार हैं। पहला, वो अर्जुन से कहते हैं कि यह उसकी ही लड़ाई है इसलिए उसे लड़नी ही होगी क्योंकि एक क्षत्रिय योद्धा और राजकुमार होने के नाते यह लड़ाई लड़ना

---

[12] यह घटना "लाइट आफ डिविनटी" में जनरल कपूर सत्संग में भी बताई गई है।

उसका कर्तव्य है। दूसरा– अधर्म को एक कड़ा उत्तर देने की आवश्यकता है। उसका राज्य उससे षड्यंत्र पूर्वक हड़प लिया गया है और सुलह के प्रयासों के बावजूद उसको और उसके भाइयों को राज्य लौटाने से इनकार कर दिया गया है। तीसरा– कौरवों ने उन्हें आक्रामक चुनौती दी है और पांडवों में से एक बेहतरीन योद्धा होने के कारण उसे शस्त्र उठाने चाहिए। स्वर्ग के सुख एक योद्धा की प्रतीक्षा करते हैं फिर चाहे वो किसी भी पक्ष, हारने वाले या जीतने वाले, की ओर से लड़े।

अर्जुन अब यह कहकर विरोध करता है कि उसे अपने कर्तव्य-पालन का पुरस्कार नहीं चाहिए। उसे न तो स्वर्ग चाहिए और न ही राज्य। वो अपने हाथों पर अपने भाई-बंधुओं का खून नहीं चाहता। यह उसका औचित्य है।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि उसे ऐसा केवल लग रहा है कि उसके पास विकल्प है। वास्तव में उसके पास कोई विकल्प नहीं है। ईश्वर ने इस घटनाक्रम का पूर्ण चित्रण पहले से ही तैयार कर रखा है। युद्ध तो होगा। अर्जुन युद्ध करेगा। जो शेष है वो केवल इतना ही कि अर्जुन यह तय कर ले कि उसे युद्ध क्यों करना है और युद्धभूमि में किस मानसिक अवस्था में प्रवेश-करना है। अगर वो सोचता है कि वो अपने रिश्तेदारों सगे संबंधियों से युद्ध करेगा और उन्हें मारकर पाप का भागीदार बनेगा, बुरे कर्म कमाएगा, तो श्रीकृष्ण कहते हैं कि वो वास्तव में अपने सगे-संबंधियों को ही मार रहा होगा और पाप भी कमा रहा होगा। लेकिन अगर वो यह सोचता है कि वो अपना कर्तव्य करेगा क्योंकि यह एक क्षत्रिय का कर्तव्य है कि वो अपने राज्य और प्रजा को एक अनुचित नेतृत्व या आकस्मिक हमले से सुरक्षित करे, तो फिर वो अपना कर्तव्य कर रहा होगा और कर्तव्य पालन की पूर्ति पर अपना योग्य पुरस्कार पाएगा।

श्रीकृष्ण फिर अर्जुन को इस बात का दूसरा पहलू भी दर्शाते हैं। अर्जुन इस लड़ाई को भगवान की मर्जी मानकर भी स्वीकार कर सकता है। फिर वो जो भी करेगा वो केवल भगवान के आदेश का पालन ही होगा। फिर वो न तो अच्छाई के लिए, न बुराई को मिटाने के लिए न अपने कर्तव्य पालन के लिए युद्ध कर रहा होगा। वो तो सिर्फ भगवान की मर्जी या कहें तो परमात्मा के आदेश में खुद को समर्पित कर रहा होगा।

इस तरह के आज्ञापालन की सबसे बड़ी खूबसूरती यह है कि इसमें अर्जुन किसी फल की प्राप्ति के लिए युद्ध नहीं कर रहा होगा। इस तरह

अर्जुन कर्मों के जाल से बच जाएगा, वो जाल जो हमें बाँध लेता है अगर हम कर्म फल की इच्छा से करते हैं।

फिर श्रीकृष्ण उसे दिखाते हैं कि जिस युद्ध में अर्जुन अपने विकल्पों के बारे में सोच रहा है, वो युद्ध तो पहले ही लड़ा जा चुका है। ना सिर्फ अर्जुन के पास कोई विकल्प नहीं है अपितु वो तो पहले ही इस युद्ध का हिस्सा बन चुका है। भगवान की कृपा से प्राप्त हुए इस दृष्टिकोण से अर्जुन अपने भाग्य के साथ समझौता कर पाता है।

जहाँ तक बात श्रीकृष्ण की है तो जो वे अर्जुन से करने को कह रहे थे, वह तो पहले ही हो चुका था। फिर भी अर्जुन न तो हत्यारा था और न ही बचाने वाला। दोनों, हत्यारा और जिनकी हत्या हुई थी, वो एक ही सिक्के के दो पहलू थे.... भगवान की लीला के। हर एक योद्धा, जो जीता या हारा उसमें ईश्वर ही थे जिन्होंने युद्ध किया। तब अर्जुन को यह ज्ञान हो गया कि वो कर्ता नहीं है। उसके अंदर मौजूद ईश्वर ही हर कार्य का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। और अर्जुन के लिए वे ईश्वर हमेशा केवल श्रीकृष्ण ही थे जैसे हम सब के लिए सदा सिर्फ गुरूजी ही होने चाहिए। हमारा कर्मों से कुछ लेना देना नहीं है अगर यह एहसास हमें है कि वो गुरूजी है जो हमारे माध्यम से कार्य कर रहे हैं तो कर्म हमें छू भी नहीं सकते। हम कर्ता नहीं हैं, कर्ता गुरूजी हैं।

मूल रूप से देखा जाए तो हमारे कर्म अच्छे या बुरे इस बात पर निर्भर होते हैं कि हम कर्म करते हुए उसको क्या पहचान देते हैं और उस वक्त हमारा उद्देश्य क्या हैं। बस यही कारण होता है हमारे कर्मों के इकट्ठा होने का। एक बुरे इरादे से किया हुआ अच्छा दिखने वाला कर्म कभी भी अच्छा कर्म नहीं कहलाएगा। कर्मों के बोझ को निर्धारित करना बहुत सूक्ष्म कार्य है लेकिन कर्ता होने की रुचि हमें कर्मों का बोझ दे सकती है और देगी भी।

मान लीजिए एक संत हैं जिन्होंने सदा सत्य बोलने की कसम खाई है। वो जंगल में तपस्या कर रहे हैं, उनके पास से एक जानवर गुजर जाता है। कुछ समय पश्चात एक शिकारी गुजरता है और उनसे पूछता है कि क्या कोई शिकार यहाँ से गुज़रा है।

अब संत के पास दो विकल्प है– या तो वो सच बता दें और जानवर को मौत के हवाले कर दें या फिर झूठ बोलकर उसकी जान बचा लें। सबसे महत्वपूर्ण है– नीयत। अगर संत एक जिंदगी बचाना चाहते थे तो झूठ बोलने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। उनका सच बोलना उन्हें एक निर्दोष जानवर की

हत्या का जिम्मेदार बना देगा। क्या आप को लगता है कि इस परिस्थिति में उनका सच बोलना उनके पुण्य के खाते में लिखा जाएगा?

कर्म, हमारे कपड़ों की तरह है और हमारा शरीर आत्मा को दर्शाता है। हमारे कपड़ों की गुणवत्ता हमें दूसरों की नज़र में एक व्यक्तिगत पहचान दिलाती है। अगर मैं सुन्दर कपड़े पहने हूँ तो एक अच्छे व्यक्ति के रूप में पहचान पाता हूँ। अगर मैं गंदे कपड़े पहनता हूँ तो मेरी पहचान अच्छे व्यक्ति के रूप में नहीं होती। अगर मैं अपने शरीर से एकदम चिपके हुए वस्त्र पहनता हूँ जैसे वो मेरे शरीर का ही हिस्सा हों जो उतर नहीं सकते, तो मैं उनसे ही पहचाना जाऊंगा और वो मेरे शरीर का ही विस्तारित अंग बन जाएंगे। लेकिन अब अगर मैं ढीले-ढाले कपड़े पहनता हूँ तो यह समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी क्योंकि मैं कपड़ों से अलग हूँ। मैं जब चाहूँ वो कपड़े निकाल कर दूर रख सकता हूँ। तो अहम् बात यह है कि हमें हमारे कर्म ढीले-ढाले कपड़ों की तरह पहनने हैं कि हम उन्हें पहने तो हों पर वो हमारे शरीर का अभिन्न अंग न हों। इस तरह हम कपड़े पहनेंगे तो अवश्य पर वह हमारी पहचान नहीं होंगे। हम पर उनका बोझ नहीं होगा।

यह भावना तब आती है जब हम अपनी पहचान को जो, हम करते हैं उस से न जोड़ कर, जो हम महसूस करते हैं, उससे जोड़ते हैं। हम यह तब ही महसूस कर सकेंगे जब हमारे गुरूजी हमारे भीतर ही बस जाएंगे। ये तब होगा जब हम नियंत्रण उनको दे देंगे। हम अपने कर्म करते रहेंगे ढीले कपड़ों की तरह अपने कर्मों का बोझ उठाते रहेंगे क्योंकि यह हर मनुष्य जीवन का विषम चक्र है। लेकिन हमारे कर्म हमें परिभाषित नहीं करेंगे। हम हमारे गुरूजी से ही पहचाने जाएंगे। इसीलिए भगवान ने कहा कि हमें उनके पास आने से पहले सब कुछ छोड़ देना चाहिए।

क्या आपको कभी हैरानी होती है यह सोचकर कि समर्पण कैसे हो सकता है? हम शुरुआत अपने कर्मों को अस्वीकार करके कर सकते हैं। सरल भाषा में कहें तो, मैं वो नहीं हूँ जो कुछ भी मैं करता हूँ। यह मेरे गुरूजी हैं जो मुझसे सब करवाते हैं जिस क्षण हम अपने किए हुए कार्यों से अपना अधिकार हटा लेते हैं हम कार्य करना रोक देते हैं। हम कर रहे हैं से ये हमारे साथ हो रहा है, इसके बीच एक बहुत पतली रेखा है जो इन दोनों को विभाजित करती हैं और यह रेखा, हम क्या सोचते हैं उसके कारण बनती हैं। अगर हम अपने आप को कर्ता मानते हैं तो फिर यह हमारे कर्म हैं। और इन कर्मों के लिए फिर हमें जिम्मेदार भी ठहराया जाएगा। अगर हम सोचते हैं कि हम अपना कर्तव्य

निभा रहे हैं और हम उसे अच्छे से निभाएँ तो हमें उसका फल मिल जाता है। लेकिन अगर सोचते हैं कि हम कुछ नहीं करते, क्योंकि जो हो रहा है उसे गुरूजी ही नियंत्रित कर रहे हैं, तो फिर वास्तव में हम कुछ भी नहीं करते। जो कुछ भी हम से होता है उसके लिए हम जिम्मेदार नहीं ठहराए जाएंगे।

एक ही कार्य आप को सज़ा या पुरस्कार दिला सकता है, और यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप खुद को उस कार्य से कैसे जोड़ते है। एक डाक्टर मरीज़ का आपरेशन करता है लेकिन आपरेशन के दौरान मरीज मर जाता है, तो आप डाक्टर पर एक व्यक्ति की हत्या का इल्जाम नहीं लगा सकते। लगा सकते हैं क्या? वो तो मरीज की जान बचाने की कोशिश कर रहा था पर नहीं बचा पाया। लेकिन अगर उस डाक्टर को यह पता था कि वह उस मरीज़ का इलाज करने के योग्य शिक्षित नहीं है और फिर भी अपनी क्षमता की सीमा को जानते हुए वो आपरेशन करने का निर्णय लेता है, तो फिर तो उसे जवाब देना पड़ेगा। एक जैसे लगने वाले कर्मों के गुण अलग हो सकते हैं और परिणाम भी अलग हो सकते है।

हमारे संदर्भ में देखें तो, हम आसानी से यह सब गुरूजी पर छोड़ सकते हैं– कर्ता होने की भावना को, कर्म के उद्देश्य को, अपने विचारों को और यहाँ तक कि स्वयं कर्म को भी, ताकि हमारे सारे कर्म उनको दी हुई भेंट के रूप में उन्हें ही समर्पित हो जाएँ। फिर हमारे कर्म, अच्छे, बुरे, बेहद बुरे, कुछ भी क्यूँ ना हों परवाह नहीं। मेरे गुरु मेरे मालिक हैं। मैं नहीं जानता कि वो मुझसे क्या करवाते हैं क्योंकि मैं कुछ करता ही नहीं हूँ। मैं जो भी करता हूँ वो इसीलिए क्योंकि मेरे गुरूजी मुझसे वो करवाते हैं। "मेरा मुझ में कुछ नहीं" यह विचार समर्पण है।

एक बार फिर से पढ़ें जो भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा– "सब कुछ छोड़ कर मेरे पास चले आओ"। हमें भी बाकी सभी सहारे छोड़ देने चाहिए और केवल गुरूजी का ही सहारा लेना चाहिए। जैसा कि यह शबद् इतनी खूबसूरती के साथ कहता है:–

"ईक तक्या भरोसा तेरे चरणां दा होर सब्बे ढाईयां ढेरियाँ"

मैंने बाकी सारे सहारे छोड़ दिए। वास्तव में गुरूजी ही मेरा एकमात्र सहारा हैं। बाकी सब के सब समय सीमा से बंधे हुए और माया से लिप्त सहारे हैं।

समर्पण का मतलब है, जो मैं कर सकता था वो सब मैं कर चुका और अब मैंने गुरूजी के चरण-कमलों में शरण ले ली है। मैंने अपनी जिंदगी के बाकी सभी सहारे छोड़ दिए हैं। मैं गुरूजी के पास किसी भी अतिरिक्त सहारे के विकल्प के बिना आया हूँ। मेरे पास कोई और नहीं जिसके पास मैं जा सकूँ। अब, मेरे गुरूजी यह जानते हैं कि अगर वो मेरा ख्याल नहीं करेंगे तो मेरा कुछ नहीं होगा। मेरे लिए, गुरूजी का कोई विकल्प नहीं है। मैं वहाँ जाता हूँ जहाँ मेरे गुरूजी मुझे ले जाते हैं हर क्षण में मैं वहाँ मौजूद हूं जहाँ मेरे गुरूजी हैं। गुरूजी ही मेरा भाग्य हैं।

हम सब रेलगाड़ी के डिब्बों की तरह हैं जो इंजन के पीछे बंधे हैं और जहाँ उन्हें इंजन ले जाता है वो वहाँ चले जाते हैं। 'डब्बों के पास कहाँ जाना है यह चुनाव करने का विकल्प नहीं है। वो इंजन चुन सकते हैं मगर अगर वो गलत इंजन से जुड़ गए तो गलत मंजिल पर ही पहुँचेंगे।

संक्षिप्त में फिर से कहें तो, जो महत्वपूर्ण है वो है हमारी नीयत। जो कुछ भी हमारी जिंदगी में घटित होता है उसका नियंत्रण परमात्मा के पास है। हमारे अंदर की दिव्य शक्ति वो करती है जो भगवान कराते हैं। अगर हम सोचते हैं कि हम कर रहे हैं तो फिर हम ही कर रहे हैं और हमको या तो भुगतान करना पड़ेगा या फिर उसके लिए हमें फल मिलेगा। अगर हम सोचते है कि हम तो केवल भगवान के आदेश का पालन कर रहे हैं, फिर हम आदेश का ही पालन कर रहे हैं। उन कर्मों से और उनके परिणामों से हमारा कुछ लेना-देना ही नहीं है। यह इतनी ही साधारण बात है।

इसीलिए आंतरिक शुद्धता महत्वपूर्ण है। हम जो भी करें साफ दिल से करें। गुरूजी ने इस बात पर काफी ज़ोर दिया जब उन्होंने एक पुरानी कहावत को दोहराया जिसमें कहा गया है, "जब मन चंगा तो नलके में गंगा'' अर्थात् अगर आप का मन साफ है तो नल का पानी भी पवित्र गंगाजल की तरह शुद्ध है।

अपने आप को अपने कर्मों से मत जोड़िये। हर कर्म को हर समय भगवान या गुरूजी को समर्पित कर दीजिए यह कहकर कि "जैसी आपकी इच्छा। आपकी इच्छा ही प्रबल हो"

भगवान श्रीकृष्ण ने यह एक साधारण-सी युक्ति बताई जिसके द्वारा हम अपने कर्मों के परिणामों से बच सकते हैं। पर जो कर्म हम पहले ही कर चुके हैं उन कर्मों का क्या? ये संसार और हमारा प्रारब्ध कर्मों की ही उत्पत्ति है। संत तुलसी दास द्वारा रचित रामचरितमानस का एक छंद इस बात को बहुत बढ़िया तरीके से बताता है।

"कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहि सो तस फल चाखा।"

आप जो बोते हो आप वो ही काटोगे। जो बीज हम ज़मीन में डालते हैं वो ही बढ़ कर फल बनते हैं। हम कीकर का पेड़ लगाकर आम पाने की उम्मीद नहीं कर सकते।

जैसा की मानस हमें इशारा देती हैं, यह भौतिक संसार ही है जहाँ हमारे कर्मों का हिसाब-किताब हो कर हमें उनका भुगतान करना है। हमारा खाता इस ही संसार में चुकता होता है क्योंकि कर्म यहीं इन्हीं भौतिक परिस्थितियों में ही किए जाते हैं। जब हमारे कर्मों का यहाँ भुगतान हो जाता है तो हम आध्यात्मिक दुनिया में जल्दी से तरक्की कर लेते हैं।

फौज में हर तरक्की से पहले युद्ध के मैदान में दुश्मनों के आमने-सामने हो कर एक कठिन और चुनौती पूर्ण कार्यकाल से गुज़रना पड़ता है। हमारी शांति-काल की तैनाती के दौरान हमारे बेहतरीन प्रदर्शन का कुछ खास महत्व नहीं रहता अगर युद्ध के दौरान हुई तैनाती में हमारा प्रदर्शन खराब हो। हमारे प्रदर्शन का महत्व सबसे ज्यादा तब होता है जब हमारी अपनी जिंदगी और हमारे नीचे हमारे आदेश में कार्यरत फौजियों की जिंदगियाँ खतरे में हो।

इस दुनिया में हमारा होना, युद्ध-स्थल में तैनात होने जैसा है। हमारे यहाँ आने के पीछे जो प्रेरणा होती है वो है कि हम अपने कर्मों का जितना हो सके उतना भुगतान कर के पहले से बेहतर कर्म करें, बेहतरीन बनें और अपने चुने हुए इष्ट या गुरु के करीब हो जाएँ। हमने स्वयं अपनी ही इच्छा से यहाँ नीचे आकर चीज़ों को ठीक करना और गलतियों को न दोहराना स्वीकार किया और फिर वादा किया कि जब हमारे कर्मों का हिसाब-किताब हो जाएगा तो हम लौट जाएंगे। हमारा प्रदर्शन ही तय करेगा कि हमें आध्यात्मिक दुनिया में तरक्की मिलेगी या नहीं। यूँ भी कह सकते हैं कि वो दुनिया हमारी शांति-काल की तैनाती जैसी होगी।

अगर सोच कर देखें तो अपने दम पर यह कर पाना नामुमकिन सा कार्य है जिसमें नतीजों के पहले से भी ज्यादा खराब होने का एक बड़ा खतरा है। हम यहाँ आते हैं अपने कर्मों का हिसाब-किताब कर भुगतान करने, पर हो उल्टा जाता हैं, हम कुछ अतिरिक्त कर्म एकत्रित कर लेते हैं। वो भाग्यशाली हैं जिन्हें एक योग्य गुरु मिल जाते है, जो उन्हें अपनी शरण में ले कर उनके कर्म कटवा देते हैं। वो अपने भक्त का, युद्ध के मैदान में विस्फोटक बिछे होने

की परिस्थिति में, हाथ पकड़कर मार्गदर्शन करते हैं। वे पहले अपने भक्त के दुनिया और कर्मों से जुड़े हिसाब-किताब का भुगतान कराते हैं फिर उसे आशीर्वाद देते हैं।

इस आशीर्वाद प्राप्ति की तैयारी की प्रक्रिया में यदि कुछ कष्ट और दुख सहने पड़ेंगे तो वह भी गुरूजी के मार्गदर्शन और उनकी कड़ी सुरक्षा की निगरानी में ही होगा। तकलीफों की सीमा भक्त के पिछले जन्मों के कर्मों के खाते पर निर्भर करती है। इस बात की रोशनी में अगर देखें तो पाएंगे कि बेहतरीन से बेहतरीन व्यक्ति भी कुछ-कुछ खराब परिस्थिति में ही है।

हम में से हर एक ने इस दुनिया रूपी युद्ध मैदान में तैनाती को सिर्फ एक ही मकसद से स्वीकार किया है और वो है अपने कर्मों के बोझ से छुटकारा पाना। लेकिन जब एक बार इस दुनिया में व्यक्ति जन्म ले लेता है तो वो ईश्वर से किए हुए अपने सारे वादों को भूल जाता है। एक शबद् है जो गुरूजी ने 'एम्पायर एस्टेट' में हमें बहुत बार सुनवाया। उसका सारांश है कि "तुम भगवान या गुरु से किए हुए अपने सब बड़े-बड़े वादे भूल गए हो। जब तुम माँ के गर्भ में थे, तुमने वादा किया था कि तुम ईश्वर का नाम जपोगे, उनके गुण गाओगे, अपने आप को शुद्ध करोगे और सिर्फ सही कर्म ही करोगे। अब खुद को देखो, तुम तो सब भूल चुके हो और झंझटों में फंस चुके हो"।

शुक्र है हमारे पास गुरूजी हैं। वे हमें गलती करने से बचा लेंगे। अगर गुरूजी हमें युद्ध के मैदान में भेजते हैं तो वे ही यह निश्चित करेंगे कि हम मूर्खता-भरा कुछ भी कार्य-ना करें। यही बात श्रीकृष्ण ने कही जब शिष्य अर्जुन ने उनसे पूछा:-

"भगवन जब आपका भक्त सही मार्ग से भटक जाता है और गलतियाँ करता है तो आपके उस भक्त का क्या होता है? क्या वो आपकी कृपा का पात्र नहीं रहता? आप उसके साथ क्या करते हो? भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि वो अपने भक्त को कभी कृपा दृष्टि से गिरने ही नहीं देते"।[13]

---

[13] भगवद गीता, अध्याय- नौवाँ-श्लोक 3।

क्षिप्रं भक्ति धर्मात्मा शान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।

अथार्त- वो जल्द ही धार्मिक बन जाते हैं और एक चिरकाल तक रहने वाली शांति को पा लेते हैं। हे कुंती पुत्र, मैं साहसपूर्वक घोषित करता हूँ कि मेरा कोई भी भक्त कभी भी नहीं खोया होता। http://www-holybhagwad-gita.org/CH.9. verse3/

सच्चे गुरु अपने भक्त के कर्मों के भुगतान अपने खाते से भी करने को तैयार रहते हैं। जब गुरूजी हमारे लिए कष्ट उठाते हैं तब वो अपने खाते में से हमारे लिए भुगतान कर रहे होते हैं उन सब कर्मों के लिए जो हमने किए। वो अपने खाते से भुगतान करते हैं क्योंकि हम तो कंगाल हैं हमारे पास अपने खाते से भुगतान करने के लिए कुछ है ही नहीं। गुरूजी हमारा हिसाब-किताब चुका देते हैं। यह ऐसा है जैसे गुरूजी का खाता हमारे खाते से जुड़ गया हो। भक्त कितना भी खर्च करे उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक भक्त अपने गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित है। ये कर्मों का घाटा गुरूजी पूरा करते रहेंगे। यह कहने के साथ ही यह भी कहूँगा कि हमें अब आगे के अपने कर्मों की जिम्मेदारी लेनी चाहिए। गुरूजी अपने ऊपर इतने कष्ट ले लेते हैं क्योंकि वे अपनी संगत को कष्ट उठाते नहीं देख सकते। हमारे गुरूजी परम पिता परमात्मा हैं, दिव्य ज्योत हैं और वो हमारा हाथ सुख और दुख में सदा पकड़े रहते हैं। वो यह सुनिश्चित करेंगे कि हमारे कर्मों का हिसाब-किताब उनके द्वारा तय किए रास्तों से हो, न की हमारी की हुई कोशिशों के हिसाब से। हमें तो सिर्फ इतना करना है कि नियंत्रण उनको सौंप देना है।

हम अपने कर्मों के खाते का भुगतान कैसे करें? अच्छे कर्म बैंक खाते में जमा किए हुए पैसों की तरह हैं जबकि बुरे कर्म कर्ज़ की तरह हैं। सोचिए, हर बार जब हम कुछ अच्छा करते हैं तो हमारी जमा-पूंजी बढ़ जाती है और हर बार जब हम गलती करते हैं तो जो हमारे खाते में जमा-पूंजी है वह खर्च हो जाती हैं। अक्सर हम इतना ज्यादा खर्च कर देते हैं कि न सिर्फ खाते में बचत शून्य हो जाती है अपितु हम पर बैंक का कर्जा भी चढ़ जाता है। अब समस्या पैदा होती है। कर्जा तो चुकाना ही पड़ेगा। खाते का संतुलन जरूरी है। यह कर्मों के कर्ज का भुगतान मुख्यतः कष्टों को सहन करके ही किया जाता है।

यहाँ तक कि जो लोग हमारी जिंदगी में आते हैं वो भी अपने कर्मों का बकाया चुकाने के लिए ही आते हैं। जैसे हम अपने कर्मों का बकाया चुकाने उनकी जिंदगी में आते है। सिर्फ गुरु ही हैं जो हमारी जिंदगी में हमारे ही कर्मों का हिसाब-किताब सुलझाने के लिए आते हैं, अपने कर्मों का नहीं। वो हमारी जिंदगी में, हमें आशीर्वाद देकर अध्यात्म के लिए तैयार करने के लिए ही प्रवेश करते हैं।

अपने कर्ज का भुगतान करने का एक दूसरा रास्ता भी है– निस्वार्थ सेवा करके अपने कर्मों के खाते का हिसाब-किताब सकारात्मक कर लेना।

उदाहरण के लिए, अगर हम बड़े-बुजुर्गों की सेवा करते हैं, उनकी तकलीफें कम करते हैं तो हमें उनसे आशीर्वाद प्राप्त होता है। उनकी तकलीफों ने उन्हें हमें आशीर्वाद देने की शक्ति दी है। इसी प्रकार एक गरीब, जो कष्ट सह रहा है, वो भी हमें आशीर्वाद दे सकता है। आशीर्वाद देने की क्षमता केवल उनके पास होती हैं जो कष्ट सहन कर चुके हैं। एक माँ का आशीर्वाद ज्यादा मूल्यवान होता हैं क्योंकि उसकी तकलीफें उसके कष्ट पिता के मुकाबले ज़्यादा होते हैं। इसलिए हमारी जिंदगी में माँ का बहुत आदर सम्मान होता है। एक तरह से स्त्री होना ही अपने-आप में काफी कष्टदायक है। हमारी जिंदगी में एक स्त्री के पास हमें आशीर्वाद प्राप्त करने के योग्य बनाने के लिए एक खास क्षमता होती हैं।

अच्छे कर्मों का संकलन और बुरे कर्मों के भुगतान का सबसे आसान रास्ता है हमारी जिंदगी में मौजूद औरतों की इज्जत करना, उन्हें प्यार करना और उनका ख्याल रखना फिर चाहे वो हमारी माँ, हमारी पत्नी, हमारी बहन, प्यारी बेटी, हमारे पड़ोस में रहने वाली महिला या फिर एक महिला संगत ही क्यों न हों। गुरूजी कहा करते थे कि वो 'आंटियों' को पहले आशीर्वाद देते हैं क्योंकि आंटियाँ हमेशा अपने पूरे परिवार का सोचती हैं। अंकल पहले अपने बारे में सोचते हैं। एक पिता सोचता है कि अगर उसे आशीर्वाद मिला तो वो परिवार का ख्याल रख सकता है। एक स्त्री का यह विश्वास है कि उसके बच्चे, उसका पति उसके माता-पिता, सास-ससुर को पहले आशीर्वाद मिलना चाहिए, उसकी तकलीफ उसके कष्ट तो बाद की बात है।

क्योंकि हम पहले से ही इतने कर्मों का बोझ लेकर इस जिंदगी में आए हैं तो यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम गुरूजी से अपनी इच्छाएँ, मांगे पूरी करने की जिद करके इस बोझ को न बढ़ाएँ। अगर हम गुरूजी से कुछ माँगेंगे ही नहीं तो फिर हमें आशीर्वाद के रूप में जो भी मिलेगा उसका भुगतान हमें नहीं करना पड़ेगा। गुरूजी अपने आशीर्वाद से हमारी जरूरत या वो इच्छा जो हमारे लिए फायदेमंद होगी हमारे बिना कुछ कहे ही पूरी कर देंगे। अगर हम अपनी सेवा या अच्छे कर्मों के परिणाम का फल माँगेंगे तो फिर यह मिला हुआ फल सीमित मात्रा में होगा और समय सीमा में बंधा होने के कारण नष्ट होने वाला होगा। आशीर्वाद तो सदा के लिए होता है।

गुरूजी का सुनवाया हुआ एक शबद् इस बात का अच्छे से विश्लेषण करता है। एक संत पुरुष ने सौ वर्षों तक तप किया। भगवान प्रसन्न हुए और

तपस्वी से कहा कि वो एक वरदान माँग ले। तपस्वी ने कहा कि उसे वरदान नहीं चाहिए बल्कि उसे उसकी सौ वर्षों की तपस्या का फल चाहिए।

भगवान ने उसे समझा कर फिर सोचने को कहा और फिर पूछा, "तुम्हें तपस्या का फल चाहिए या मेरा आशीर्वाद?" उस मोहित तपस्वी ने पुनः कहा कि उसे तो तपस्या का फल ही चाहिए। भगवान उसे वो फल देने ही वाले थे कि तब ही शिला, जिसपर बैठकर तपस्वी ने इतने वर्षों तक तप किया था, स्त्री रूप धारण करके बोल उठी। उसने कहा कि पहले तपस्वी मेरा हिसाब चुकाए, इसने मुझ पर 100 वर्ष बैठकर तप किया है अब यह मुझे सौ वर्षों तक अपने ऊपर धारण करे।

याद रखिए, हम जिस किसी फल की इच्छा करते हैं जरूरी नहीं कि वो हर फल केवल हमारे प्रयत्नों के कारण ही मिल रहा हो। किसी भी प्रयास के फल-प्राप्ति तक पहुंचने में बहुत सारे अन्य व्यक्तियों और परिस्थितियों का भी योगदान होता है। तपस्वी को तुरंत ही अपनी भूल का एहसास हो गया और उसने स्वीकार कर लिया। उसको अपने तप के कारण पैदा हुए कई हिसाब-किताब चुकाने पड़ते तो उसके लिए तो कुछ बचता ही नहीं। संगत होते हुए हमें भी अपनी सारी समस्याएँ गुरूजी को ही संभालने देनी चाहिए। इसके लिए हमें अपने स्वार्थ पूर्ण कार्य छोड़ने पड़ेंगे और गुरूजी से कुछ माँगना भी नहीं होगा। अगर गुरु खुश हैं तो वो हमें यूँ ही अपना आशीर्वाद दे देंगे– और आशीर्वाद की ताकत हमें जो चाहिए उस रूप में प्रकट हो जायेगी।

इसलिए, हमें जो करना है वो केवल इतना कि हम गुरूजी के साथ रहें। हमारे अंदर मौजूद दिव्यांश को गुरूजी से जुड़ जाने दें और छोड़ दें।

मेरे प्रारम्भिक वर्षों के दौरान, मैंने अध्यात्म संबंधित अधिकांश ज्ञान मेरे ही नाम वाले अंकल 'श्री राज कुमार शर्मा जी' से प्राप्त किया। वो मेरे पिताजी की उम्र के एक बेहद विकसित और जागृत आत्मा थे और हम दोनों के बीच एक अनौपचारिक गुरु-शिष्य का संबंध था।

जब कभी भी मैं छुट्टियों में घर वापिस आता हम घंटों साथ रहते और भारतीय शास्त्रों से प्राप्त हुई अध्यात्म की महान विद्या के बारे में विचार-विमर्श करते। यह संबंध लगभग दो दशकों तक चला और दिव्यता के साथ मेरे सीमित अनुभव की रीढ़ की हड्डी बना। एक दिन उन्होंने भगवान से जुड़ा अपना सारा ज्ञान केवल एक ही वाक्य में कह दिया। उन्होंने मुझे बताया कि वह एक पूरा जीवन शास्त्रों को पढ़कर, आध्यात्मिक गुरुओं के पास बैठकर

और ध्यान लगाकर आखिर में एक ही चीज़ समझ पाए, कि उन्हें यह सब करने की आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि समझने के लिए कुछ था ही नहीं। अंत में उन्हें भगवान को समर्पण करना पड़ा जो वो बहुत पहले ही कर सकते थे। उनकी मेरे लिए केवल एक ही सलाह थी वो यह कि भगवान को समझने और जानने के लिए यहाँ वहाँ भटकना छोड़ दो। समझ पाने के लिए कुछ है ही नहीं। हाँ हर अनुभव को ग्रहण करो। परमात्मा को केवल समर्पण कर दो और फिर उन्हें ही हर चीज़ संभाल लेने दो। जो जब होना है हो जाएगा।

और वो कितने सही थे। मुझे भी परमात्मा मिले जब फरवरी 18, 2001 को मुझे गुरूजी महाराज की दिव्य उपस्थिति में बुलाया गया। उसी के साथ मेरी ज्ञान की खोज समाप्त हो गई और मेरी आत्मा का परमात्मा के साथ अनुभव शुरु हुआ।

गुरूजी ने अपनी संगत को समझाया कि जो भक्त अपने घोड़ों की लगाम गुरूजी हाथों में दे देते हैं, उनके घोड़े गुरूजी सीधा ही हांकते हैं। घोड़ा है हमारी समझ, हमारी बुद्धि, जो हमारे शरीर को चलाती है। अगर हम इसका नियंत्रण गुरूजी को दे देंगे तो हम सीधा-सीधा सोचेंगे, सीधे-सीधे काम करेंगे और कोई भी बुरा कर्म इकट्ठा नहीं करेंगे। परिणाम-स्वरूप हम आशीर्वाद के लिए तैयार हो जाएंगे और इस संसार सागर को पार करके गुरूजी के पास पहुँचने के लिए उनके बनाए जहाज पर चढ़ने के योग्य हो जाएंगे। बृहदारण्यक उपनिषद एक छोटे से वंदनीय छंद में संगत की इस यात्रा की अभिलाषा को कुछ इस तरह व्यक्त करता है:—

"असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय।"

अर्थात — मुझे झूठ से सच की ओर ले चलो, अंधेरे से रोशनी की ओर ले चलो, और इस जन्म-मरण के बंधन से शाश्वत स्वतंत्रता की ओर ले चलो। यूँ कहें तो, भक्ति हमें अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाती है और गुरूजी से दूरी (द्वंद) की स्थिति, से गुरूजी में ही समा जाने स्थिति तक (गुरूजी के साथ एक हो जाना) ले जाती है, जहाँ हम उन्हीं का एक हिस्सा बन जाते हैं।[14]

---

[14] पूर्ण अर्थ के लिए देखें — https://www-amritapuri-org/3733/asatoma-com

कर्म नियंत्रण करते हैं कि इस जन्म–मरण पुनर्जन्म के अंतहीन चक्र में हमारा स्थान कहाँ है– नरक में या स्वर्ग में। गुरूजी को समर्पण, संगत को इस चक्र से बाहर निकाल देता है और उसे गुरूजी के चरण कमलों में सदा के लिए एक स्थान दे देता है। हम सब सदा गुरूजी महाराज के साथ रहें। वो हमें कभी भी नहीं छोड़ेंगे। विश्वास करें यदि हम उन्हें अपना रथ चलाने दें तो हम सब सर्वदा अच्छे से ही रहेंगे।

भ्रांतियों का अप्रत्यक्ष खेल

जैसा कि पहले के अध्यायों में बताया गया है, मैं गुड़गाँव के 'डी एल एफ सिटी क्लब' में अपने परिवार के साथ रात का खाना खा रहा था, जब मुझे सिंगला अंकल का फोन आया, जिसमें कहा गया था कि गुरूजी मुझसे गुड़गाँव में आयोजित होने वाले सार्वजनिक सत्संग के बारे में बात करना चाहते हैं। मैंने उनसे कहा कि मैं क्लब में हूँ और तुरंत एम्पायर एस्टेट पहुँच रहा हूँ। सिंगला अंकल ने कर्तव्यपरायणता के साथ गुरूजी को इसकी सूचना दी, जिन्होंने मुझे न आने का निर्देश दिया और कहा कि वे जनरल कपूर अंकल से बात करेंगे, जो उस समय एम्पायर एस्टेट में ही थे। गुरूजी ने उन्हें गुड़गाँव की संगत को आशीर्वाद देने की अपनी इच्छा से अवगत कराया।

जनरल कपूर अंकल के अनुसार, उन्होंने एम्पायर एस्टेट से बाहर कदम रखा और मुझसे मिले, जहाँ उन्होंने मुझे गुरूजी की गुड़गाँव आने की इच्छा के बारे में बताया और मुझे इस सार्वजनिक समारोह की तैयारी करने का निर्देश दिया। लेकिन मैं एम्पायर एस्टेट में नहीं था, मैं सिटी क्लब में डिनर कर रहा था! एम्पायर एस्टेट में जनरल कपूर मुझसे कैसे मिले?

बहुत देर तक मैं सोचता रहा कि जनरल कपूर अंकल ने तथ्यों को मिला दिया होगा। लेकिन मैंने इसे रहने दिया क्योंकि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था।

फिर, एम्पायर एस्टेट में एक भक्त जोड़ा था, एक घुंघराले बालों वाली महिला और उनके पतले से पति, जिसे हम शनिवार को नियमित रूप से देखते थे। फिर वर्षों बाद यह महिला बड़े मंदिर आई और मेरी पत्नी के साथ बर्तन साफ करने की सेवा में शामिल हो गई। मेरी पत्नी ने तुरंत उन्हें पहचान लिया और एम्पायर एस्टेट में उन बीते दिनों के बारे में उससे बात करने लगी। महिला मेरी पत्नी की बातों सुन कर हैरान हो गई।

मेरी पत्नी जो कह रही थी, वह उन बातों को समझ नहीं पा रही थी, क्योंकि उनके अनुसार वह 2012 में ही गुरूजी के पास आई थी और उन्होंने कभी महाराज को एम्पायर एस्टेट में वास्तविक रूप में नहीं देखा था। अब हैरान होने की बारी मेरी पत्नी की थी। यदि यह जोड़ा वहाँ नहीं था, तो हम उन सभी वर्षों में शनिवार को एम्पायर एस्टेट में किसे देख रहे थे?

इसके अलावा, जब हम श्रीलंका छुट्टियाँ मनाने गए थे, तो हमें अपनी बेटी को चेन्नई से कोलंबो की उड़ान में लाने के लिए संघर्ष करना पड़ा था। हवाई अड्डे से शहर जाने के लिए हमारे पास एक घंटा था, उसके पासपोर्ट पर उचित रूप से मुहर लगवाकर वापस हवाई अड्डे पर लौटकर आना था। इस कार्य के लिए उपलब्ध समय बहुत कम था। हमने गुरूजी पर भरोसा किया और आगे बढ़ने का फैसला किया। चेन्नई में औपचारिकताएँ पूरी करते हुए, हम समय से बहुत पीछे चल रहे थे। हालाँकि, चेन्नई से हवाई अड्डे तक की हमारी यात्रा में बहुत थोड़ा समय लगा और – वाह! जल्द ही – हम हवाई अड्डे पर थे, जैसे कि हमें टेलीपोर्ट किया गया हो। हमने हमेशा इस तरह के आशीर्वाद को ग्रहण किया, गुरूजी को धन्यवाद दिया और कृतज्ञता पूर्वक आगे बढ़े।

और अंत में, मेरी पत्नी का दूसरे आयाम को पार करने का अविस्मरणीय अनुभव जब वह बड़े मंदिर में गुरूजी के आसन के पास बैठी और उनकी जूती ने उसके घुटने को छुआ।

इस पुस्तक में अन्यत्र वर्णित ये सभी घटनाएँ मेरी समझ से परे थीं। मुझे हमेशा उम्मीद थी कि किसी दिन महाराज मुझे इन घटनाओं की मूलभूत समझ देंगे। फिर मैंने शिव पुराण पढ़ा, जहां मैंने ऋषि नारद की कामदेव पर विजय की कहानी पढ़ी– जैसा कि ऋषि इसे देखते थे।

हुआ ऐसा कि ऋषि नारद ने उसी स्थान पर तपस्या में बैठने का विकल्प चुना था, जहाँ भगवान शिव ने एक अलग कल्प में, सभी इच्छाओं के स्वामी, काम को नष्ट कर दिया था। देवताओं के प्रमुख, इंद्र ने काम के ही माध्यम से नारद को तपस्या से हटाने की कोशिश की, लेकिन असफल रहे। ऋषि नारद ने सोचा कि उन्होंने कामदेव को हरा दिया है, यह नहीं जानते हुए कि वह ऐसे वातावरण में बैठे हैं जहाँ भगवान शिव ने सभी इच्छाओं को जलाकर राख कर दिया था। उन्होंने अपने द्वारा कामदेव पर विजय का दावा किया और अपनी विजय गाथा सुनाने के लिए भगवान ब्रह्मा के पास गए। निर्माता ने उन्हें इस कहानी को अपने पास रखने की सलाह दी और विशेष रूप से उन्हें भगवान शिव के समक्ष प्रकट न करने की चेतावनी दी। लेकिन ऋषि अपने अहंकार से ग्रस्त थे और उन्होंने जाकर भगवान शिव को बताया। भगवान शिव ने भी उनके कौशल की सराहना की, लेकिन उनसे अनुरोध किया कि वे भगवान विष्णु के सामने घटना के बारे में एक शब्द भी न कहें।

मेरे विचार में, मानो, यहाँ नारद जी के साथ भगवान शिव लीला कर रहे थे। शायद उन्हें श्री भगवान विष्णु के पास न जाने के लिए कह कर ठीक वैसा ही करने के लिए उकसाया जा रहा था। नारद ने सलाह सुनी और तुरंत वैकुंठ के लिए रवाना हो गए, जहाँ उनके इष्ट निवास करते थे। भगवान विष्णु ने उनकी बात सुनी और महसूस किया कि उनका भक्त अहंकार में आ गया है और अपने आप को कर्ता समझने लगा है। ऋषि नारद के चुने हुए इष्ट होने के कारण भगवान विष्णु इसे और आगे बढ़ने नहीं दे सकते थे, क्योंकि देर–सबेर यह अहंकार नारद मुनि को विनाश की ओर ले जा रहा था। नारद मुनि को सही रास्ता दिखाना आवश्यक हो गया था।

नारद मुनि में सुधार लाने के लिए भगवान विष्णु कामदेव को तैयार करते हैं, जिनके ऊपर नारद ने सोचा था कि उन्होंने जीत हासिल कर ली है। आनंद से परिपूर्ण नारद के जाने के बाद, भगवान विष्णु एक भ्रम पैदा करते हैं, एक नया संसार, नया राज्य, विशेष रूप से नारद के लिए। वैकुंठ से बाहर अपनी यात्रा में, नारद इस मोहक दुनिया में कदम रखते है। एक ऐसा राज्य जहाँ एक सुंदर राजकुमारी स्वयंवर की रस्म निभा रही है, जिसमें वह अपने पति का चयन करेगी। एक से बढ़कर एक शक्तिशाली योद्धा राजा उसका हाथ माँगने आए हैं। वह इतनी सुंदर है कि तपस्वी नारद भी उसपर मोहित हो जाते हैं। वह वापस भगवान विष्णु के पास जाते हैं। नारद जानते हैं कि उनकी इच्छा पूरी हो सकती है यदि भगवान उन्हें अपने स्वयं के मनमोहक रूप का एक हिस्सा देने के लिए सहमत होते हैं। "अगर मैं उस राजकुमारी से विवाह कर पाऊँ, तो मैं जीवन भर प्रसन्न रहूँगा," वे भगवान विष्णु से कहते हैं। भगवान विष्णु तुरंत सहमत हो जाते हैं और ऋषि नारद सौंदर्य से दीप्तिमान हो जाते हैं। हालांकि, यह एक छल है। नारद को भगवान का सुंदर रूप नहीं, बल्कि एक बंदर का चेहरा मिलता है। नारद अपने सुंदर वस्त्रों में योद्धाओं के बीच जा कर बैठ जाते हैं और एक मिनट के लिए भी संदेह नहीं करते कि वह वानर की तरह दिख रहे हैं। एक विवाह प्रस्तावक के रूप में उन्हें अस्वीकार कर दिया जाता है।

व्याकुल नारद को आश्चर्य होता है कि ऐसा हुआ क्यों। वह अपने चेहरे को प्रतिबिंब में देखते हैं, और समझ जाते हैं कि उनके साथ छल हुआ है। वह भगवान विष्णु से क्रोधित और परेशान होकर सभा से बाहर भाग जाते हैं। वह भगवान विष्णु को एक तरफा प्रेम के दर्द से पीड़ित होने का श्राप देते है, जो

भगवान विष्णु के अवतार भगवान राम और उनका अपनी पत्नी देवी सीता से वियोग का बीज बन जाता है।

भगवान विष्णु को श्राप देने के बाद माया का पर्दा हट जाता है। नारद मुनि तुरंत पछताते हैं। उन्हें एहसास होता है कि उन्होंने क्या गलत किया है। वास्तव में वह कामदेव के जाल से ऊपर नहीं उठ पाए थे। वह गहरा पश्चाताप करते हैं और प्रभु से क्षमा माँगते हैं। अब उनका अहंकार समाप्त हो चुका था।

यहाँ मुझे यह समझ आई कि जैसे भगवान विष्णु ने नारद के लिए किया था, वैसे ही गुरूजी महाराज भी एक भ्रम पैदा कर सकते हैं जो विशेष रूप से उनके प्रत्येक भक्त के लिए हो सकता है। इस भ्रम को हम माया कहते हैं। हम में से प्रत्येक के लिए विशिष्ट भ्रम हो सकता है, और शायद है भी। ये दुनिया, जैसा कि हम इसे समझते हैं, हम में से प्रत्येक के लिए विशिष्ट है। हम में से प्रत्येक अपनी ही कहानियों के अंदर रहते हैं। मेरी दुनिया में आप हो सकते हो, लेकिन यह आपकी दुनिया नहीं है। आपकी दुनिया में भले ही मैं हो सकता हूँ, पर वो मेरी दुनिया नहीं हैं। इस प्रकार, एक ही घटना के सभी संस्करण सही हो सकते हैं। यानी, जनरल कपूर और मैं, दोनों, एक समान स्थिति में अपने वृतांत का अनुभव करने के तरीके में सही हो सकते हैं।

इसी तरह, जिन भक्तों को हमने सोचा था कि वो एम्पायर एस्टेट में वर्षों से थे लेकिन जिन्होंने उस समय वहाँ होने से इनकार किया, वे मेरे भ्रम में एम्पायर एस्टेट में मौजूद थे। हम सभी के पास साधारण रूप से हमारे भ्रम होते हैं जो कि हमारे अभिमान का आधार हैं। हम में से प्रत्येक को अपने अहंकार से मुक्त होने की आवश्यकता है और वह तब होता है जब अहंकार जैसी निरर्थक चीज को हमारे गुरूजी छुड़वा दें।

बहुत बार हम गुरु के बजाए, लोगों के इर्दगिर्द भाग रहे होते हैं, उनसे ही इस भूल भुलैया से बाहर निकलने का रास्ता माँग रहे होते हैं। चूंकि हमें सलाह देने वाले अपने ही भ्रम में बंधे होते हैं, इसलिए उनके सुझाव एक और भ्रामक हल से अधिक कुछ नहीं होते हैं।

और यह आमतौर पर काम नहीं करता है क्योंकि वह समाधान हमारे कर्म और हमारे सामने आने वाली माया की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं होता है। तो, माया से बाहर आने के बजाय, हम सुझाव देने वाले की माया का हिस्सा बन जाते हैं।

माया से बाहर निकलने का एक तरीका तो यह है कि हम स्वयं इससे बाहर आने का प्रयास करें। यह अत्यंत कठिन है। भ्रम के बारे में जाना नहीं जा सकता क्योंकि इसके बारे में वर्णन करने वाले साधन भी इसी का हिस्सा हैं। हमारी इंद्रियां, हमारा मस्तिष्क, हमारी बुद्धि भ्रम के बाहर नहीं हैं, बल्कि इसमें भागीदार हैं। कल्पना कीजिए कि आप उन उपकरणों के माध्यम से वास्तविकता को देखने का प्रयास कर रहे हैं जो स्वयं असत्य हैं। हमें इसके बारे में कभी भी सही राय नहीं मिलेगी। साथ ही, जब हम भ्रम में होते हैं, तो हम जो कुछ भी करते हैं, सोचते हैं और इच्छा करते हैं, वह शरीर के कर्मों का हिस्सा बन जाता है। कर्मों का बोझ घटने के बजाए और बढ़ जाता है।

हमें एहसास तो है कि, हम माया में लिपटे हुए हैं और इस से बाहर निकलना भी चाहते हैं। हम यह भी महसूस करते हैं कि यह दुनिया हमारे मन और हमारी इच्छाओं से बनी है। माया के चंगुल से बाहर निकलने के लिए सबसे आसान विधि यह लगाती है कि हम उन नियमों तथा विधियों को अपनाएँ जिनकी व्याख्या संसार के विभिन्न धर्मों में की गई है। उदाहरण के लिए, हम गूढ़ मंत्रों का पाठ कर सकते हैं, माला के मनकों को करोड़ों बार जप सकते हैं, उपवास कर सकते हैं, योगाभ्यास करते हुए खुद को खटखटा सकते हैं और तब तक ध्यान कर सकते हैं जब तक कि दिन और रात एक न हो जाएँ। हम अपने आप को सुख से वंचित भी कर सकते हैं, संयमी हो सकते हैं, जटिल अनुष्ठान कर सकते हैं। पर क्या हम माया से बाहर निकलेंगे? शायद! हर समय हमें बहुत सावधान भी रहना होगा कि कहीं प्रस्तावित समाधान हमें एक और भ्रम में तो नहीं ले जा रहे हैं।

दूसरा रास्ता हैं गुरूजी। आखिरकार, महाराज ने हमारे भ्रम में, हमारी दुनिया में, आने का निर्णय लिया, उसी रूप में, जो उन्होंने चुना है। हमें उनकी कृपा और हमारे जीवन में उनकी उपस्थिति की सहायता से जागृत होना है। वह हमें एक झटके में इस भ्रम से बाहर निकाल सकते हैं या हमें पागलों की तरह इधर-उधर भागने, समाधान खोजने, लोगों, प्रक्रियाओं और अनुष्ठानों का पीछा करते हुए, और कहीं का न रह कर भटकते रहने के लिए छोड़ सकते हैं। गुरु की कृपा हम पर काम करे इसके लिए बस एक शर्त है। हमें अपने आप को "आशीर्वाद के लिए तैयार" करना है। गुरूजी की कृपा उसी अनुपात में हमें प्राप्त होगी जितना हम में उनका आशीर्वाद पाने की योग्यता होगी। अगर हम उन्हें बिना किसी प्रश्न के, बिना शर्त के, बिना किसी

संदेह के सर्वशक्तिमान भगवान के रूप में स्वीकार करते हैं, तो उनकी कृपा हम पर तेजी से काम करेगी ही करेगी।

जब हम उन्हें अपने गुरु के रूप में स्वीकार करते हैं, तो वह निश्चित रूप से हमारे इस भ्रम को सहज, आनंददायक और रुचिकर बना देते हैं क्योंकि यह भ्रम हमारा कर्म क्षेत्र है जिसकी रचना विशेष रूप से हमारे लिए की गई है। फिर जब हमारे कर्मों का हिसाब चुकता हो जाएगा, तो वह अपने विवेक से हमें इस भ्रम या माया से बाहर भी निकाल देंगे।

माया से बाहर निकलने के लिए एक गुरु की आवश्यकता तो है, लेकिन हम गुरु को अपने आप नहीं खोज सकते। जैसा कि संत तुलसी दास ने कहा है, "बिनु हरि कृपा मिलहि नहीं संता।" भगवान की कृपा के बिना संत हमारे जीवन में नहीं आते। एक बार जब गुरु हमारे जीवन में आते हैं, तो वे हमें अपने हाथों से माया और संसार के भंवर से बाहर निकालते हैं। जैसा कि शबद् कहता है:—

"बाँह पकड़ गुरु काढीया सोई उतरया पार"

गुरु अपने भक्त को, भुजा से पकड़कर, दुख के सागर के पार ले जाते हैं।

ऐसे में प्रश्न उत्पन्न होता है कि गुरु का सच्चा और योग्य भक्त कैसे बना जा सकता है?

भगवान नंदी, श्रेष्ठतम भक्तों की श्रेणी में प्रथम स्थान पर हैं। आपको यदि गुरूजी से संबंध बनाना है तो नंदी भगवान से अच्छा उदाहरण नहीं मिलेगा। भगवान नंदी बैल जी जो भगवान शिव जी के मंदिर के बाहर धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा में रत हैं। भगवान नंदी, जिनके चार पैर धर्म के चार स्तंभों का प्रतीक हैं: तपस्या, स्वच्छता, सच्चाई और दया।

एक भक्त के नाते हमें भी इन गुणों को अपने जीवन में धारण करना चाहिए। हमें सतर्क रूप से प्रतीक्षा करनी चाहिए। भगवान नंदी का एक कान खड़ा है, जो सतर्कता का प्रतीक है। ताकि यदि भगवान शंकर द्वारा नंदी को बुलाया जाता है तो वह अंदर जाने के लिए सदैव तैयार हों। वह सोते हुए नहीं पाए जाएंगे। लेकिन वह उस बुलावे की अपेक्षा नहीं करते हैं। वह केवल प्रतीक्षा करते हैं। उन्हें पूरा भरोसा है कि भगवान शिव आएंगे, और इसलिए वह बिना किसी अपेक्षा के प्रतीक्षा करते हैं।

इसी तरह, हमें अपने नामित गुरु से भी बुलावे की अपेक्षा किए बिना सतर्क रहना होगा। उनसे बुलाने की अपेक्षा करना भी उनसे माँगने जैसा है, यहाँ तक कि यह उनके सर्वज्ञ प्रेम के सर्वज्ञ स्थान में अनुचित हस्तक्षेप है।

जब हम तत्परता से आशीर्वाद पाने की स्थिति में होंगे, तो हमारे नामित गुरु हमें ढूंढ लेंगे। वह हमारे पास आएंगे। जब हमारे साथ हमारे गुरु आ जाएँ तो हमें बस उनकी उपस्थिति महसूस करनी चाहिए और उसका आनंद लेना चाहिए। उनकी सुगंध का आनंद लें और हमेशा नंदी की तरह सचेत रहें। कुछ मत कहो, कुछ मत मांगो और कुछ भी उम्मीद मत करो। जिस दिन हम प्रेम में पूर्ण रूप से धैर्य हासिल कर लेंगे, उस दिन हम स्वयं को गुरु से भिन्न महसूस नहीं करेंगे। हम भगवान नंदी की तरह हो जाएंगे।

जहाँ तक हमारे गुरूजी का संबंध है, उनके सत्संग का निमंत्रण गुरूजी का आह्वान है। उनकी आज्ञा के बिना यह निमंत्रण नहीं आएगा और यदि आता भी है तो हम इसे स्वीकार नहीं कर पाएंगे। यह जब भी हमें प्राप्त हो, इसे हमें साभार और बिना शर्त स्वीकार करना चाहिए।

जब हम इस माया भ्रम में होते हैं, हम तब भी अपना काम करते हैं। लेकिन भ्रम की विशेषता को बेहतर बनाने की कोशिश में ज्यादा समय नहीं बिताना चाहिए। सपना कितना भी अच्छा क्यों न हो, वह सपना ही रहता है। अगर हम इस भ्रम के चंगुल में नहीं पड़ना चाहते हैं, तो सुनहरा नियम है कि गुरूजी से कुछ भी मत पूछो, बस उन्हें स्वीकार कर लो।

पहले तो हमें बिना शर्त गुरूजी को स्वीकार करना है और अपने मन में सही और गलत, अच्छे और बुरे आदि के बारे में बहस करना बंद कर देना है। इसीलिए गुरूजी ने हमें उनकी उपस्थिति में प्रवेश करने से पहले जूता स्टैंड पर अपनी बुद्धि छोड़ने के लिए कहा। क्योंकि गुरु के नियंत्रण में हमारी समझदारी या बुद्धि की कोई भूमिका नहीं रहती।

यह मन ही है जो हमें इस भ्रम को पसंद करने या नफरत करने के लिए मजबूर करता है। यह हमारा मन है जो हमें इस भ्रम की ओर आकर्षित करता है, हमें बताता है कि यही सब है जो हमारे पास है और हमें इस अनुभव को बेहतर बनाने के तरीके बताता है, जो हमें दुनिया के झूठे स्वप्न में और अधिक फँसाता है। हमारी बुद्धि के मूल में अहंकार रहता है। यह अहंकार हमारे और हमारे गुरु के बीच खड़ा है। यह पूर्ण रूप से गुरूजी के लिए अपने आप हमारे मन में समर्पण भाव नहीं आने देता। यह आवश्यक है कि हम इस अहंकार का

त्याग कर दें। हम केवल प्रयास करें। असफल नहीं होंगे, क्योंकि निश्चित ही गुरूजी हमें अहंकार से छुटकारा दिला ही देंगे। भले ही समय लगे पर यह होगा अवश्य।

दूसरे, हमें अपने गुरु महाराज के साथ अपने संबंध को ढूँढना और मजबूत बनाना चाहिए। अपने आप को इस हद तक समर्पित करना चाहिए कि उनके साथ व्यक्तिगत संबंध जुड़ जाएँ और हम उनके आशीर्वाद में डूब जाएँ। गुरूजी हमें कभी नहीं विसारते, इसलिए उनसे हमें थामे रहने के लिए कहने का कोई मतलब नहीं है। वह अनिवार्य रूप से ऐसा करेंगे, अपने कर्तव्य के रूप में। हमारे लिए यह महसूस करना ही काफी है कि हम उनकी शरण में हैं।

तीसरे, जब हम अपने गुरूजी महाराज के बारे में बात करते हैं, तो हम गुरूजी महाराज को भगवान शिव के रूप में मानने से कैसे इनकार कर सकते हैं, वो ऐसी सर्वोच्च शक्ति है जो इस ब्रह्मांड को बनाने, बनाए रखने और नष्ट करने में सक्षम हैं केवल इस पूरी प्रक्रिया को फिर से शुरू करने के लिए। हजारों वर्षों से, हमारे ऋषियों ने इस सर्वोच्च शक्ति के अस्तित्व के बारे में बात की है और इसे 'ब्रह्म', एकमात्र वास्तविकता का नाम दिया है। ब्रह्मा, एक निर्माता, उनकी रचना और हमारे बीच, माया का यह पर्दा, या भगवान की मायावी शक्ति मौजूद है। माया का यह घूंघट हमारी दृष्टि को धुंधला कर देता है और वास्तविकता को देखने नहीं देता।

वैसे, आधुनिक क्वांटम भौतिकी सदियों पहले हमारे ऋषियों द्वारा लिखी गई बातों को स्वीकार करते हुए इस अवधारणा को पूरी तरह से स्वीकार करती है। इस विषय पर गहराई से विचार किए बिना मैं केवल यह बता दूँ कि हमारे ब्रह्मांड की वास्तविकता भौतिक (सगुण साकार) प्रतीत होती हैं, सिर्फ जब इसका अवलोकन किया जाता है। जब अवलोकन नहीं किया जाता है और केवल ध्यान किया जाता है, तो वही ब्रह्मांड एक तरंग क्रिया (निर्गुण, निराकार) प्रतीत होती है, जो ब्रह्म नामक एक सर्वव्यापी तरंग की सवारी करता है। और निश्चित रूप से क्या, कहाँ और क्यों के संदर्भ में कोई स्वतंत्र इच्छा नहीं है! आधुनिक विज्ञान द्वारा माया की इस से उच्च स्तरीय व्याख्या और क्या हो सकती है?

शिव पुराण के अनुसार भगवान शिव के पांच कार्य हैं। ये हैं सृजन (सृष्टि), संरक्षण (स्थिति), विघटन (संहार), मुक्ति प्रदान करना (अनुग्रह) और

साथ ही संवृत्ति (तिरोभाव)।[15] शिव माया को भ्रम का पर्दा डालने के लिए प्रेरित करते हैं, जो कि उसके कार्य भाग के रूप में आता है।

क्रियाशीलता हमें ब्रह्म और शिव के बीच की कड़ी को दर्शाती है। शिव वास्तव में ब्रह्म हैं। यदि शिवजी ने हम पर माया का प्रभाव डाला, तो उन्होंने एक ऐसा तंत्र भी स्थापित किया है जिसके द्वारा हम इस माया को दूर कर सकते हैं और उससे परे की वास्तविकता को महसूस कर सकते हैं। भगवान शिव हमारे सामने गुरु के रूप में प्रकट होकर ऐसा करते हैं। एक गुरु के रूप में उन्होंने धार्मिक संयोजन, जिसे भक्ति कहते हैं, के माध्यम से हमें मुक्ति (अनुग्रह) प्रदान करने के लिए अपनी कृपा को सजीव किया है। हमारे गुरूजी महाराज हमारे समय में अपने भक्तों के सामने भगवान शिवजी के रूप हैं।

माता पार्वती स्वयं भगवान शिव के सामने संसार और उसमें हमारे स्थान से संबंधित प्रश्न रखती हैं: "हे भगवान, दुनिया का सार क्या है?" भगवान शिव उत्तर देते हैं:

> ***"कहहुँ उमा सुन अनुभव अपना, सत हरि भजन, जगत सब सपना।"***

मेरा अनुभव यह है, भगवान कहते हैं: भगवान का नाम वास्तविक है; बाकी सब असत्य है। यह एक सपने जैसा ही है। कहानी चाहे उदास हो या खुश, चाहे अमीर पात्र हो या गरीब पीड़ित, इसका हमेशा ही एक आरम्भ और अंत होता है। क्योंकि यह संसार परिवर्तनशील है, इसलिए यह सच नहीं हो सकता। सत्य के दो संस्करण नहीं हैं। सत्य का न आदि है और न अंत। सत्य सदा विद्यमान है...

---

[15] सर्ग जगत की रचना है; स्थिति उसका रखरखाव है; संहार सर्वनाश है; तिरोभाव हटाना और छिपाना है; मुक्ति (जन्म मरण के चक्र से) ही वरदान है। ये पांचों मेरी गतिविधियां हैं लेकिन दूसरों के द्वारा चुपचाप की जाती हैं जैसे पोर्टल पर मूर्ति के मामले में; पहली चार गतिविधियाँ दुनिया के विकास से संबंधित हैं और पाँचवीं मोक्ष का कारण है। ये सभी मेरे विशेषाधिकार हैं। ये गतिविधियाँ भक्तों द्वारा पाँच तत्वों में देखी जाती हैं: पृथ्वी में सर्ग (सृजन), जल में स्थिति (रखरखाव), अग्नि में संहार (विनाश), हवा में तिरोभाव (छिपाना) और अनुग्रह (मुक्ति, धन्य अवस्था)) आकाश में।

सब कुछ पृथ्वी द्वारा बनाया गया है; सब कुछ जल के द्वारा फलता-फूलता है; सब कुछ अग्नि द्वारा प्रेरित किया जाता है, वायु द्वारा सब कुछ हटा दिया जाता है और आकाश से सब कुछ धन्य हो जाता है। इस प्रकार, बुद्धिमान पुरुषों को वही जानना चाहिए। इन पाँच प्रकार की गतिविधियों को देखने के लिए मेरे पाँच मुख हैं, चार चारों दिशाओं में और पाँचवाँ बीच में।

अध्याय 10, शिव का लोप, शिव पुराण, प्रोफेसर जे. एल. शास्त्री द्वारा संपादित

आधुनिक समय के लिए शिव पुराण

गुरूजी महाराज को समझने के लिए, हमें भगवान शिव की महिमा को गहराई तक समझने की कोशिश करने की जरूरत है।

सनातन धर्म में, वेदों को स्वयं ब्रह्म द्वारा दिए गए ज्ञान का सबसे शुद्ध रूप माना जाता है। इस ज्ञान को अपने जीवन में लागू करने की प्रक्रिया को प्रबुद्ध ऋषियों द्वारा प्रलेखित उपनिषदों में समझाया गया है। उपनिषद एक तरह से वेदों में निहित ज्ञान की व्याख्या करते हैं। इस ज्ञान को व्यावहारिक रूप से अपने जीवन में लागू करने वाले लोगों की कहानियाँ पुराणों में व्यक्तिगत सत्संग के रूप में दी गई हैं। शास्त्रों के इन तीन संग्रहों में, शुद्ध ज्ञान, व्यावहारिक ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव हैं।

मुझे यहाँ एक समानता अंकित करने दें। बिजली का आवेश वैसा ही होता है जैसा बादलों में दिखता है। यह वेदों की तरह शुद्ध विज्ञान है। वह प्रक्रिया जो इस विद्युत आवेश को विद्युत के रूप में उपयोग करने की अनुमति देती है, उपनिषदों की तरह व्यावहारिक विज्ञान कहलाती है। अंत में, उन लोगों की कहानियाँ जिन्होंने व्यावहारिक रूप से इस बिजली का उपयोग अपने लाभ के लिए किया है, पुराणों में सत्संग की तरह हैं।

शिव पुराण क्या है?

सत्संग का एक संग्रह है जो भगवान शिव की महिमा का वर्णन करते हुए बताना चाहता है कि कैसे भगवान शिव ने कई युगों में अपने भक्तों पर अपनी कृपा की। इसी तर्क से गुरूजी के भक्तों के अनुभवों से युक्त 'दिव्य आभा' भी एक आधुनिक पुराण है।

आइए, एक उदाहरण से शुरू करते हैं। शिव पुराण में वर्णित पहला सत्संग जिसमें एक ब्राह्मण है जो पापमय जीवन व्यतीत करता है और मृत्यु के बाद एक राक्षस बन जाता है। उसके जीवन के अनुभव के माध्यम से पाठक को बताया गया है कि कैसे भगवान शिव का नाम मुक्ति के लिए पर्याप्त है। उसकी विधवा कुछ समय के लिए सच्चाई और सात्विक पथ पर चली, फिर वह पथभ्रष्ट हो गई, इसके उपरांत पश्चाताप करने लगी। तत्पश्चात उसने एक मंदिर में शिव पुराण का पाठ सुना– जिसने उसे मृत्यु के बाद उसके पापों की न्यायसंगत सजा से बचा लिया गया और बदले में, उसे भगवान शिव

और माता पार्वती की सेवा में लाया गया। एक दिन, जब उसने अपने पति के बारे में पूछताछ की, तो उसने जाना कि उसके पति ने एक राक्षस योनि में पुनर्जन्म लिया था। उसने अपने पति के उद्धार के लिए माता पार्वती से गुहार लगाई। (पत्नी अपने पति को कभी नहीं भूलती!) उसको बताया गया कि उसके पति को अपनी मुक्ति के लिए शिव पुराण सुनना होगा। उस राक्षस को, जो कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं था, एक पेड़ से बाँधा गया और उसके सामने शिव पुराण का पाठ किया गया। वह अनैच्छिक श्रवण उसके बुरे कर्मों के प्रायश्चित के लिए पर्याप्त था। शिव पुराण की महिमा का इस से बड़ा उदाहरण और क्या चाहिये?

आज के समय में हम भी अपने गुरूजी के आशीर्वाद को साझा करने के लिए सत्संग करते हैं। पात्र बदल गए हैं और समय भी, लेकिन कुल मिलाकर गुरूजी से की गई प्रार्थना के द्वारा और पावन नाम की कृपा से, पाप मुक्ति प्राप्त करने का विधान पहले जैसा ही है। इसलिए सत्संग को कभी भी हल्के में न लें। वे न केवल श्रोताओं और वक्ताओं के लिए कृपा पाने का मार्ग है, बल्कि सभी भक्तों के लिए स्वयं गुरूजी, भगवान शिव के चरण कमलों में होने का सरल और सीधा मार्ग भी है। सत्संग में जाना कोई साधारण बात नहीं है। यह अच्छा समय बिताने के बारे में नहीं है। यह हमारे पेट भरने के बारे में नहीं है। यह निश्चित रूप से लोगों से घुलने मिलने और व्यक्तिगत संबंधों के निर्माण के बारे में तो बिलकुल ही नहीं है।

सत्संग ही मोक्ष का मार्ग है। यह स्वयं गुरूजी के चरण कमलों में उनके साथ रहने का मार्ग है। सत्संग हमारे जीवन में वर्तमान और भविष्य में अनंत काल तक बदलाव ला सकता है।

शिव पुराण के सत्संग में सब प्रकार के देवता उपस्थित होते हैं। वे शिव पुराण की महिमा में चित्रित हैं। उनके कपड़े, उनका श्रृंगार, उनके आभूषण, उनके आवास, यहाँ तक कि उनके वाहन भी गंभीर रूप से मिलनसार हैं। इंद्र देव के पास एक हाथी है और भगवान विष्णु के पास पक्षियों के राजा गरुड़ हैं। इसके विपरीत, भगवान शिव के पास अपने वाहन के लिए एक धीमी गति से चलने वाला बैल है। उन्हें भव्य योगी के रूप में दिखाया गया है, एक तपस्वी जो खोपड़ी की एक माला पहनते हैं, उनके ऊपरी वस्त्र के लिए एक हाथी की खाल जो राख से लिपटी होती है, और वे अक्सर एक गहरी समाधि में चले जाते हैं। उनका अपना कोई घर नहीं है, केवल कैलाश की एकान्त

पहाड़ी पर एक गुफा है, फिर भी उनके भक्त कुबेर धन के कोषाध्यक्ष हैं। हर एक के पास इतना कुछ है परंतु जो देवों का भी देव है, ब्रह्मांड का स्वामी है, उसने सब कुछ त्याग दिया है। यह शिव तत्व का प्रमुख उदाहरण है।

एक बार माता पार्वती ने यह सुनिश्चित करने की कोशिश की कि दंपति के रूप में उनके पास अपने लिए एक साधारण सा घर हो और उन्होंने एक बनवाया भी। वह निवास भी, उनके राक्षसी भक्त, रावण के साथ चला गया, जबकि भगवान शिव और माता पार्वती स्वयं एक जंगल में ही रहते रहे। फिर भी, शिव देवताओं के देवता हैं। वह ब्रह्मांड चलाते हैं!

ईश्वर अत्यावश्यक रूप से मानवीय रस्मों रिवाजों के अनुसार सुन्दरता, कुरूपता और नैतिकता के आधीन नहीं है। माता पार्वती के साथ उनके विवाह के अवसर पर, भगवान शिव अपने उलझे हुए बालों पर एक मुकुट के रूप में अर्धचंद्र धारण करके पहुँचे, जिसके साथ गंगा उनके बंधे बालों की लट से आरोहण कर रही थी और उनके शरीर पर राख मली हुई थी।

दूल्हे की ओर से बाराती देखने में बेहतर नहीं लग रहे थे। उनका रूप देखकर दुल्हन की सहेलियाँ बेहोश हो गईं। भगवान शिव उस समय प्रकाशमान हो गए जब उनके भक्तों ने उनसे एक ऐसा रूप धारण करने की प्रार्थना की जो इस परिस्थिति के सन्दर्भ के लिए अधिक उपयुक्त था – यानी माँ उमा के साथ उनका विवाह। उन्होंने अपने भक्तों को खुश करने के लिए ऐसा ही किया।

क्या गुरूजी ने भी ऐसा ही नहीं किया? वही बात नहीं बताई? उन्होंने हमें कहा कि वह हमारे सामने मानव रूप में इसलिए प्रकट हुए, ताकि हम जैसे नश्वर प्राणी उनके सामने जीवित रह सकें। जय हो महाराज की। हमारे सामने उनका मूल रूप दस हजार वोल्ट के विद्युत स्रोत (हमारे गुरूजी) को साधारण घरेलू बल्ब (हम सब नश्वर प्राणी) से जोड़ने जैसा होगा। यहाँ तक कि अगर हम चाहते हैं, हमारी तीव्र इच्छा होती भी है तो भी हम उनका आवेश (तेज़) सहन नहीं कर सकेंगे। भगवद् गीता का वह प्रसंग याद है जब अर्जुन को भगवान कृष्ण को विराट स्वरूप में देखने के लिए दिव्य नेत्रों की आवश्यकता पड़ी थी?

वैसे भी, भक्त गुरूजी को उनके मानवीय रूप में भी, बिना आँखें नीचे झपकाए, नहीं देख सकते थे। उनका आभा मंडल इतना तीव्र था। वह कहते थे कि उनकी प्यारी संगत उनके हाथों की हथेली में कीड़े की तरह प्रतीत होती थी।

रूप-रंग एक भ्रम है। दिखावट करना महानता की गारंटी नहीं है और महानता दिखावे की गुलाम नहीं है। आत्मा की सुंदरता शारीरिक सुंदरता से

अधिक महत्वपूर्ण है, जो केवल त्वचा की गहराई तक है। स्वयं भगवान शिव के अतिरिक्त इसका और कोई उदाहरण नहीं हो सकता है।

सिर्फ इसलिए कि गुरूजी हमारे सामने एक मानव चोले में प्रकट हुए, उन्हें साधारण मानव नहीं मान सकते। हमारा उनके साथ एक ही कमरे में होना, उनके साथ अपना जीवन साझा करना, यह सब तो उनकी प्रेममयी महानता का प्रमाण है।

शिव पुराण में एक और महत्वपूर्ण शिक्षा– प्रेम के बारे में है। पुराण में न केवल इस बारे में असंख्य कहानियाँ हैं कि कैसे भगवान शिव अपने भक्तों पर कृपा करते हैं, कैसे वे अपने दुश्मनों से लड़ते हैं, कैसे वे उनकी रक्षा करते हैं, कैसे वे उनका पोषण करते हैं, बल्कि यह भी कि वे उन्हें आध्यात्मिक सलाह और मार्गदर्शन कैसे देते हैं। देवी पार्वती के साथ भगवान शिव भी आदर्श दिव्य युगल और शिव–शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो हमेशा संयुक्त रहते हैं। वे अनिवार्य रूप से एक हैं, यहाँ तक कि, अर्धनारीश्वर के रूप में प्रतिनिधित्व करते हुए प्रत्येक समान इकाई के प्राणी का आधा भाग है। उनका अंतर सार में नहीं रूप में है।

शिव पुराण में, भगवान शिव और देवी पार्वती को उच्चतम स्तर के वैवाहिक प्रेम की स्थिति में दर्शाया गया है। दिव्य युगल को सबसे पहले भगवान शिव और देवी सती के रूप में देखा जाता है। महान देवी के पिता दक्ष प्रजापति हैं, जो प्रजा के स्वामी, एक दिव्य राजा हैं। देवी सती का जन्म उनकी बेटी के रूप में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की मध्यस्थता से हुआ था, जो दुनिया को कई गुना बढ़ता हुआ देखना चाहते थे। दिव्य सृष्टिकर्ता के रूप में, वह मूल रूप से प्रकृति ही हैं, और केवल ब्रह्मा और दक्ष की इच्छाओं को पूरा करने के लिए भौतिक रूप धारण करती हैं।[16] वह भगवान शिव से शादी करती हैं।

---

[16] शिव पुराण में, दक्ष की प्रार्थना और तपस्या के प्रति माता सती का उत्तर इस प्रकार है:

> आपकी भक्ति के अधीन, दक्ष, मैं, महान देवी, आपकी पत्नी से आपकी बेटी के रूप में जन्म लूँगी। इसमें कोई शक नहीं है। निष्पाप, मैं कठोर तपस्या करूँगी और शिव की पत्नी बनूँगी, जब मैंने उनसे उस प्रभाव का वरदान प्राप्त कर लिया है। अन्यथा, वस्तु की पूर्ति का कोई मौका नहीं है। प्रभु सभी विपथन से मुक्त हैं। वह सदाशिव के पूर्ण अवतार हैं, जो ब्रह्मा और विष्णु द्वारा सेवा किए जाने के योग्य हैं। मैं सदा उनकी दास, हर जन्म में उनकी प्रिय (अवतार)। अनेक रूपों में प्रकट होने वाले शिव ही मेरे स्वामी हैं। यह उन्हीं की कृपा थी कि वे ब्रह्मा की भौंहों के माध्यम से प्रकट हुए। मैं भी उन्हीं की कृपा से और उनकी आज्ञा से अवतरित होऊंगी ... पर हे प्रजापति, आपको एक व्रत लेना होगा। यह एक पूर्व शर्त है। मैं आपको बताती हूँ। यह सच है, कभी झूठ नहीं, कृपया समझें: यदि भविष्य में आप मेरे प्रति कम सम्मान करते हैं तो मैं अपना शरीर त्याग दूंगी। मैं खुद को अपनी आत्मा में वापस ले लूंगी या दूसरा रूप ले लूंगी। यह सत्य है।

— रुद्र संहिता, द शिव पुराण, खंड 1, प्रोफेसर जे.एल. शास्त्री द्वारा संपादित

राजा दक्ष अपने दामाद के साथ अच्छे संबंध नहीं रखते हैं। वह भगवान शिव को एक तपस्वी के रूप में देखते हैं, जो देवताओं की श्रेणी में नहीं गिने जाते हैं। वह एक बड़ा यज्ञ करते हैं, लेकिन उसमें भगवान शिव या देवी सती को आमंत्रित नहीं करते हैं। जब देवी सती को यज्ञ के बारे में पता चलता है, तो वह इसमें शामिल होने की इच्छा रखती हैं क्योंकि वह स्वाभाविक रूप से अपने मायके से जुड़ी होती हैं। भगवान शिव ने उन्हें सलाह दी कि बिन बुलाए किसी भी स्थान पर न जाना ही बेहतर है। लेकिन जब वह खुद को संयमित करने में असमर्थ होती हैं, तो उनके आदर्श पति होने के नाते, भगवान शिव उन्हें अपनी पसंद का निर्णय लेने देते हैं।

यज्ञ में, देवी सती ने पाया कि उनके पति के लिए कोई आसन अलग नहीं रखा गया था। वह अपने पिता की छिपी क्रूरता, मिली भगत और उनके अपमानजनक व्यवहार से इतनी बौखला गई थीं कि उन्होंने आंतरिक योग अग्नि में खुद को भस्म कर आत्महत्या कर ली। भगवान शिव के प्रति उनकी निष्ठा और प्रेम अतुलनीय है। उनका नाम वैवाहिक वफादारी का प्रतीक है और सतीव्रता शब्द से सम्मानित है।

जब भगवान शिव को बताया जाता है कि क्या हुआ है, तो वे अचंभित होते हैं। वह दुर्जेय वीरभद्र के नेतृत्व में अपनी सेना को दक्ष के महल तक चढ़ाई करने और यज्ञ को नष्ट करने का आदेश देते हैं। वीरभद्र, जो भगवान शिव के क्रोध का रूप हैं, वहाँ प्रकट होकर, अग्निहोत्र के स्थान और उनके अस्त्रों को नष्ट कर देते हैं। उपस्थित देवताओं को अपमानित और पराजित कर देते हैं। वीरभद्र स्वयं भगवान विष्णु से लड़ते हैं, जिन्हें अपने लोक में वापस जाने के लिए विवश होना पड़ता है। उन्हें एहसास कराया जाता है कि भगवान शिव की सेना का सेनापति अपराजेय है।

इसके बाद, दक्ष को क्षमा कर और देवताओं के शरीर को पुनर्स्थापित कर एक रोमांचक कथा का अंत हो जाता है।

भगवान शिव स्वयं शोकाकुल हैं। वह माता सती के शरीर को नहीं जाने देते। उनका बंधन आदि और शाश्वत है। वह अपने हाथों में उनके शरीर के साथ लोकों में भटकते हैं; वे घायल और विक्षिप्त हैं। भगवान विष्णु को, जिनके पास ब्रह्मांड की रक्षा करने का काम है, ज्ञात होता कि यह स्थिति अब और ज्यादा देर नहीं चल सकती। वह अपने हथियार, सुदर्शन चक्र के साथ हस्तक्षेप करते हैं, इसका उपयोग देवी सती के पवित्र शरीर को टुकड़ों

में काटने के लिए करते हैं। ये टुकड़े बड़े वरदान के रूप में धरती पर आते हैं और आज तक माँ के शक्तिपीठों के रूप में पूजे जाते हैं। एक बार जब देवी सती का शरीर उनके हाथों को छोड़ देता है, तो भगवान शिव को पता चलता है कि सब कुछ चला गया है। वह पहले की तरह खुद को संयमित करते हैं और देवताओं के भगवान के रूप में अपनी भूमिका को निभाना फिर से शुरू करते हैं। इस सत्संग के माध्यम से दिव्य दम्पति अपने वैवाहिक प्रेम और निष्ठा की एक सुन्दर मिसाल हमारे सामने अपने जीवन में पालन करने के लिए प्रस्तुत करते हैं।

ऐसा है, इस अतुलनीय जोड़े का प्यार। उनकी दिव्य लीला हमें कई सबक सिखाती हैः कि पत्नी और पति एक–दूसरे के प्रति अडिग रहें, कि वे एक–दूसरे पर भरोसा करें और एक दूसरे का सम्मान करें और यह कि वे अपने प्यार में किसी भी तरह के अतिक्रमण की अनुमति न दें। ध्यान दें कि भगवान शिव कैसे देवी सती का सम्मान करते हैं और उन पर इतना भरोसा करते हैं कि वह उन्हें अपना निर्णय लेने देते हैं, भले ही वे आने वाली विपत्ति से अवगत हों। वह उन्हें अपना रास्ता बनाने देते हैं।

भले ही वह उन्हें वहाँ रुकने और औपचारिक यज्ञ के लिए अपने पिता के घर न जाने के विकल्प पर चर्चा करते हैं, फिर भी वह उन पर अपना निर्णय नहीं थोपते। वह अपना आपा नहीं खोते और न ही निराश होते हैं। वह बाद में आते हैं। उस पल के लिए, वह इसे शांति से और जिम्मेदारी से संभालते हैं। इस प्रक्रिया में, भगवान शिव एक उदाहरण पेश करते हैं, जिसमें वह सभी पतियों को इसे अपनाने और पालन करने की सीख देते हैं।

गुरूजी महाराज हमेशा इस बात पर भी जोर देते थे कि भक्त जोड़े उनके पास एक साथ आएँ। उन्होंने जोर देकर कहा कि हमारी पहली और सबसे बड़ी जिम्मेदारी हमारे परिवार के प्रति है। उन्होंने यह भी कहा कि परिवार की देखभाल करना ही गुरु सेवा का सर्वोत्तम रूप है! पारिवारिक जिम्मेदारियों को छोड़ कर गुरूजी की सेवा से उनकी स्वीकृति प्राप्त नहीं होगी।

हालाँकि, कथा यहीं समाप्त नहीं होती है। शिव और शक्ति जगत के माता–पिता हैं; एक या दूसरे के बिना यह संसार नहीं चल सकता। तो, भगवान शिव से पुनर्विवाह करने के लिए माता सती का देवी पार्वती के रूप में पुनर्जन्म होता है। भगवान शिवजी का हाथ माँगने के लिए वह एक लंबी और कठिन तपस्या से गुजरती हैं। भगवान शिव उनकी भक्ति की परीक्षा लेते हैं। वह सात बुद्धिमान ऋषियों, सप्तर्षियों को उनके आश्रम में भेजते हैं।

उनका काम उसे इस तरह के एक अकल्पनीय उद्देश्य का प्रयास करने से रोकना है। ऐसे भगवान शिव से विवाह, जिन्होंने 'कामदेव' को नष्ट कर दिया था। वे अपनी तरफ से पूरी कोशिश करते हैं, लेकिन देवी पार्वती दृढ़ हैं। वह ऋषियों से कहती हैं कि वह जानती हैं कि शिव कौन हैं? और उनके चतुर तर्क उन्हें धोखा नहीं दे सकते। ऋषियों ने जो कुछ बताया, उससे भगवान शिव प्रभावित हुए, लेकिन उन्होंने स्वयं इसकी पुष्टि करने का फैसला किया।

वह ब्राह्मण के वेश में देवी पार्वती के पास जाते हैं। वह माँ पार्वती की परिचारक मित्र जया से देवी पार्वती की तपस्या के उद्देश्य के बारे में पूछते हैं। जया उन्हें पूरी कहानी सुनाती है, जिस पर ब्राह्मण कहते हैं कि वह इसे सीधे देवी पार्वती से सुनना चाहेंगे। **ना भगवान शिव को अपने और अपने भक्तों के बीच बिचौलिया पसंद है ना ही गुरूजी महाराज को।** दोनों अपने भक्तों के साथ सीधे संबंध पर जोर देते हैं। देवी पार्वती बताती हैं कि उनकी तपस्या का उद्देश्य भगवान शिव से विवाह करना है, जिस पर ब्राह्मण शिवजी के चरित्र के बारे में कई अपमानजनक टिप्पणी करते हैं। देवी पार्वती क्रोधित होती हैं। देवी पार्वती अपने आपको एक तपस्वी के छल और कपट से दूर होने का और अपनी जान लेने का फैसला करती हैं। उसी समय भगवान शिव अपने स्वरूप में आ जाते हैं। देवी पार्वती की प्रार्थना स्वीकार हो जाती है।

शिव पुराण में अन्य कहानियाँ भी हैं जो अपने पति के प्रति एक महिला की भक्ति की शक्ति का उदाहरण देती हैं।

शंखचूड़ और तुलसी की कहानी है, जो भगवान ब्रह्मा के कहने पर प्यार से एक-दूसरे से शादी करते हैं। शंखचूड़ कृष्ण के प्रिय मित्र सुदामा थे, जिन्हें राधा ने उनके कक्ष में बिन बताये प्रवेश करने के कारण राक्षस के रूप में जन्म लेने का श्राप दिया था। वह एक असुर राजा हैं, लेकिन भगवान विष्णु की भक्ति के कारण, वह गुणी, शक्तिशाली और न्यायप्रिय हैं। वह पृथ्वी और देवताओं पर विजय प्राप्त करते हैं, जो, हमेशा की तरह, अपने सिंहासन को उससे वापस लेना चाहते हैं।

वे सभी भगवान ब्रह्मा और भगवान विष्णु से अपील करते हैं, लेकिन वह उन्हें भगवान शिव के पास भेजते हैं, भगवान शिव बदले में, उन्हें अपने स्वयंरूप रुद्र के पास भेजते हैं। भगवान विष्णु शंखचूड़ को नहीं मार सकते, क्योंकि वह भगवान कृष्ण के भक्त हैं। शंखचूड़ को ब्रह्मा द्वारा वरदान के रूप में कृष्ण का अभेद्य कवच प्रदान किया गया है। शंखचूड़ के पास एक और

वरदान हैः **जब तक उनकी पत्नी तुलसी उनके प्रति सच्ची और वफादार हैं,** तब तक उन्हें हराया नहीं जा सकता।

वह निडर होकर रुद्र की सेनाओं का सामना करते हैं। राजकुमार कार्तिकेय उसे अजेय पाते हैं और वास्तव में मारे जाते हैं – केवल रुद्र के हाथों के स्पर्श से फिर से जीवित होने के लिए। वीरभद्र उसे घायल नहीं कर सकते, इसलिए अंत में, माँ काली खुद युद्ध के मैदान में जाती हैं। माता ने उन पर अस्त्र के बाद मान्त्रिक अस्त्र दागे। वह सहजता से अपने स्वयं के हथियारों के साथ और गुप्त महारत के साथ उनका उत्तर देते हैं। वह उसे एक अजेय हथियार से मारने का फैसला करती है– लेकिन एक दिव्य आवाज से ऐसा करने से मना कर दिया जाता है। अब, रुद्र को युद्ध के मैदान में प्रवेश करना पड़ता है।[17] यहाँ तक कि वह भी उन्हें मार नहीं सकते क्यों कि उनकी मृत्यु की शर्तें पूरी नहीं की गई हैं। इसलिए, रुद्र भगवान हरि से शंखचूड़ के कृष्ण कवच को हटाने के साथ-साथ तुलसी के पास जाने के लिए कहते हैं।

इसके तुरंत बाद, एक बूढ़ा ब्राह्मण भिक्षु शंखचूड़ के पास आता है। वह कृष्ण का कवच मांगता है और महान दानव उसे दे देता है, हालांकि वह जानता है कि यह उसके जीवन को खतरे में डाल देगा। फिर, भगवान हरि तुलसी के पति के वेश में तुलसी के पास जाते हैं और उन्हें बहकाते हैं। यह तुलसी की तपस्या का फल था, जिसे भगवान विष्णु ने भंग करना था। जब उसे पता चलता है कि वह उसके पति नहीं है (उसके पति के रूप में स्वयं हरि हैं), तो वह उन्हें पत्थर बनने का श्राप देती है क्योंकि वह निर्दयी बन गए। दोनों रक्षा कवच खो देने के बाद, युद्ध के मैदान में भगवान शिव के त्रिशूल से शंखचूड़ की मृत्यु हो जाती है।

एक महत्वपूर्ण कहानी, हमें सिखाती है कि एक पुरुष कितना महान बन सकता है, वह कितना सुरक्षित और अपराजेय हो सकता है, जब उसकी पत्नी उसके साथ खड़ी हो। सच्चा प्यार करने वाला और सच्चा प्यार पाने वाला

---

[17] शिव की हँसी दुनिया भर में गूँज उठी क्योंकि उन्होंने अपने शक्तिशाली विरोधी के साथ अच्छा युद्ध किया। उन्होंने अपने डमरू पर गुप्त, अबोधगम्य लय को बजाया; जब शंखचूड़ ने अपने आकाशीय जहाज से बादलों की तरह बिलबिलाते अस्त्रों की धुंध के साथ उस पर हमला किया, तो उन्होंने आनंद में पिनाक की डोरी बजाई। उन्होंने अपने शिकारी सींग पर फूंक मारी जिससे दोनों सेनाएँ डर गईं और नंदी, राक्षस के चिंघाड़ने वाले हाथियों को लज्जित करने के लिए, दहाड़ने लगा। फिर, प्रसन्नता में, शिव ने अपने हाथों को ताली बजाई और दिशाएँ हिल गयीं, पृथ्वी थर्रा उठी और गूंजते हुए मैदान से आने वाला हर पिछला शोर बौना हो गया।

– शिव पुराण, शिव की प्राचीन पुस्तक, रमेश मेनन द्वारा

धर्मी व्यक्ति अपनी शोभा से नहीं गिरता। इस प्रकार, एक पति को अपनी पत्नी से प्यार और उसका सम्मान करना चाहिए और पत्नी को भी ऐसा ही करना चाहिए। भक्ति की शक्ति समझ से बाहर है।

शिव पुराण एक और घटना का वर्णन करती है, जो बाद में शिव-सती के बिछोह का बीज बना। भगवान राम और लक्ष्मण देवी सीता की तलाश में जंगल में घूम रहे थे, जब भगवान शिव और देवी सती वहाँ से गुजरते हैं। भगवान शिव हाथ जोड़कर भगवान राम को प्रणाम करते हैं। यह देवी सती को उत्सुक करता हैः यह कैसे है कि भगवानों के भगवान एक विनम्र व्यक्ति को नमन कर रहे हैं? भगवान शिव उनकी गलत धारणा को सुधारते हैं। वह उन्हें बताते हैं कि उसने जिस धनुषधारी को देखा है, वह भगवान राम, विष्णु के अवतार है, जो उनके भी पूज्य हैं, इसलिए वह उनसे प्रार्थना कर रहे थे। वह सोचती हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है। उनके पति किसी ऐसे व्यक्ति की पूजा कैसे कर सकते हैं जिसे उन्होंने स्वयं बनाया है?

भगवान शिव उन्हें बताते हैं कि उन्होंने ही भगवान विष्णु को ब्रह्मांड चलाने की जिम्मेदारी दी थी। भगवान विष्णु ने उनके भक्त के रूप में, बदले में कुछ भी माँगे बिना, अभूतपूर्व भक्ति के साथ सौंपे गए कार्य को पूरा किया है। सेवा से प्रसन्न होकर भगवान शिव उन्हें देवताओं में सबसे प्रमुख बनाने का फैसला करते हैं। उन्होंने देवताओं से भगवान विष्णु की पूजा करने के लिए कहा और स्वयं भी भगवान विष्णु की पूजा की। अनिवार्य रूप से, भगवान शिव ने भगवान विष्णु को ब्रह्मांड चलाने के संपूर्ण अधिकार दे दिये। यह वही भक्ति और निस्वार्थ सेवा है जो कोई भी भक्त गुरूजी के प्रति भी कर सकता है, जैसी भगवान विष्णु जी ने, बिना कुछ माँगे, भगवान शंकर जी के लिए की।

"गुरु कोलों मंगों ना, गुरु नू मन्नो।"

देवी सती इस कहानी पर आसानी से भरोसा नहीं करती हैं और भगवान राम की परीक्षा लेने का फैसला करती हैं। दुर्भाग्य से, भूलकर, वह सीता के रूप में भगवान राम के सामने जाती है। भगवान राम तुरंत समझ जाते हैं, और भगवान शिव के बारे में पूछताछ करते हुए उन्हें देवी सती के रूप में सम्मान पूर्वक बधाई देते हैं। देवी सती अब आश्वस्त हो गई हैं और पछतावे और आत्मग्लानि के साथ भगवान शिव के पास वापस चली जाती हैं।

हालांकि, सब बिगड़ चुका है। भगवान शिव को उनकी करनी का पता चलता है और वह मानसिक रूप से उन्हें त्याग देते हैं। इस घटना को दक्ष के यज्ञ, देवी सती के भक्ति बलिदान, वेदी के अंतिम विनाश और भगवान शिव के द्वारा 'दक्ष को अंततः क्षमा कर देना' के साथ जोड़ा गया है।

ये शिव पुराण को परिभाषित करने वाली किंवदंतियों के कुछ ही सत्संग हैं। और भी बहुत से सत्संग हैं। इसलिए गुरूजी ने भक्तों से शिव पुराण पढ़ने का आग्रह किया। उन्होंने भक्तों से यह कहा कि यह पाँच बार पूर्ण रूप से पढ़ने पर ही समझी जा सकती है। सच्चा पाठक स्वयं इस विचार को स्वीकार करता है कि शिव पुराण को पाँच बार पढ़ना चाहिए। शिव पुराण भी भगवान शिव के पास जाने का एक तरीका और हमें उनका आशीर्वाद और सुरक्षा प्राप्त करने का एक सहज साधन है। यह जप योग करने का भी एक तरीका है, क्योंकि इससे हमें भगवान शिव और देवी पार्वती का स्मरण होता है।

भगवान शिव अपने भक्तों का नुकसान नहीं होने देंगे। भक्त किससे लड़ रहा है या उसकी परेशानी कितनी बड़ी है, इसकी उन्हें जरा भी परवाह नहीं है। गुरूजी महाराज के साथ भी ऐसा ही है। वह अपने भक्तों की देखभाल करने के लिए किसी भी सीमा तक जाते हैं। **भगवान शिव और गुरूजी एक ही हैं।** भगवान शिव की तरह, गुरूजी हमेशा मौजूद हैं। गुरूजी हमारे जीवन से जहर निकालना जारी रखते हैं। हमें एक बेहतर भविष्य देते हैं। वे हमें शुद्ध भी करते हैं ताकि हम अपने जीवन में उनकी भक्ति पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए "आशीर्वाद के लिए तैयार" हो सकें।

स्वीकृति

मेरा पहला धन्यवाद, भक्ति की उस भावना को जिसने मुझे इस किताब के लेखन के लिए प्रेरित किया। लेकिन क्योंकि मेरी भक्ति गुरूजी महाराज के द्वारा ही प्रेरित है तो मेरा सबसे पहला धन्यवाद गुरूजी महाराज को है, आज और हमेशा।

फिर मैं अपनी पत्नी, कमलेश, का धन्यवाद करना चाहूँगा मुझे इस प्रयास के लिए प्रोत्साहित करने के लिए, गुरूजी महाराज के साथ बिताए हमारे वक्त को बारीकी के साथ याद करने और याद कराने के लिए। साथ ही मेरी इस जीवन–यात्रा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनने के लिए। मैं, उसके प्यार, देखभाल और समर्थन के बिना कभी भी यहाँ तक नहीं पहुँच सकता था। मैं अपनी प्यारी बेटियों, जया, शुभा और इला का भी धन्यवाद करता हूँ उस प्यार और समर्थन के लिए जो उन्होंने मुझे दिया है।

मैं जनरल कपूर के परिवार का, कर्नल जोशी अंकल का, आर. पी. सिंगला अंकल का, रश्मि सिंह आंटी का और बाकी उन सब का भी जिनका जिक्र मैंने इस पुस्तक में किया है, आभारी हूँ। मैं संगत के अपने सभी मित्रों का भी आभार मानता हूँ जिनके बिना इस पुस्तक का पूर्ण होना संभव नहीं था।

मैं इस अवसर पर मुकुल अग्रवाल अंकल के नाम का विशेष उल्लेख करना चाहूँगा जिन्होंने अपना अटूट समर्थन दिया और इस पुस्तक के आरंभ से इस पुस्तक के छपने तक मुझे प्रोत्साहित किया।

इस पुस्तक में जो भी लिखा है वो अधिकांश रूप से मेरी अपनी सीमित समझ है। वो समझ, जो महान गुरुओं और संतों की शिक्षा से, कुछ समझदार लेखकों के लेखों से, संगत से और मेरे परिवार के बुर्जुगों से मुझे मिली है। मैं उन सबका आभारी हूँ, उनके उस योगदान के लिए, जिसने मुझे, जो भी मैं आज हूँ, बनने में मेरी मदद की।

आखिर में, मैं हृदय से उन सब अनजान सेवादारों का धन्यवाद करना चाहूँगा जिन्होंने गुरूजी से मेरा जुड़ना संभव किया, मेरे इतने सालों को यादगार बनाया और जिनके सत्संग के माध्यम से मुझे गुरूजी के आशीर्वाद प्राप्त हुए।

जय गुरूजी।

लेखक के विषय में

राजकुमार शर्मा या कमान्डर अंकल, जैसा गुरूजी की संगत उन्हें प्यार से जानती है, उतर-भारत के राज्य उत्तर-प्रदेश के एक छोटे शहर से है। वो एक बेहद देखभाल करने वाली पत्नी कमलेश के लिए एक प्यार करने वाले पति, तीन प्यारी बेटियों के पिता, आई.आई.टी. के भूतपूर्व छात्र और भारतीय नौ सेना के सेवानिवृत्त कमांडर हैं। भारतीय नौ सेना छोड़ने के बाद राज ने बहुत-सी बहुराष्ट्रीय कंपनियों में काम किया है और ऐसा करते हुए दुनिया-भर में यात्रा की है (हालांकि उन्हें हवाई-यात्रा कुछ खास पसंद नहीं है)।

राज, गुरूजी महाराज की उपस्थिति में 18 फरवरी 2001 को आए और फौरन ही गुरूजी की शरण में अपनी जिंदगी के सारे क्षेत्रों को गुरूजी के हाथों में सौंपकर अपने ईश्वर की पुकार को पहचान लिया। इस पुस्तक के द्वारा राज ने गुरूजी के चोले में और उनके शाश्वत रूप में उनके साथ बिताए वक्त की अपनी व्यक्तिगत यात्रा का वर्णन किया है – यह उनके गुरूजी की संगत के रूप में पाए ज्ञान और सीख का संकलन है।

इस किताब में यह सारे सत्संग अनुभव और उनकी सीख एक कहानी की तरह बह रहे है जो बिलकुल उचित भी है क्योंकि राज एक भावुक कहानीकार के रूप में भी जाने जाते हैं – शायद गुरूजी ने भी यह भांप लिया था।

Notes

Notes

Notes

Notes

This book is not for sale.